राधाकृष्ण मूल्यांकन माला

निराला

हिन्दी के प्राचीन व नवीन कवियों, साहित्यिकों तथा विशिष्ट कृतियों के अध्ययन के लिए परम सहायक पुस्तक ।
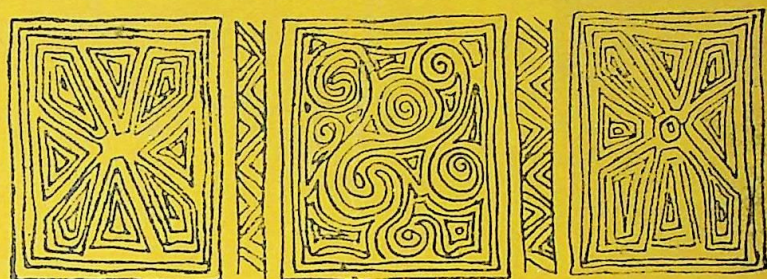
सम्पादक : पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

প্রিয়বরেষু ডাঃ সুধাংশুশেখর দাশগুপ্ত

সুহৃদ

অমল

২৮.৭.৬০
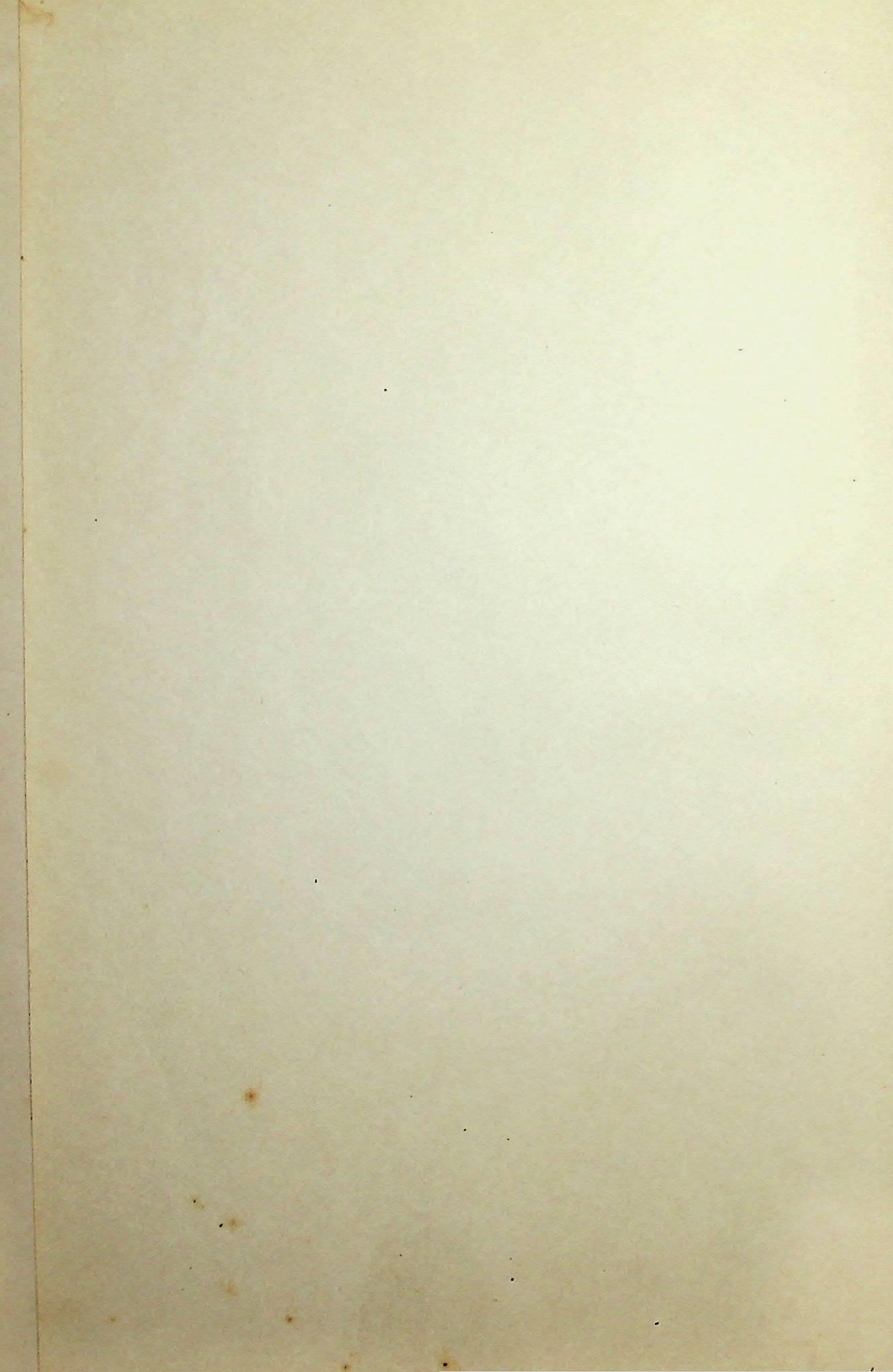
राधाकृष्ण मूल्यांकन माला

निराला
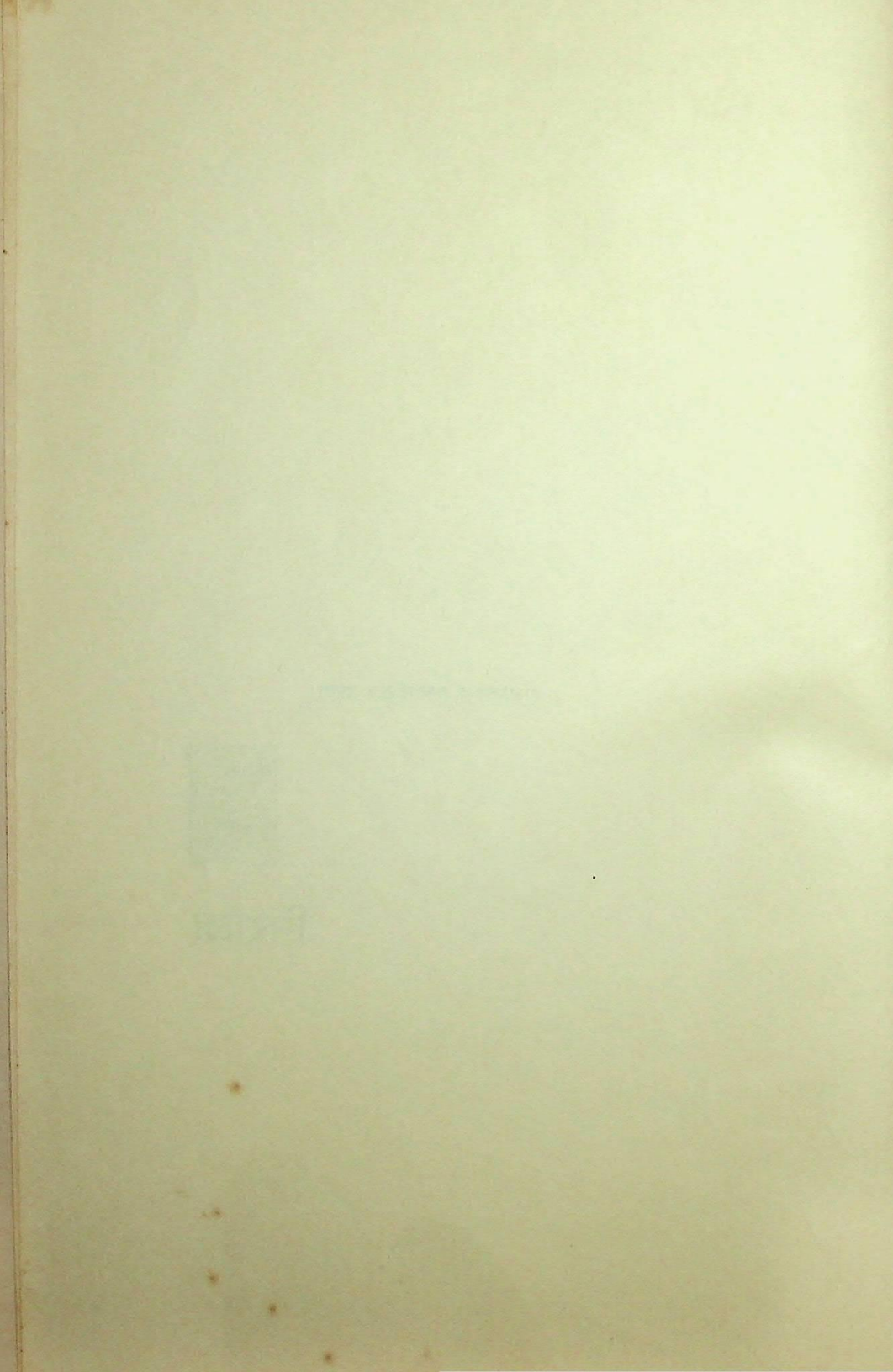
निराला

संपादक
पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
हिन्दी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

राधाकृष्ण प्रकाशन

प्रथम संस्करण

मूल्य
६ रुपये ५० पैसे
पक्की जिल्द ८ रुपये ५० पैसे

प्रकाशक
अरविन्दकुमार
राधाकृष्ण प्रकाशन,
२ अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-६

मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली-३२

प्रकाशकीय

'राधाकृष्ण मूल्यांकन-माला' में प्रस्तुत ये निबन्ध-संग्रह एक विशेष दृष्टि से तैयार किये गए हैं। हिन्दी के प्राचीन तथा नवीन कवियों, साहित्यकारों तथा विशिष्ट कृतियों से सम्बन्धित बहुत-सी ऐसी अमूल्य सामग्री है जो अलग-अलग आलोचना-पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा शोध-ग्रन्थों में बिखरी हुई है, और जिसे पाने के लिए किसी भी अच्छे विद्यार्थी या पाठक को कई-कई बार पुस्तकालयों में जाकर उसे खोजना पड़ता है। इस माला के अधिकारी सम्पादकों ने उस उच्चकोटि की गम्भीर और गवेषणापूर्ण उपयोगी सामग्री को चुनकर यहाँ एक-एक जिल्द में प्रस्तुत कर दिया है। हमें आशा है कि इस सामग्री का एक जगह सुलभ होना इन कृतियों एवं कृतिकारों के अध्ययन में विशेष सहायक होगा।

यहाँ हम उन सब लेखकों और प्रकाशकों के प्रति आभार प्रकट करना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं जिन्होंने विभिन्न पुस्तकों तथा पत्रिकाओं से अपने निबन्धों के यहाँ लिए जाने की अनुमति देकर हमारे इस प्रयास को सफल बनाने में योग दिया है।

क्रम

जीवन-रेखा

विश्वम्भर 'अरुण'

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुदृढ़ स्तम्भ कहे जाते हैं। उन्होंने अपने विपुल साहित्य के द्वारा आधुनिक हिन्दी को समृद्ध बनाया और उसे गौरवान्वित किया। उनका जीवन स्वयं अपने में एक साहित्य है, जिसमें संघर्षों और वेदनाओं के ऐसे अनगिन मार्मिक चित्रों की शृंखला सजी हुई है जिन्हें देखकर हम विचार करने लगते हैं कि निराला का जीवन पहले पढ़ें या उनका साहित्य। मातृविहीन और पिता से उपेक्षित या कठोरतापूर्वक नियंत्रित बालक, साहित्य और संगीत से विभूषित सुन्दरी सुशिक्षिता पत्नी से अल्प दाम्पत्य-जीवन के बाद बिछुड़ जाने वाले विधुर, और फिर चिर-प्रिया की छवि की अभिज्ञान रूपा और चाव से विवाहिता पुत्री के बिछोही पिता के अन्तस्तल में गरजने वाली शत-शत वेदनाओं के मंथन से निकले अमृत के द्वारा ही वह साहित्य सम्भव था जो निराला ने लिखा। उनका साहित्य उनके जीवन के साथ तदाकार है। इस कवि के जीवन का यह भी एक निरालापन है कि उनकी जीवनी के तथ्य स्वयं उनके जीवन-काल में ही उलझ गये थे। उनकी जन्म-तिथि, उनके जन्म-स्थान आदि के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कह सकना विद्वानों के लिए प्रायः कष्टसाध्य रहा है। यद्यपि उन्हें स्वर्गस्थ हुए अभी कुछ ही वर्ष हुए हैं, तथापि उनके युग में रहते हुए भी हम उनके जीवन-सम्बन्धी अनेक मुख्य तथ्यों के सम्बन्ध में भी निर्भ्रांत रूप से कह सकने में असमर्थ हैं। इस लेख में हम निरालाजी की निरालेपन से भरी जीवनी की एक प्रामाणिक रेखा प्रस्तुत करने की चेष्टा करेंगे।

जन्म-तिथि—अतीत के महापुरुषों की ही नहीं वर्तमान के महापुरुषों की जन्म-तिथि भी इतिहास में उलझी हुई है—यह भारतीय इतिहास की एक विचित्र परम्परा रही है। निरालाजी का जन्म किस तिथि को हुआ—इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। यद्यपि निरालाजी की जयंती माघ शुक्ला पंचमी (अर्थात् वसंत पंचमी) को मनायी जाती है तथापि इसे प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। विभिन्न विद्वान् निरालाजी की जन्म-तिथि निम्न प्रकार से मानते हैं—

(१) प्रथम वर्ग के विद्वानों के मतानुसार निरालाजी का जन्म माघ सुदी

एकादशी संवत् १९५५ को हुआ। इस मत का प्रतिपादन पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कविता कौमुदी' के द्वितीय भाग में किया है।

(२) द्वितीय मत डॉ० श्यामसुन्दरदास का है। वे तिथि तो माघ सुदी एकादशी (अर्थात् माघ शुक्ला ११) ही मानते हैं, किन्तु संवत् १९५५ वि० न मानकर १९५३ मानते हैं। विश्वम्भर 'मानव' भी अपनी पुस्तक 'काव्य का देवता—निराला' में इस तिथि को ठीक मानते हैं।

(३) तृतीय वर्ग के विद्वान् निराला का जन्म संवत् तो १९५३ वि० स्वीकार करते हैं, किन्तु वे यह मत स्वीकार नहीं करते कि महाकवि माघ शुक्ला एकादशी को जन्मे। उनके मतानुसार सरस्वती के इस वरद पुत्र का जन्म सरस्वती के पावन दिवस वसंतपंचमी को ही हुआ था। डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० बच्चनसिंह, महापंडित राहुल सांकृत्यायन इसी मत का प्रतिपादन करते हुए माघ शुक्ला वसंत पंचमी संवत् १९५३ वि० (सन् १८९६ ई०) को इनकी जन्म-तिथि मानते हैं। अधिकांशतः विद्वान् और सामान्य साहित्य-जन इसे ही महाकवि की जन्म-तिथि स्वीकार करते हैं।

(४) चतुर्थ मतावलम्बी के रूप में निराला के सुपुत्र श्री रामकृष्ण त्रिपाठी आते हैं। उन्होंने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के निराला अंक में प्रकाशित अपने लेख में महाकवि का जन्म सन् १८९० ई० में हुआ माना है।

उपर्युक्त मतों पर विचार करने पर किसी सही निर्णय पर पहुँचने की स्थिति नहीं बन पाती। बात यह है कि निराला की जन्म-कुण्डली उनकी पुत्री सरोज द्वारा नष्ट की जा चुकी थी, अतः जन्म-तिथि जानने का सबल आधार तो रहा ही नहीं। इसके अतिरिक्त निराला के परिवार में किसी ऐसे बड़े-बूढ़े से कोई विद्वान् सम्पर्क नहीं कर पाया जिससे वह सही जन्म-तिथि का पता लगा सकता। प्रथम और द्वितीय वर्ग के मत के मतावलम्वी पं० रामनरेश त्रिपाठी और डॉ० श्यामसुन्दर दास ने यह नहीं बताया कि किस आधार पर वे अपने द्वारा प्रतिपादित उन जन्म-तिथियों को स्वीकार करते हैं। ये दोनों ही मतावलम्बी माघ शुक्ला ११ को तो स्वीकार करते हैं किन्तु किसी अज्ञात कारणवश संवत् में दो वर्ष का अन्तर रखते हैं। निराला जी के शिष्य डॉ० शिवगोपाल मिश्र का कथन है कि यद्यपि निरालाजी का जन्म-संवत विवादास्पद है किन्तु स्वयं महाकवि अपनी स्मृति के आधार पर सन् १८९६ ई० (संवत् १९५३ वि०) के आसपास अपना जन्म बताया करते थे। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने जब महाकवि का इन्टरव्यू लिया था तो निरालाजी ने भी सन् १८९६ ई० में अपना जन्म हुआ स्वीकार किया था। तृतीय वर्ग के मतावलम्बी डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० बच्चनसिंह इत्यादि भी सन् १८९६ ई० अर्थात् संवत् १९५३ वि० को ही महाकवि के जन्म का वर्ष मानते हैं, किन्तु वे उनकी जन्मतिथि माघ शुक्ला ११ को स्वीकार न कर माघ की वसंत पंचमी को ही स्वीकृति प्रदान करते हैं। वसंत पंचमी को निरालाजी की जन्म-तिथि का आधार क्या है—इसे भी किसी विद्वान् ने स्पष्ट नहीं किया। यद्यपि आज महाकवि निराला की जयंती वसंत पंचमी को ही मनायी

जाती है, निराला के जीवन में भी लोग इसी दिन जयंती मनाते थे और स्वयं महाकवि ने अनेक बार उसमें भाग भी लिया था, तथापि कभी-कभी वे कहा करते थे कि वसंत पंचमी मेरा नहीं अपितु सरस्वती-पूजन का दिन है। उनके सुपुत्र पं० रामकृष्ण त्रिपाठी ने सन् १८९० ई० को अपने पिता के जन्म का वर्ष किस आधार पर स्वीकार किया है—इसका आधार न तो उन्होंने प्रस्तुत किया है और न ही कोई अन्य विद्वान् प्रस्तुत कर सका है। उन्होंने महाकवि की प्रामाणिक जन्म-तिथि जानने का साधन यही बताया है कि विद्वान् महिषादल राज्य के उस हाई स्कूल से जानकारी प्राप्त करें जिसमें निरालाजी अपने बाल्यकाल में पढ़ते थे।

निर्विवाद रूप से निरालाजी की जन्म-तिथि के बारे में कह सकने की स्थिति अभी नहीं आई है, किन्तु लोक में उनकी जन्म-तिथि संवत् १९५३ वि० वसंत पंचमी मानी जाती है।

जन्म-स्थान—जन्म-तिथि के समान निराला का जन्म-स्थान भी एक प्रश्नवाचक चिह्न-सा बनता प्रतीत होता है। जन्म-स्थान किसे मानें? जहाँ वास्तव में जन्म हुआ अथवा जिस भूमि के संस्कार और जलवायु आजीवन कवि के साथ रहे? ऐसा माना जाता है कि महाकवि निराला का जन्म बंगाल की शस्यश्यामला भूमि में मेदिनीपुर परिक्षेत्र के महिषादल नामक स्थान में हुआ था। महिषादल को तो संयोगवश महा-कवि के जन्म-स्थान होने का गौरव प्राप्त हो गया, अन्यथा जिस भूमि का गौरव उनकी धमनियों में व्याप्त था वह तो बैसवाड़े की भूमि थी। निराला के पिता उत्तर प्रदेश में स्थित बैसवाड़े (उन्नाव ज़िले के अन्तर्गत) के छोटे-से ग्राम गढ़ाकोला के रहने वाले थे और महाकवि के जन्म के कुछ समय पूर्व ही महिषादल में नौकरी करने आ गये थे। इस प्रकार निराला के संस्कारों में बैसवाड़े की भूमि का ही अधिक प्रभाव था। बैसवाड़े की भूमि ने हिन्दी साहित्य को अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार दिये हैं। पं० प्रताप-नारायण मिश्र जैसे उत्कृष्ट निबंधकार, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे युग-प्रवर्तक, पं० नंददुलारे वाजपेयी जैसे उद्‌भट समीक्षक बैसवाड़े की भूमि की ही देन हैं। वहाँ की सामान्य जनता भी जैसे साहित्य में ही साँस लेती है। वहाँ के जन-जन में कवित्तों को सुनने का, लोकगीतों को गाने का एवं नौटंकी देखने का बड़ा चाव पाया जाता है। निराला के संस्कारों में साहित्य के प्रति जो अमित अनुराग पाया जाता था, उसमें उनकी पैतृक भूमि का भी योगदान महत्त्वपूर्ण है। उनकी 'राम की शक्ति पूजा', 'जागो फिर एक बार', 'बादलराग', शिवाजी का पत्र' आदि कविताओं में बैसवाड़ीय रक्त और रज का प्रभाव ही दृष्टिगत होता है। किन्तु इसके साथ ही उनके साहित्य में प्रेम और सौंदर्य-सम्बन्धी चित्रों में बंगभूमि का प्रभाव भी लक्षित होता है।

माता-पिता—भावुकहृदय निराला माता की ममता को वांछित रूप से न पा सके, क्योंकि उनकी ममतामयी माँ अपने प्रिय पुत्र को तीन वर्ष की अल्पायु में छोड़कर परलोकगामिनी हा गई थीं। निरालाजी की दो माताओं का उल्लेख मिलता है। राहुलजी ने निराला की पहली माँ का नाम रुक्मिणी बताया है तथा द्वितीय मां से निराला का जन्म हुआ बताते हैं। डॉ० बच्चनसिंह ने भी निराला को द्वितीय माँ से

उत्पन्न हुआ माना है। किन्तु डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'निराला' में स्पष्ट लिखा है कि महाकवि के पिता ने दूसरा विवाह नहीं किया। जब दूसरा विवाह नहीं किया तो निराला की दूसरी माता होने का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिये। किन्तु डॉ० रामविलासजी की यह मान्यता भ्रमपूर्ण ही मालूम पड़ती है। अवश्य ही निराला की दो माताएँ थीं—इस मान्यता के निम्न आधार हैं—

(१) महापंडित राहुलजी ने महाकवि से व्यक्तिगत रूप से भेंट करने और उनसे इण्टरव्यू लेने के पश्चात् ही दो माताओं का उल्लेख अपने लेख में किया है। निरालाजी के द्वारा ही उन्हें इस तथ्य का ज्ञान हुआ होगा।

(२) निरालाजी के पुत्र तथा सम्बन्धी भी निरालाजी की दो माताएँ होने की पुष्टि करते हैं—ऐसा निरालाजी के प्रिय शिष्य डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने अपने लेख 'निराला सम्बन्धी कतिपय भ्रामक तथ्य' में स्वीकार किया है।

(३) निरालाजी ने स्वयं एक स्थान पर इस तथ्य को स्वीकृति इस प्रकार प्रदान की है—"पीटते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें यह भूल जाता था कि वह दो विवाह के बाद पाए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं।" इस कथन से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि निराला दूसरी माँ से उत्पन्न थे।

(४) निरालाजी के सुपुत्र पं० रामकृष्ण त्रिपाठी ने भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करते हुए 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित अपने लेख में एक स्थान पर लिखा है—"मेरी पितामही पं० रामसहायजी की दूसरी भार्या थीं।"

निरालाजी की माँ फतेहपुर जनपद के चाँदपुर ग्राम के दुबे वंश की कन्या थीं। वे अत्यंत रूपवती महिला थीं। निरालाजी के रूपवान् होने का कारण सम्भवतः मां का रूपवान् होना था। इनकी मां की संतान-प्राप्ति की कामना बड़ी बलवती थी। संतानोत्पत्ति की कामना के लिए वे रविवार का व्रत किया करती थीं। रविवार को ही महाकवि निराला का जन्म हुआ था। किन्तु निराला के दुर्भाग्य से माँ की ममतामयी छाया अधिक दिनों न मिल सकी। कवि के जन्म के कुछ ही दिनों बाद उनकी माँ का देहावसान हो गया। मृत्यु के समय उनकी माँ की आयु १८-१९ के लगभग थी। निरालाजी के सुपुत्र रामकृष्ण त्रिपाठी ने लिखा है कि निराला के जन्म के कुछ समय बाद ही उनकी माता की मृत्यु हो गई। कुछ समय बाद से क्या तात्पर्य लगाया जाए ? कुछ घंटों बाद ? या कुछ दिनों बाद ? या कुछ वर्षों (दो-तीन वर्ष) के बाद। यह शंका इसलिए उठी है क्योंकि अधिकतर लेखकों ने यह माना है कि निरालाजी की माँ का देहान्त उनके जन्म के तीन वर्ष बाद हुआ। अतः रामकृष्णजी के 'कुछ समय' को कुछ वर्षों का बोधक ही मानना होगा।

निरालाजी के पिता का नाम पं० रामसहाय त्रिपाठी था। पं० रामसहायजी अक्खड़ और कठोर स्वभाव के व्यक्ति थे।[1] उनकी कठोरता का ज्ञान इसी बात से

---

१. चूंकि वे सौ सिपाहियों के ऊपर शासन करने वाले जमादार रह चुके थे, अतः उद्धतता और कठोरता उनके स्वभाव में आ जाना सहज ही था।

होता है कि वे अपनी एकमात्र संतान—निराला को क्रोध आने पर पीटते थे और पीटते चले जाते थे। इस सम्बन्ध में निरालाजी ने स्वयं लिखा है—"पीटते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें यह भूल जाता था कि वह दो विवाह के बाद पाए इकलौते पुत्र को मार रहे थे। मैं भी स्वभाव न बदल पाने के कारण मार खाने का आदी हो गया था। चार-पाँच साल की उम्र से अब तक एक ही प्रकार के प्रहार की हद भी मालूम हो गई थी।" निरालाजी में पिताजी के इस आचरण से सहनशीलता आ गई थी, इसीलिए तो बड़े-से-बड़े सामाजिक और साहित्यिक प्रहारों को अपने ऊपर सहा। किन्तु साथ ही अक्खड़ता और उद्धतता के गुण भी उन्हें पिताजी से ही मिले। कठिन परिस्थितियों और विपत्तियों को सहन करते रहने के कारण ही वे निर्भीक भी हो गये थे। अतः एक ओर जहाँ उनमें कोमलता और ममत्व के गुण मां से आए, वहाँ उन्हें स्वभावगत अक्खड़ता, उद्धतता, निर्भीकता आदि गुण पिताजी से मिले।

नाम—निरालाजी को अधिकतर लोग 'निराला' नाम से ही जानते हैं। वैसे उनका पूरा नाम पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' है। 'निराला' इनका उपनाम है। निरालाजी चूँकि रविवार को उत्पन्न हुए थे और उनकी माँ इनके उत्पन्न होने की मनौती में रविवार का व्रत भी रखती थीं, अतः इन कारणों से इनका नाम 'सूर्यकुमार' रखा गया। उनके गाँव के लोग आज भी महाकवि को 'सूर्यकुमार' के नाम से स्मरण करते हैं। महाकवि ने बाद में अपने नाम को संशोधित कर 'सूर्यकांत' कर लिया। डॉ० रामविलास शर्मा आदि महाकवि का पुराना नाम 'सूर्यकुमार' ही बताते हैं, किन्तु डॉक्टर बच्चनसिंह ने उनका पुराना नाम सूर्यप्रसाद बताया है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि रामकृष्ण मिशन के बंगाली भी इन्हें 'सूरजोकुमार' के नाम से पुकारते और जानते थे। स्पष्ट ही यह 'सूरजोकुमार' 'सूर्यकुमार' का बंगला रूप है न कि 'सूर्यप्रसाद' का। महाकवि के प्रिय शिष्य डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि उनका 'सूर्यकुमार' से भिन्न 'सूर्यकांत' नाम कैसे प्रसिद्ध हो गया। महाकवि के पुत्र पं० रामकृष्ण त्रिपाठी ने इसका समाधान देते हुए लिख ही दिया है—"काफी समय बाद उन्होंने स्वयं अपने नाम में संशोधन किया और सूर्यकांत नाम से प्रख्यात हुए। 'निराला' उपनाम पहले उन्होंने अपने मुख्य नाम से नहीं जोड़ा था। 'मतवाला' पत्र में वे 'निराला' छद्म नाम से हिन्दी-लेखकों के गलत प्रयोगों पर कटाक्ष किया करते थे, किन्तु बाद में यह रहस्य खुल गया कि 'निराला' नाम से सूर्यकांतजी ही लिखते हैं। अतः उन्होंने इसे अपने मुख्य नाम से जोड़ दिया। एक ओर छद्म नाम 'गरगजसिंह वर्मा' से भी वे 'मतवाला' में समालोचनाएँ लिखा करते थे।

बचपन और शिक्षा-दीक्षा—महाकवि की माँ का देहान्त उनके जन्म के तीन वर्ष बाद ही हो गया था। अतः उनके पालन-पोषण का भार महिषादल के राजा साहब ने अपने पुत्रों का पालन करने वाली धाय को सौंप दिया। इस प्रकार बंगाल में महाकवि का प्रारंभिक लालन-पालन राजकुमारों के साथ हुआ। जब वे पाँच वर्ष के हो गये तो उनके अध्ययन के प्रबंध के साथ व्यायाम का प्रबंध भी किया गया।

प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने पर उन्हें महिषादल में ही राज्य के हाईस्कूल में प्रविष्ट करा दिया । बंगला उनकी मातृ-भाषा के रूप में रही । हिन्दी के नाम पर वह केवल घर में बोली जाने वाली अवधी से ही परिचित थे । हिन्दी का परिमार्जित ज्ञान तो उन्हें आगे चलकर अपनी पत्नी से ही मिला । अंग्रेज़ी का ज्ञान उन्हें हरिपद घोषाल से मिला था । संस्कृत की ओर उनकी रुचि दर्शनशास्त्र और भारतीय संस्कृति में झुकाव के कारण थी । नवीं कक्षा में बंगला के साथ अंग्रेज़ी, संस्कृत, इतिहास और गणित उनके अध्ययन के विषय थे । नवीं कक्षा तक तो यह जमकर पढ़े, किंतु उसी समय इनका विवाह हो जाने के कारण पढ़ाई से इनका मन उचटने लगा । परिणाम-स्वरूप दसवीं की परीक्षा इन्होंने नहीं दी । किसी ने इनके दिल में यह बैठा दिया कि बड़ा बनने के लिए बहुत पढ़ना बेकार है, क्योंकि अधिकतर बड़े आदमी कम ही पढ़े हैं । कवीन्द्र रवीन्द्र तो केवल नवीं कक्षा तक ही पढ़े थे, फिर भी उन्होंने संसार-प्रसिद्ध नोबल पुरस्कार प्राप्त कर लिया । निरालाजी के दिमाग में यह बात जम गई और वे भी नवीं कक्षा को पास करने के बाद आगे पढ़ने के लिए हिचकने लगे । एक परीक्षा में एक निबन्ध का प्रश्न आया था—"तुम अपने जीवन में क्या बनोगे ?" निरालाजी ने इसका उत्तर दिया था—"मैं निराला बनूँगा । जब मैं कविता-पाठ करूँगा तो अनु-भूतियों की सामूहिक वर्षा होने लगेगी । जब मैं जनता के बीच चलूँगा तो लोगों के हृदय मनुष्योचित भावनाओं से आर्द्र होने लगेंगे । जब में अपना वरदहस्त उठाऊँगा तो देश का राष्ट्रपति भी (ध्यान रहे उस समय भारत परतंत्र था) साष्टांग प्रणाम करेगा, और जब मैं करुणा से उमड़कर अश्रुसिक्त होऊँगा तो देश की देवियाँ अपने आँचल के दुलार में मुझे थपकियाँ देने लगेंगी । इसलिए भी मैं निराला बनूँगा, क्योंकि देश अभी गरीब है और अधिक दयनीयता का वरण आज के भारतीय साहित्य-कारों को सिर्फ श्रेयस्कर ही नहीं है, अनिवार्य है । तभी तो जनता का प्रतिनिधि साहित्य-स्रष्टा बन सकूँगा ।"

इस प्रकार उनकी स्कूली शिक्षा नवीं कक्षा तक ही है, आगे की उच्च शिक्षा वे प्राप्त न कर सके । किन्तु यह कमी उन्होंने अपने अनवरत अध्यवसाय से पूरी की । उन्होंने जहाँ एक ओर वेदान्त दर्शन तथा विवेकानन्द के साहित्य का गहन अध्ययन किया वहाँ दूसरी ओर वे संस्कृत, बंगला, हिन्दी और अंग्रेजी के साहित्य के अध्ययन में भी मनोयोगपूर्वक प्रवृत्त हुए । इसके साथ ही संगीतशास्त्र, व्याकरण-शास्त्र का ज्ञान भी उन्होंने अर्जित किया । संगीतशास्त्र में तो वे पूर्ण दक्ष थे ।

विवाह—नवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते महाकवि का विवाह हो गया था । उनका विवाह सन् १९१२ के आस-पास हुआ । उस समय निरालाजी की अवस्था १४ वर्ष की रही होगी । डॉ० श्यामसुन्दरदास ने निराला के विवाह को १३ वर्ष की वय में, राहुलजी ने १४ वर्ष की वय में और रामकृष्ण त्रिपाठी ने १५ वर्ष की वय के आस-पास सम्पन्न हुआ बताया है । निरालाजी का विवाह चाँदपुर (फतेहपुर) के निवासी पं० रामदयालजी द्विवेदी की सुपुत्री मनोहरादेवी से हुआ । इनके श्वशुर नवाबी युग के रईस मिज़ाज के व्यक्ति थे । उनकी सम्पन्नता और रईस-मिज़ाजी के

कारण ही लोग उन्हें राजा रामदयालजी कहा करते थे। यह अपनी पहली पत्नी के मायके की जायदाद प्राप्त होने के कारण डलमऊ (रायबरेली) में ही सपरिवार रहते थे। उन्होंने निरालाजी का विवाह काफ़ी दान-दहेज़ देकर बड़े समारोह से डलमऊ में ही सम्पन्न किया था। विवाह के एक वर्ष बाद ही उनका गौना करा दिया गया। गौना हो जाने के बाद महाकवि के पिता अपने पुत्र व पुत्र-वधू को लेकर महिषादल चले आये। गौना हो जाने के कारण महाकवि का ध्यान पढ़ाई से उचट गया। गौना होने से पूर्व ही गाँव में प्लेग फैल गया, जिससे भयभीत होकर इनकी पत्नी की विदा हो गई। बाद में निरालाजी को ससुराल वालों ने बुलाया तो वे चले गये। निरालाजी के पुत्र श्री रामकृष्ण ने स्पष्ट लिखा है कि निरालाजी की पढ़ाई छोड़ देने से उनके पिता बड़े क्षुब्ध हुए और उन्होंने अपने बेटे को स्वयं ही अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए आदेश दिया। एक प्रकार से निरालाजी को पत्नीसहित घर से निष्कासित कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि निरालाजी अपनी पत्नी सहित डलमऊ चले गये और छः मास तक वहीं रहे। ससुराल वालों ने उनका हर तरह से ध्यान रखा और उनकी खातिर में किसी प्रकार की कमी नहीं रहने दी। वस्तुतः निरालाजी के जीवन में ससुराल की यात्रा का यह प्रसंग सबसे मधुर है। उनकी पत्नी अत्यन्त सुन्दरी और विदुषी थीं। हिन्दी सीखने तथा कविता करने की प्रेरणा इन्हें अपनी पत्नी से ही मिली। जिस प्रकार कालिदास अपनी पत्नी विद्योत्तमा तथा गोस्वामी तुलसीदास अपनी पत्नी रत्ना से प्रतारणा प्राप्त करने के बाद कवि बने थे, वैसे ही निरालाजी को भी अपनी पत्नी की मधुर प्रतारणा से हिन्दी सीखनी पड़ी थी। स्वयं निरालाजी ने लिखा है—"श्रीमतीजी पूरे अधिकार में नहीं आ रही थीं। वह समझती थीं कि मैं और चाहे कुछ होऊँ, हिन्दी का पूरा गँवार हूँ।" और भला कौन पति अपनी पत्नी के आगे गँवार बनना पसन्द करेगा ? फलतः न केवल उन्होंने अपनी पत्नी से हिन्दी सीखी अपितु उसमें काव्य-रचना कर उस भाषा पर अपने अधिकार का प्रमाण भी प्रस्तुत कर दिया।

उनका यह वैवाहिक जीवन अधिक दिनों तक नहीं चल सका। डलमऊ से उनके पिताजी उन्हें तथा पुत्र-वधू को मनाकर ले गये थे। १६१४ ई० में एक पुत्र चि० रामकृष्ण तथा १६१७ ई० में एक पुत्री सरोज का जन्म उनसे हुआ। पुत्री के जन्म के एक वर्ष पश्चात् अर्थात् १६१८ ई० में उनकी पत्नी मनोहरादेवी की मृत्यु देश में फैली इन्फ़्लुएंज़ा की महामारी से हो गई। श्री गिरीशचन्द्र तिवारी ने अपनी पुस्तक 'कवि निराला और उनका साहित्य' में एक भ्रामक बात लिख डाली है कि निरालाजी ने पहली पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरी शादी कर ली। यद्यपि दूसरी शादी के लिए उन पर चारों ओर से दबाव पड़े थे, उनकी जन्मपत्री में भी दो विवाह लिखे थे, साथ ही उनके पिता ने भी दो विवाह किये थे और उनके पुत्र के भी दो विवाह हुए, किन्तु निराला ने केवल एक ही विवाह किया। उनका जीवन पत्नी के प्रति एक-निष्ठता का सुन्दर उदाहरण है।

संघर्षपूर्ण जीवन—पत्नी की मृत्यु के बाद तो जैसे कवि के जीवन से समस्त

मधुरताओं का ही अंत हो गया। अपनी पत्नी की मृत्यु का समाचार निरालाजी को कलकत्ता में अकस्मात ही प्राप्त हुआ था, अतः जब तक वे घर पहुंचे तो अपने चचेरे भाई श्री बदलूप्रसाद, भाभी, चाचा पं० रामलालजी की मृत्यु के समाचार भी उन्हें मिले। पिताजी की दुखद मृत्यु भी इन्हीं दिनों हुई। एक के बाद एक इतने आघातों का सामना उन्हें करना पड़ा। निरालाजी का घर उजड़-सा गया और उनके ऊपर अपने दो तथा चचेरे भाई के चार बच्चों के लालन-पालन का भार एक साथ आ पड़ा। अर्थोपार्जन की समस्या भयंकर रूप धारण करके उनके सामने आई। निराला के दुःख-दर्द, संघर्षों और अभावों की जो कहानी एक बार शुरू हुई वह अंत तक चलती ही रही। इन्हीं संघर्षों से जूझते हुए न तो वे अपने पुत्र रामकृष्ण की शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर सके और न ही अपनी पुत्री सरोज का विवाह समुचित ढंग से कर सके। "दुःख ही जिसके जीवन की कथा रही", उसने न जाने कितने दुःखों के निर्मम वार अपने ऊपर सहे। १९३५ ई० में जब उनकी प्राणों से अधिक प्रिय पुत्री भी उनको छोड़कर चली गई तो जैसे उनका वज्र जैसा कठोर हृदय भी विदीर्ण हो उठा। 'सरोज स्मृति' नामक कविता में उनके दुःख के इस पारावार को लहराते हुए देखा जा सकता है।

विक्षिप्तावस्था—निरन्तर संघर्षों, अभावों और दुःखों से जूझते रहने के कारण निरालाजी का मस्तिष्क कुछ असंतुलित हो गया था। उनके कुछ असंतुलित व्यवहारों को देखकर कतिपय लोग उन्हें 'पागल' की संज्ञा देते हैं। किन्तु उन्हें पागल कहना ठीक न होगा। यह ठीक है कि उनका जीवन अस्त-व्यस्त-सा हो गया था और उनके व्यवहार और कर्म में अनेक बार असंतुलन दृष्टिगत होता था, किन्तु केवल इसीलिये उन्हें विक्षिप्त या पागल कहना उपयुक्त नहीं। कवि वैसे भी 'एब्नार्मल' प्राणी होता है, मन, वचन और कर्म से वह अन्य सामान्य जनों की अपेक्षा कुछ असाधारण होता है। इसीलिए शेक्सपीयर ने कवि, प्रेमी और दार्शनिक को आधा पागल बताया है और निराला तो न केवल कवि अपितु पत्नी के विछोह में पीड़ित प्रेमी और वेदान्त-वाद से प्रभावित दार्शनिक भी थे। उनके मानसिक असंतुलन का एक कारण यह भी रहा कि उन्होंने निरन्तर अभावों और दुःखों का गरल पिया। शिशु अवस्था में ही माँ का विछोह, बाद में पत्नी के प्यार का विछोह, उसके बाद क्रमशः पारिवारिक जनों, पिता और पुत्री का अभाव, जीवन-भर अर्थ और सम्मान का अभाव आदि ने जैसे उनकी मानसिक स्थिति को सामान्य नहीं रहने दिया था। इनके साथ ही चूँकि वे स्वभाव से अहंवादी और आत्म-सम्मानी थे, अतः अंह पर चोट लगने से वे स्वभावतः असंतु-लित हो जाते थे। उनके स्वभाव की असाधारणता का एक कारण शारदानंद का प्रभाव भी माना जाता है। इसका संकेत डॉ० रामविलास शर्मा ने भी किया है। निरालाजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे मिशन के स्वामी शारदानंद को हनुमान का अवतार मानते थे और अपने अनेक लेखों में उन्होंने स्वामीजी के चमत्कारी प्रभावों का उल्लेख किया है और अपने को उनसे प्रभावित माना है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि शारदानंदजी के दर्शन मात्र से वह सुध-बुध खो बैठते थे और फिर उनका मन-पंक्षी न जाने कहाँ उड़ने लगता था। चूँकि वेदान्त का प्रभाव उन पर

सर्वाधिक पड़ा था, अतः इन मिथ्या संसारी जीवों में वे पूरी तरह रम नहीं पाते थे। इन्हीं सब कारणों से उनके आचरणों को निराला तो कहा जा सकता है किन्तु केवल इसीलिए उनको 'विक्षिप्त' नहीं कहा जा सकता। जीवन के अंतिम क्षणों तक वे अपने परिचितों को पहचानते रहे। अंतिम वर्षों तक वे कविताएँ भी लिखते रहे— ये सब इस बात का प्रमाण हैं कि वे विक्षिप्त नहीं हुए थे।

अन्तिम दिन—वैसे तो अपने निराले व्यक्तित्व के कारण निरालाजी को जीवन-पर्यन्त अनेक विपत्तियों और संघर्षों का सामना करना पड़ा था, किन्तु अंतिम दिनों में उनका जीवन दुःख और अभावों से जूझते हुए ही बीता। इसीलिए अंतिम समय में वे विक्षिप्त भी रहने लगे थे। आर्थिक अभाव उनके जीवन में प्रायः हमेशा ही बना रहा। और जब कभी उन्हें अच्छी धन-राशि मिली तो उन्होंने उस राशि को किसी-न-किसी को दान में दे दिया। एक बार उन्हें २१०० रु० पुरस्कार-स्वरूप मिले तो उन्होंने सारी राशि मुन्शी नवजादिकलाल की विधवा पत्नी को सहायता-स्वरूप दे दी। उन्हें अवढरदानी भी इसीलिए कहा गया है। "निरालाजी ने पैसों की कभी भी परवाह नहीं की। जब पाया कर्ण के हाथों खर्च किया। वस्तु-संचयन के प्रति निराला की रुचि लेशमात्र भी नहीं रही। भोजन की परसी थाली तक बुढ़िया को नागपंचमी मनाने के लिए दे दी गयी है। अपनी एक बुढ़िया माँ की भिक्षावृत्ति समाप्त करने के लिए पूरे तीन सौ रुपये निराला ने दे दिये हैं और खाली हाथ घर लौटे हैं।"

अगस्त '६० में वे रुग्ण पड़े तो फिर कभी पूर्ण स्वस्थ हो ही नहीं पाये। १५ जुलाई '६१ से वे गम्भीर रूप से अस्वस्थ हो गये। यद्यपि १३ अक्टूबर को ये तीन घण्टे तक भोजन बनाते रहे, किन्तु १४ अक्टूबर को प्रातः से जो उनकी दशा बिगड़ी फिर वह सम्हल नहीं पाई। सन् १९६१ को रविवार को प्रातः ९.२३ बजे साहित्याकाश का यह रवि सदा के लिए अस्त हो गया।

उपसंहार—इस निराले कवि की निराली जीवनी को इतिहास के वैज्ञानिक धरातल पर उतार पाना असंभव ही प्रतीत होता है। सामाजिक मान्यताओं से मुक्त, मुक्तछन्दों के निर्माता इस महामानव ने अपने जीवन के स्वर्ग को जिस उपेक्षा के साथ लुटाया उसके कारण उन विपर्यस्त कणों को सहेजकर साहित्य के इतिहास की दृष्टि से मूल्यवान और प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत कर पाना सहज नहीं है। महा-मानव की शोभा पुराण-पुरुष बनकर रहने में ही होती है जिसके चारों ओर कल्पनाओं, जनश्रुतियों और भावप्रधान विश्वासों का बादल मंडराया करता है। फिर भी इस वैज्ञानिक युग में और निराला के समकालीन समीक्षक होने के नाते हम उनकी जीवनी को कालिदास, भास और बाण तथा विद्यापति, सूर, तुलसी की अपेक्षा अधिक निकटता, अधिक बारीकी और अधिक पूर्णता के साथ देख पाने में सक्षम हैं। इसमें हमें प्रमाद नहीं करना चाहिये।

व्यक्तित्व और विचार-धारा

बच्चनसिंह

व्यक्तित्व—हृष्ट-पुष्ट लम्बा शरीर, गठी हुई मांसपेशियाँ, उन्नत ललाट, विस्तृत वक्ष, गौरवर्ण, सिन्धु-तटवासी ऐतिहासिक आर्यों के जीवन्त प्रतीक। आज के ठिंगने कद, दुबले-पतले विकृत मानव-शरीर-यष्टि धारण करने वाले व्यक्तियों के मध्य में ये आर्यों की दैहिक परम्परा के प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं। 'कामायनी' के प्रथम सर्ग 'चिन्ता' में मनु का वर्णन करते हुए प्रसाद की ये पंक्तियाँ—

> **अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ**
> **ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,**
> **स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का**
> **होता था जिनमें संचार।**

निराला के व्यक्तित्व की भी पूर्ण अभिव्यक्ति करती हैं।

खादी का लम्बा पंजाबी कुर्ता, लुंगी, पैरों में चप्पल अथवा उसका भी अभाव—ऐसे वेष में दारागंज की सड़कों से गुज़रते हुए इन्हें कोई देख सकता है। कुछ समय पहले निराला का वेश-विन्यास बड़ा ही रोमांटिक था। धोती और कुर्ता साफ, धुले हुए। इत्र से चुपड़ी हुई आस्कन्ध केशराशि इनके व्यक्तित्व में एक नवीन आकर्षण भर देती थी।

औदार्य—निराला महान् मानव हैं। मानवता की अनेक सद्वृत्तियाँ एक ही स्थल पर एकत्र हो गई हैं। उदारता, सरलता, स्पष्टवादिता, निष्कपटता और सदाशयता की ये मूर्ति हैं। इनकी बाह्य प्रक्रियाओं को देखकर बहुत-से लोगों ने इसमें अनेक असंगतियाँ ढूँढ़ निकाली हैं। लोगों से निवेदन है कि वे कवि के समीप पहुँचकर उसका अध्ययन करें। बिना सूक्ष्म अध्ययन अथवा निकट सम्पर्क के किसी के विषय में साधिकार कुछ कह देना अपनी प्रवंचना का ही ढिंढोरा पीटना है। गोस्वामीजी ने व्यक्तियों के प्रकार की व्यवस्था देकर उनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया है—बेर, बादाम और अंगूर। निराला की अन्तिम श्रेणी है। भीतर से तो ये अत्यन्त निष्कपट और सरल व्यक्ति हैं, बाहर से भी इनका व्यवहार मृदुल है। जो लोग दरबारी शिष्टता अथवा पाश्चात्य सभ्यता के वातावरण में पले होंगे उनको निराला

के बाहरी व्यवहार में त्रुटियाँ दिखलाई पड़ेंगी । इसका प्रधान कारण यह है कि उनको वास्तविकता का उतना ध्यान नहीं रहता जितना बाह्याडम्बर का होता है । यहाँ पर उन्हें वह कृत्रिमता न मिलेगी, जिसके वे अभ्यस्त हैं । यही कारण है कि कभी-कभी बाहर से उनका रूप कठोर दिखाई पड़ता है । ढोंगों और कृत्रिमताओं से निराला की पुरानी शत्रुता है । सैद्धान्तिक प्रश्नों पर तो ये वज्र से भी कठोर हो जाते हैं । वहाँ इन्हें बड़े-से-बड़ा प्रलोभन, दुर्दमनीय दानवी शक्ति भी झुकाने में असमर्थ है । निराला की रेडियो-सम्बन्धी नीति आज किसी से छिपी नहीं है । उस समय हिन्दी वालों में जो रेडियो पर बोलने जाते थे निराला को सर्वाधिक पारिश्रमिक मिलता था, किन्तु रेडियो की हिन्दी-सम्बन्धी नीति के कारण इन्होंने उसका बहिष्कार किया । फिर कभी ये उधर झाँकने तक न गये । इनकी विनोदप्रिय प्रकृति का परिचय घरेलू प्रसंग आने पर अच्छी तरह प्राप्त किया जा सकता है । कनौजियों के विवाह की बात छिड़ने पर उनकी सामाजिक रूढ़ियाँ इनके मज़ाक का विषय बन जाती हैं । इस प्रकार विनोद के लिए ये जीवन की विद्रूपताओं (ऑकवर्ड फ़ीचर्स) को अधिक लेते हैं । 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'सुकुल की बीवी', 'ठेंगा दिखाया', 'विनोद बाबू का कामा' इत्यादि रचनाएँ इनके व्यंग्य-विनोद का दिशाज्ञान करा देती हैं ।

इनकी उदारता के विषय में तो अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं । किसी का दुःख देखकर इनका कवि-हृदय करुणा से आर्द्र हो जाता है । समय-समय पर देखा गया है कि इन्होंने अपने पास कुछ भी न रखकर दूसरों की सहायता की है । सड़क पर जाड़े से ठिठुरे प्राणी को देखकर उसे अपना गद्दा और ओढ़ना तक दे आए हैं और स्वयं उसी की भाँति रात-भर ठिठुरे रह गए । गुणों के इतने बड़े पारखी कम ही मिलेंगे । कलाकारों की कला पर रीझकर वाह-वाह करनेवाले तो बहुत मिल जायँगे किन्तु उनकी वास्तविक सहायता करने वाले विरले ही होंगे । देखा गया है कि जब ये किसी के गुणों पर प्रसन्न हुए हैं, उसकी यथाशक्ति सहायता की है ।

आत्माभिमान—निराला को जानने वाले प्रायः इस बात से परिचित हैं कि ये अपना जागृत अहं कभी भी नहीं खो सके । यदि इनमें यह अहं न रहता तो हिन्दी-महारथियों के व्यंग्याघातों से या तो मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए होते या आहत हो गए होते । किन्तु अपने विरोधियों के देखते-देखते इनकी विजय हुई । व्यावहारिक जगत् में भी इनका अहं उतना ही जागरूक है । इसके लिए एक घटना का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा । एक बार इन पंक्तियों का लेखक निराला के साथ प्रयाग विश्वविद्यालय से एक ही इक्के में बैठा हुआ दारागंज आ रहा था । दारागंज पहुँचने पर इक्के का भाड़ा चुकाने के लिए निराला ने पास के दूकानदार से पैसा माँगा । इतने में मैंने इक्केवान को भाड़ा दे दिया । दूकानदार से पैसा लेकर इन्होंने मुझसे कहा कि यह पैसा इक्केवान को दे दो । मैंने निवेदन किया कि पैसा दिया जा चुका है । इन्होंने कहा मेरा पैसा दो । दूसरी बार भी मैंने कहा कि जब पैसा दिया जा चुका है तब आपका पैसा देना कोई मतलब नहीं रखता । इस पर इन्होंने अंग्रेज़ी में कहा—'मैं

तुम्हें खरीद सकता हूँ ।' मैंने चुपचाप इनका पैसा ले लिया ।

विद्रोही प्रवृत्ति—निराला के जीवन को आद्यन्त देखने पर इनका व्यक्तित्व अतिशय क्रान्तिकारी सिद्ध होता है । साहित्य और समाज दोनों स्थानों में इन्होंने क्रान्ति की है । अनावश्यक रूढ़ियों के विरोध में खुलकर विद्रोह किया है । इनका सारा साहित्यिक तथा सामाजिक जीवन विद्रोह से भरा हुआ है । मुक्तछन्द का विधान सबसे पहले इन्होंने किया । इनकी शैली का कितना विरोध हुआ इसका उल्लेख किया जा चुका है । किन्तु इन्हें अपने मार्ग से विचलित करने में कोई भी शक्ति सफल न हुई । निरपेक्ष गीतों का निर्माण, सटीक और चुभते व्यंग्यों की सृष्टि, कजली और गज़लों के विधान में—सर्वत्र इनकी स्वच्छन्दप्रियता परिलक्षित होती है । इन्हें किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं । किसी की रोक-टोक से ये रुकने वाले नहीं हैं ।

सामाजिक मान्यताएँ—सामाजिक निराला भी निराला हैं । व्यर्थ के सामाजिक ढोंगों में इन्हें पूर्ण अश्रद्धा है । छुआछूत-सम्बन्धी आचार-विचार को ये अमानवीय मानते हैं । भोजन के विषय में मनुष्य की रुचि प्रधान है, इनका ऐसा विश्वास है । इसके लिए समाज को व्यवस्था देने का कोई अधिकार नहीं है । इसका अर्थ यह नहीं है कि वे उच्छृंखलता को प्रश्रय देते हैं । ये आदर्शवादी व्यक्ति हैं । इनका कहना है कि यद्यपि मनुष्य पूर्णतः आदर्शवादी नहीं बन सकता फिर भी उसे आदर्श का अधिक-से-अधिक अनुसरण करना चाहिए । आदर्श के नियामकों का यही लक्ष्य भी है ।

पारिवारिक स्नेह—एक दार्शनिक की तटस्थता लिये हुए भी मानव मात्र के सुखों और दुखों के लिए इनके हृदय में एक करुण कोना उपस्थित है । अपने परिवार के व्यक्तियों के साथ इनका स्नेह साधारण मनुष्यों जैसा ही है । पत्नी और अपनी एकमात्र तरुण कन्या के करुण अवसान से इनका हृदय बहुत खिन्न तथा व्यथित हो उठा था । पत्नी की स्मृति में कई कविताएँ लिखी गई हैं । कन्या सरोज की स्मृति में लिखी गई कविता हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत (एलेजी) है ।

मैंने पहले ही निवेदन किया है कि निराला का साहित्यिक इनके व्यक्तित्व का सबसे जागरूक अंश है । इनके साहित्यिक जीवन के अरुणोदय-काल में अनेक तरुण लेखकों से इनका परिचय हुआ । जहाँ अन्य लेखकों ने अपने ग्रन्थों को अपने साहित्यि-केतर इष्ट-मित्रों, स्नेहियों तथा पारिवारिक व्यक्तियों को अधिक संख्या में समर्पित किया है वहाँ निराला ने गीतिका के अतिरिक्त, जिसे इन्होंने अपनी पत्नी को भेंट किया है, अपने सभी ग्रन्थ महादेव बाबू, पुरुषोत्तमदास टंडन, नन्ददुलारे वाजपेयी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, रामविलास शर्मा आदि अनेक गण्यमान साहित्यिकों को समर्पित किये हैं । इनमें सभी इनके घनिष्ठ हैं ।

कलात्मक रुचियाँ—इनके व्यक्तित्व की पूर्ण अभिज्ञता के लिए इनके अध्ययन और कलात्मक रुचियों की ओर भी निर्देश करना आवश्यक है । हिन्दी के तो ये प्रसिद्ध लेखक हैं ही, इसके अतिरिक्त कुछ अन्य भाषाओं में भी पूर्ण दक्षता प्राप्त की है । आपका बँगला का अध्ययन बड़ा गंभीर है । जहाँ तक दार्शनिक विचारों

का सम्बन्ध है, स्वामी विवेकानंद के अद्वैत दर्शन का प्रभाव इनके ऊपर विशेष रूप से पड़ा है। अंग्रेजी का अध्ययन भी आपने खूब किया है। अंग्रेज़ लेखकों में टी० एस० इलियट, ब्राउनिंग, आस्करवाइल्ड और शा से लेकर वर्तमान युग की अधुनातन रचनाओं को भी आपने अच्छी तरह देखा है। उर्दू-साहित्य का भी आपने अच्छी तरह मनन किया है। संस्कृत की जानकारी भी इन्हें अच्छी है। संगीत के नाद, स्वर और वाद्य के ये पंडित हैं। इनकी बारीकियों की जो जानकारी इनको है, वह कम लोगों में पाई जाती है। ये बड़े-बड़े संगीतज्ञों से टक्कर लेने में समर्थ हैं। जिन्होंने इनको स्वरताल से हारमोनियम पर गाते हुए स्वयं सुना है, वे इस क्षेत्र में इनकी गति का अनुमान कर सकते हैं।

क्रान्तिकारी विचारधारा—व्यक्तित्व की छाप लेखक की शैली तथा विचार-धारा दोनों पर पड़ती है। निराला की विचारधारा मूलतः क्रान्तिकारी है। साहित्यिक, दार्शनिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सभी क्षेत्रों में इनके विचार एक नवीन उन्मेष, नई उत्तेजना लेकर आते हैं। किसी भी स्थान पर इनके विचारों को देखकर इनकी क्रान्तिकारिता का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। समाज की जर्जर व्यवस्थाओं, राजनीतिक गुटबन्दियों, धार्मिक रूढ़ियों पर इन्होंने कड़े प्रहार किए हैं। इनकी विचारधारा आधुनिक प्रवृत्तियों के अनुकूल है। इनकी ये आदर्शात्मक भावनाएं आज नहीं तो कल व्यावहारिक भी सिद्ध होंगी।

साहित्यकार का स्थान—इनकी दृष्टि में साहित्यकार का स्थान अप्रतिम है। राजनीति का बड़े-से-बड़ा नेता साहित्यकार से किसी प्रकार भी श्रेष्ठ नहीं है। जहाँ राजनीतिक अपनी ही सत्ता पर ज़ोर देकर सृष्टि को अपनी इच्छानुसार संचालित करने की चेष्टा करता है, वहाँ साहित्यकार मनुष्य की प्रवृत्ति को श्रेय देता है। राजनीति के बाह्य उपादानों से सच्ची स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हो सकती। साहित्यकार के विचार से "हर मनुष्य जब अपने ही प्रिय मार्ग से चलकर अपनी स्वाभाविक वृत्ति को कला-शिक्षा के भीतर से अधिक मार्जित कर लेगा और इस देश में अधिकाधिक कृतिकार पैदा होंगे, तब सामूहिक उन्नति के साथ-ही-साथ काम्य स्वतन्त्रता आप-ही-आप प्राप्त होगी, जैसे युवकों को प्रेम की भावना आप-ही-आप प्राप्त होती है, यौवन की एक परिणति की तरह।" फैज़ाबाद साहित्य-सम्मेलन में राजनीतिक नेताओं के सामने साहित्यिकों की हेठी इन्हें सह्य न हो सकी और एक बड़ा हंगामा खड़ा हो गया। इस अवसर पर आचार्य शुक्ल ने इनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। हिन्दी-साहित्य से इन्हें अत्यधिक प्रेम है। किसी भी प्रान्तीय भाषा के साहित्यकारों से ये हिन्दी के साहित्यकारों को कम योग्य नहीं समझते। एक बार महात्मा गांधी के कहने पर कि हिन्दी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर कौन है, आपने गांधीजी से एक इन्टरव्यू लेकर इसका प्रतिवाद किया था। हिन्दुस्तानी की खिचड़ी ज़बान में इनकी आस्था नहीं थी। भाषा भावों के अनुकूल होनी चाहिए। हाँ, भाषा में भावों की व्यापकता का सन्निवेश आवश्यक है।

अध्यात्म का समर्थन—दार्शनिक क्षेत्र में ये अद्वैतवादी हैं। इनकी कविताओं

में दर्शन की अन्तर्धारा सर्वत्र प्रच्छन्न या प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान मिलेगी। आज की भौतिकता के विरोध में इन्होंने जगह-जगह आवाज़ उठाई है। आज के यन्त्रवाद के भयानक परिणाम की ओर संकेत करते हुए इन्होंने आध्यात्मिकता का प्रतिपादन किया है। आज का युग मार्क्स के प्रभाव में आकर अर्थ को सब-कुछ मान बैठा है। इसके परे भी कुछ है, इसकी ओर लोगों की दृष्टि नहीं जाती। गांधीजी की आध्यात्मिकता के ये पूरे समर्थक हैं। दुनिया में सुख और शांति का आगमन अहिंसा द्वारा हो सकता है, इसे इन्होंने 'अणिमा' के कुछ गीतों में स्पष्ट कर दिया है।

मुक्त-प्रेम का समर्थन—निराला को जैसा मैंने पहले ही निवेदन किया है बन्धन कभी भी प्रिय नहीं रहा। प्रेम के क्षेत्र में भी ये मुक्तप्रेम के समर्थक हैं। इनका प्रेम जाति और धर्म की संकीर्ण चहारदीवारी से परे है। हाँ, इसमें गम्भीरता होनी चाहिए, छिछोरापन नहीं। 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' उनके प्रेम के औदात्य से प्रभावित होकर इन्होंने एक कवित्वपूर्ण प्रशस्ति लिखी है। 'अप्सरा' के कनक और राजकुमार का विवाह भी इसी बात की पुष्टि करता है। कनक गन्धर्व-कन्या थी और राजकुमार समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति। दोनों के व्यक्तिगत आकर्षण तथा अन्तरसाम्य के आधार पर विवाह सम्पन्न हुआ। 'निरुपमा' की नायिका नीरू और कुमार का विवाह भी प्रेम के आधार पर ही सम्पन्न होता है। प्रतीत होता है कि इस विषय में ये ब्रह्मसमाज की स्वतन्त्रता के हिमायती हैं। 'वर्तमान हिन्दू-समाज' में ये लिखते हैं—"वर्तमान सामाजिक परिस्थिति पूर्ण मात्रा में उदार न होने पर भी विवाह आदि में जो उल्लंघन कहीं-कहीं देखने को मिलते हैं, वे भविष्य के शुभ चिह्न प्रकट कर रहे हैं। संसार की प्रगति से भारत की घनिष्ठता जितनी ही बढ़ेगी, स्वतन्त्रता का बाह्य रूप जितना ही विकसित होगा, असवर्ण विवाह का प्रचलन भी उतना ही होता जाएगा।"

जाति के बन्धनों में इन्हें विश्वास नहीं। रंगभेद की इन्होंने निन्दा की है। 'अणिमा' के कुछ गीतों में इसका वर्णन आया है—

दूर हो अभिमान, संशय,
वर्ण - आश्रम - गत महाभय
जाति जीवन हो निरामय
वह सदाशयता प्रखर दो।

... ...

देखता हूँ यहाँ, काले लाल पीले श्वेत जन में
शान्ति की रेखा खिंची है, क्रान्ति कृष्णा रो गई है।

मानवतावाद का पोषण—इन्होंने किसी प्रकार की कुरुचिपूर्ण रूढ़ियों का पक्ष कहीं नहीं ग्रहण किया है। निराला मानवतावाद के पोषक हैं। आज के हिन्दू, मुसलमान, सिख और ईसाई सभी के मनोभाव बदल चुके हैं—

नहीं यह कल्पना
सत्य है मनुष्य का
मनुष्यत्व के लिए,
बन्द हैं जो दल अभी।
किरण सम्पात से
खुल गए वे सभी।

'अप्सरा' की कनक का आचरण सवर्ण हिन्दुओं के आचरण से किसी प्रकार कम श्रेष्ठ न था। किन्तु वह गन्धर्व-कन्या जो थी, इसलिए हिन्दू-धर्म उसे पतित ही समझता था। प्रसंग आने पर कनक ने तारा से पूछा था—"दीदी, क्या किसी जात का आदमी तरक्की करके दूसरी जात में नहीं जा सकता?" उसकी दीदी का उत्तर, जो उसे चन्दन ने बतलाया था, निराला के विचारों की पुष्टि करता है—"बहन, हिन्दुओं में अब यह रिवाज नहीं है, मैं एक विश्वामित्र को जानती हूँ, ज्यादा हाल तुम्हें छोटे साहब बतला सकेंगे···वे कहते हैं, आदमी आदमी है, और ऊँचे शास्त्रों के अनुसार सब लोग एक ही परमात्मा से हुए हैं, यहाँ जिस प्रकार शिक्षाक्रम से बड़े-छोटे का अन्दाज़ लगाया जाता है, पहले इसी तरह शिक्षा, सभ्यता और व्यवसाय का क्रम रखकर जातियाँ तैयार की गई थीं, और भी बहुत-सी बातें कहते हैं।"

आन्तरिक जागर्ति—जहाँ तक राजनीति का प्रश्न है इन्हें जन-जागरण के लिए अपनाए गए वाह्य उपादानों में आस्था नहीं है। रचनात्मक कार्य पर ये विशेष जोर देते हैं। भीतर की जागर्ति से ही लोगों में राष्ट्रीय भावना का उदय सम्भव है। जेल जाना इनकी दृष्टि में वहुत उपयोगी नहीं। जितना समय एक नेता जेल की दुर्लंघ्य प्राचीरों के भीतर खो देता है, वाहर रहकर उससे अधिक उपादेय कार्य कर सकता है। धनी-मानी मंच पर बोलने वाले दिखावटी नेता की तो इन्होंने बार-बार निन्दा की है। 'वनवेला' और 'महँगू महँगा रहा' में ऐसे नेताओं पर चुभता हुआ व्यंग्य किया गया है। 'महँगू महँगा रहा' में—

आजकल पण्डितजी देश में विराजते हैं
माताजी को स्वीटज़रलैण्ड के अस्पताल,
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है
बड़े भारी नेता हैं।

नेता-सम्बन्धी विचार—जो बातें 'महँगू महँगा रहा' में कही गई हैं, वे ही बातें वनवेला के लक्षपति के नेता-पुत्र के विषय में कही गई हैं। नेता का इनका अपना अलग विचार है। नेतृत्व करने की पूर्ण योग्यता उसी में है जिसे विविध विषयों का ज्ञान तथा अनुभव हो। 'अलका' में स्नेहशंकरजी सावित्री से कह रहे हैं—"इसी लिए नेता मनुष्य नहीं, सभी विषयों की संकलित ज्ञानराशि का भाव नेता है। इसी लिए किसी भी तरफ का भरा-पूरा मनुष्य दूसरे किसी भी तरफ़ के बड़े मनुष्य की बराबरी कर सकता है। पर देश में यह बात नहीं हो रही। यही मैं कह रहा था। एक को पैतृक सम्पत्ति मिली। पिता जज थे। पूर्ण शिक्षा भी मिली, क्योंकि अब

रुपए से शिक्षा का ताल्लुक है । वह इटली, जर्मनी, फ्रांस, इंगलैंड और अमेरिका आदि देशों से शिक्षोत्कीर्ण पदवियों के हीरों का हार पहनकर स्वदेश लौटे । बैरिस्टर हुए । दो करोड़ रुपया अर्जित किया । अन्त में दस लाख देश को दान कर दिया । कोने-कोने तक नाम फैल गया । पत्र यशोगान करने लगे । वह देश के नेता हो गए······"

शिक्षा-प्रसार—देश में जागति के लिए ये शिक्षा-प्रसार को पहली आवश्यकता बतलाते हैं । नेताओं के जेल जाने की अपेक्षा यह काम अधिक महत्त्वपूर्ण है । 'अलका' में ही स्नेहशंकरजी कहते हैं—"वे यदि इन किसानों की शिक्षा के लिए सोचें, हर ज़िले के आदमी, अपने ही ज़िले में, जितने हों, उतने केन्द्र कर अर्थात् उतने गाँवों में, इन किसानों को केवल प्रारम्भिक शिक्षा भी दे दें, तो उनके जेल-वास से ज़्यादा उपकार हो और यह शिक्षा की सचाई सहृदयों की यथेष्ट संख्या-वृद्धि कर दे । किसी प्रकार का सुधार पहले मस्तिष्क से होता है । जहाँ मस्तिष्क ही न हो वहाँ नेता की आवाज़ का क्या असर हो सकता है ।···जेल में व्यर्थ जीवन व्यतीत होता है । जनता मुँह फैलाए संवादपत्रों में स्वतन्त्रता की राह देखती है ।" गाँवों में शिक्षा-प्रचार के लिए अर्जित ऐसे वीतराग और कर्मठ व्यक्तियों की बड़ी आवश्यकता है ।

शोषकों की भर्त्सना—इनकी प्रारम्भिक कविताओं में निम्नवर्ग की ओर इनकी दृष्टि अपने समसामयिक कवियों की अपेक्षा पहले गई थी । बाद में महाजनों और ज़मींदारों के शोषण के विरुद्ध भी लिखा । महाजनों के चंगुल में फँसकर ऋण लेने वाले व्यक्तियों का कम ही उद्धार हुआ है । मूलधन से कई गुना अधिक दे देने पर भी ऋणी को छुटकारा नहीं मिलता । ज़मींदारों के हथकंडे और भी निराले होते हैं । लगान लेकर किसी दूसरी वस्तु का प्रतिशोध लेने के लिए दावा कर देना, बेदखली दायर करना, घर बनाने, नाँद गाड़ने प्रत्येक बात में नज़राना लेना साधारण बातें हैं । बोआई के समय हरी और बेगार बजाना किसान का धर्म है । अपनी जघन्य वासनाओं की तृप्ति के लिए वे अनेक प्रकार के हथकंडे भी काम में लाते हैं । इसीलिए ये यहाँ तक लिख जाते हैं—

जमींदार की बनी,
महाजन धनी हुए हैं
जग के मूर्त पिशाच
धूर्त गण गनी हुए हैं ।

'अलका' का नायक विजय दो रुपया बकाया लगान के लिए निपीड़ित एक किसान की रक्षा के निमित्त अपनी जान तक दे देने को प्रस्तुत हो जाता है । 'निरुपमा' में नीरू अपने मन में सोचती है—'ज़मींदार के धर्म का पालन करते हुए उसके दादा ने एक प्रकार से कुमार का सर्वस्व हर लिया है···कुमार की सम्पत्ति तो ले ही ली गई, ज़मींदार के षड्यन्त्र से मलिकवा की हत्या भी हुई और उसकी बूढ़ी माँ की कमर तोड़ दी गई ।' राजाओं और ताल्लुकेदारों की वासना का नग्न रूप 'अप्सरा' और 'अलका' दोनों में है ।

धार्मिक ढोंगों पर आक्रमण—धार्मिक आडम्बरों से इन्हें घृणा है। धर्म के बाहरी विधानों को लक्ष्य कर इन्होंने कड़े व्यंग्य किये हैं। देवताओं की जगह रखे हुए पत्थरों, पंडों, पुजारियों को आड़ें हाथों लिया है। 'लिली' की एक कहानी 'अर्थ' में इन्होंने हिन्दू धर्म के प्रचलित गप्पों पर खूब छींटाकशी की है। कहानी का नायक रामकुमार अपने पोषण के लिए कोई कार्य नहीं करता। वह पूजा के बल पर धन प्राप्त करने की इच्छा करता है। रामचन्द्रजी को चित्रकूट के पते से पत्र लिखता है। अन्त में स्वयं चित्रकूट चला जाता है। रामचन्द्रजी से मिलने के लिए वह कामदगिरि पर चढ़ने का भी उद्योग करता है। इस प्रकार उसकी बड़ी छीछालेदर की गई है। 'बेला' के 'आ रे गंगा के किनारे' में भी पंडों की खबर ली गई है।

उधर उनका मन समाजवादी विचारधारा की ओर भी गया है। 'बेला' और 'नए पत्ते' की कविताओं से इनकी ध्वनि निकलती है। व्यक्तिगत सम्पत्ति का निषेध करते हुए उस पर देश के नियन्त्रण का निवेदन किया है—

सारी सम्पत्ति देश की हो,
सारी आपत्ति देश की बने
जनता जातीय वेश की हो।

... ...

भेद कुल खुल जाय वह
सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाय जो
पूँजी तुम्हारी मिल में है।

अर्थ-नीति—समाजवाद की अर्थपद्धति में विश्वास करते हुए भी इन्होंने आध्यात्मिकता का पक्ष कभी नहीं छोड़ा। रोटी के मसले के अतिरिक्त कुछ और भी है जिसके न रहने पर मानवता को सच्ची शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इनके नाम के अनुरूप इनका व्यक्तित्व भी निराला है। जर्जरोन्मुख कृत्रिम बन्धनों को तोड़कर ये बिलकुल स्वच्छन्द चलने वाले व्यक्ति हैं। सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक रूढ़ियों में कभी भी इनका विश्वास नहीं रहा। अतीत के उपयोगी तत्त्वों को ग्रहण करते हुए इन्होंने नवीनता का मुक्त-हृदय से स्वागत किया है। अपने जीवन के आरम्भ से ही काव्यगत सींखचों को तोड़नेवालों का इन्होंने नेतृत्व किया। ऐसा करने में इनके व्यक्तित्व में किसी प्रकार का स्खलन नहीं आया। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'हिन्दी साहित्य—बीसवीं शताब्दी' में लिखा है—"जितना प्रसन्न अथवा अस्खलित व्यक्तित्व निरालाजी का है, उतना न प्रसादजी का है, न पंतजी का है। यह निरालाजी की समुन्नत काव्य-साधना का प्रमाण है।" इनके जिस तटस्थ और निर्लेप व्यक्तित्व का दर्शन हम इनके काव्यों में पाते हैं, वह इनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की मनोरमता तथा महत्ता का प्रतिफलन है।

शक्ति सौंदर्य और ज्योतिस्पर्श के कवि

जानकीवल्लभ शास्त्री

निराला का आविर्भाव नयी काव्य-चेतना के आकाश में एक तेजोमय धूमकेतु के समान हुआ, एक प्रखर धूमकेतु, जिसका सिर अद्वैत दृष्टि की मणि के आलोक से देदीप्यमान रहा—और जिसके पीछे अपनी ही व्याप्ति में खोई ज्योति-वाष्पों की एक लम्बी धूमिल पूँछ भी लिपटी रही, जिसमें उनके उपचेतन व्यक्तित्व की वे सभी महत्त्वाकांक्षाएँ, विकृतियाँ, विषमताएँ—अहंमन्यता, स्पर्धा, प्रचण्डता तथा निर्मम जीवन-परिस्थितियों के कृच्छ्, कष्टपूर्ण संघर्षों की परछाइयां एक अस्पष्ट, अचिन्त्य, समझ में न आनेवाले, रहस्यमय इन्द्रजाल में सी बँटी प्रतिच्छवित रहीं। निराला का विकास प्रसाद की तरह मन्द गजगामी गति से नहीं हुआ। उन्होंने कविता-कानन में अपने समस्त प्रवेग के साथ सिंह की तरह प्रवेश किया और उनकी पहली ही रचना 'जूही की कली' ने नयी अभिव्यंजना तथा शिल्प-कौशल के कारण आलोचकों की दृष्टि में हिन्दी-जगत् में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। इसका कारण यह था कि निरालाजी को प्रारम्भिक काव्य-प्रेरणा के लिए वंग-भाषा की काव्य-उर्वर भूमि और कवीन्द्र रवीन्द्र का नव युग के सौन्दर्य-बोध से परिष्कृत एवं भाव-संस्कृत वातावरण मिला था। 'जूही की कली', 'जागृति में सुप्त थी' तथा 'शेफालिका' आदि रचनाओं में, और एक प्रकार से निरालाजी की सभी स्वच्छन्द एवं मुक्त छन्दों की रचनाओं में, जिनकी प्रेरणा निश्चय ही उनको बंगला-छन्दों से मिली, रवीन्द्र के अक्षर-मात्रिक संगीत का प्रसार एवं शब्द-चयन-बोध दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए उनकी कविताओं में प्रारम्भ से ही कला-शिल्प का सौष्ठव मिलता है। जिस प्रकार मेरी 'वीणा' में अथवा प्रसादजी के 'कानन कुसुम' या 'झरना' आदि रचनाओं में कला-दृष्टि की अपरिपक्वता मिलती है, वैसी निरालाजी में उस मात्रा में कहीं नहीं दृष्टिगोचर होती। जिस तरह मुझे प्रारम्भ में हिमालय के सान्निध्य से, और फिर अंग्रेज़ी कवियों के सम्पर्क में आने से, काव्य-रुचि तथा कला-बोध-सम्बन्धी प्रेरणा मिली, उसी तरह निराला को भी बंगला के उन्नत साहित्य-महीधर-प्रांगण में रहने के कारण प्रथम प्रेरणा मिली हो तो यह बिलकुल ही स्वाभाविक है।

निरालाजी के कृतित्व के अनेक पहलू हैं। सर्वप्रमुख तो उनकी सबल बौद्धिक

रचनाएँ हैं, जिनमें उनकी अद्वैत-दृष्टि का अखण्ड तेज, असीम सौंदर्य तथा निगूढ़ सांकेतिक कला-वैभव है। यह उनके काव्य की ज्योतिर्मय भूमि है, जिसमें कई अत्यन्त सफल गीत तथा अनेक लम्बे प्रगीत भी अंकुरित हुए हैं। इस ज्योति-संचरण को मुक्त अभिव्यक्ति निराला की मुख्यत: तीन कृतियों, 'गीतिका', 'अनामिका' तथा 'तुलसीदास' ही में मिल सकी है, जो निरालाजी की सन् '३६ से '३९ तक की रचनाएं हैं। इसके बाद वह कला-संयम, भाव-सौष्ठव, शिल्प-सौन्दर्य, सांगोपांग प्रतीकरूपक विधान-क्षमता उनकी अन्य, पूर्व कृतियों में भी, मेरी दृष्टि में नहीं पाई जाती है। 'परिमल' में उनका बौद्धिक तेज कला की दृष्टि से मन्द तथा भावना-गुण्ठित है। उसके गीतों में गीतिका की गीतियों का-सा ज्योतिस्पर्श नहीं मिलता, भाव-संवेदना भले ही मिलती हो। निरालाजी ने उपर्युक्त तीन ग्रन्थों को छोड़कर, अपने समस्त कृतित्व-काल में अपने संकल्प-बल से परिस्थितियों की चेतना पर आरूढ़ होकर, अपनी सृजन-कामना को अभिव्यक्ति दी है। वे अत्यन्त हठी, अहम्मन्य तथा कभी-कभी उद्धत होने के साथ ही अत्यन्त भाव-प्रवण तथा संवेदनशील तो थे ही, इसीलिए उनके हृदय में बाहरी-भीतरी प्रभावों, व्यक्तिगत जीवन-संघर्षों, महत्त्वाकांक्षाओं के दंशों तथा प्रवेगों के साथ आशा-निराशा, आह्लाद-विषाद के ज्योति-अन्धकार का इतना दुर्वर्ष उद्वेलन अधिकतर विद्यमान रहता था कि अत्यन्त सशक्त सृजन-क्षमता होने पर भी उनके पास अपने भीतर अन्त:स्थित होने को कोई ध्यान-बिन्दु या प्रत्यय-प्रबोध की भूमि स्थिर नहीं रह पाती थी। या कहिए कि सृजन के लिए जिस भाव-उर्वर शान्ति की आवश्यकता होती है वह उसकी पीठिका का, अपने आवेगशील स्वभाव के कारण, अपने भीतर निर्माण ही नहीं कर पाते थे, जिसके शुभ्र कल्पना-हंस-पंखों पर आरूढ़ हो उनकी सृजन-चेतना उन्मुक्त विहार कर चिदाकाश में रंग पर रंग बिखेर सकती। निरालाजी अन्त:केन्द्रित होकर केवल सन् '३६ से '३८ तक ही रह सके। उसके बाद कुछ तो बाहर की आर्थिक परिस्थितियों की कठिनाइयों तथा स्वजनों के वियोग के कारण, पर मुख्यत: उनके अत्यन्त स्वाभिमानी, महत्त्वाकांक्षी स्वभाव के कारण, उनके मन में बिखराव के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे, और सन् '४२ में जब वह मुझे एक दिन इलाहाबाद में बैंक रोड पर जाते हुए मिले तो मैं उनकी मन:स्थिति को देखकर विस्मय-विमूढ़ हो गया। उनकी निर्भीकता या औद्धत्य, उसके प्रमाण में उनका गांधीजी के साथ बर्ताव तथा अपने को हिन्दी का रवीन्द्रनाथ घोषित करना आदि घटनाएँ दी जा सकती हैं। नि:सन्देह वह शक्ति-पुंज थे। अपनी उद्दाम प्रवृत्तियों के कारण प्राय: आत्म-सन्तुलन खोकर अत्यन्त उग्र हो उठते थे। वह सचमुच ही हिन्दी के रवीन्द्रनाथ होते या उनसे भी बड़े होते यदि जितनी व्यापक अद्वैत दृष्टि उनके पास थी, उतनी ही उनकी प्रवृत्तियाँ भी परिष्कृत होतीं अथवा उतना ही उनके स्वभाव में आत्म-सन्तुलन भी होता। किन्तु निरालाजी के लिए यह सोचना कि वह कुछ और होते, यह सम्भवत: उनके साथ अन्याय करना है; वह अदम्य शक्ति-दुर्ग थे, और हिन्दी ने उन्हें इसी रूप में श्रद्धानत, भाव-प्रणत होकर स्वीकार कर लिया और उन्होंने जो कुछ भी साहित्य को दिया उसका छायावादी युग की श्रेष्ठ उपलब्धि के रूप में मूल्यांकन कर

उसे अकुण्ठित समादर दिया। यह उनके व्यक्तित्व के प्रति दुर्निवार आकर्षण का, और साथ ही उनके विरामहीन कटु संघर्षमय जीवन के लिए उन्मुक्त, असंकुचित सहानुभूति का प्रमाण है।

'गीतिका' के कुछ गीत हिन्दी की अमूल्य सम्पत्ति हैं, संगीत की दृष्टि से उनमें वह मार्दवता या पूर्णता न हो, और सम्भवतः भाषा भी कहीं जटिल तथा गूढ़ हो, पर भाव-मूल्य तथा ज्योतिस्पर्श की दृष्टि से इनमें से अधिकांश गीत अपूर्व हैं, जैसे—मौन रही हार, प्रिय पथ पर चलती, सब कहते श्रृंगार। जिस प्रेम की भूमिका पर अधिकतर गीत लिखे गए हैं उनकी अर्थवत्ता उस भूमिका को पार कर सुदूर किन्हीं दूसरे ही रश्मि-क्षितिजों में आरोहण करती-सी प्रतीत होती है। यद्यपि लौकिक के माध्यम से अलौकिक और अलौकिक के माध्यम से लौकिक के चित्रण करने की परिपाटी हिन्दी कविता के लिए अपरिचित नहीं, किन्तु निरालाजी की ज्योति-द्रवित दृष्टि का सौन्दर्य इन गीतों को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। निरालाजी की कला में रोमांटिक के अतिरिक्त एक क्लैसिकल स्पर्श भी मिलता है, क्लैसिकल का प्रयोग मैं मुख्यतः काव्य की उत्कृष्टता तथा बौद्धिक गाम्भीर्य की दृष्टि से कर रहा हूँ। यद्यपि छन्द-बन्ध तोड़कर कला आदि की दृष्टि से उन्होंने प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्परा का विद्रोह किया है, पर भारतीय दर्शन, चिन्तन तथा सांस्कृतिक परम्परा की दृष्टि से वह प्रसादजी की तरह स्वच्छन्दतावादी होते हुए भी अपने अन्तरतम में क्लैसिकल अभिरुचि के कलाकार हैं। उनका जो सर्वोत्कृष्ट है वह क्लैसिकल रुचि से प्रेरित है, उनका जो माध्यम अथवा उससे भी साधारण कोटि का कृतित्व है उसमें अवश्य वह उद्बोधक, विद्रोही, क्रान्तिकारी एवं कटु व्यंग्यकार के रूप में अधिक प्रकट हुए हैं। गीतिका के अन्य उत्कृष्ट गीतों में, 'सखि वसन्त आया' भी कला का नवोत्कर्ष लिये हुए है। 'लता मुकुल हार गन्ध-भार भर, बही पवन बन्द मन्द मन्दतर'—ऐसी सौन्दर्य-सम्भार से झुकी पंक्तियाँ निराला ही हिन्दी में लिख सकते थे। यद्यपि उनकी शब्द-योजना में रवीन्द्र की छाप है, पर निखरी वह निराला की बनकर है। इसी प्रकार उनके 'कण कण कर कंकण, प्रिय किण किण रव किंकणी, रणन रणन नूपुर, उर लाज, लौट रंकिणी' के स्वर-संगीत में भी क्लैसिकल संगीत की प्रतिध्वनियाँ गूँजती हैं, जो संस्कृत काव्य को मुखरित करता रहा है। गीतिका के अनेक गीत जैसे निराकार-चिदाकाश में प्रथम बार रूप-गुण का ज्योतिसौन्दर्य परिधान पहनकर कला में ढले हों। जैसे—'पावन करो नयन, दृगों की कलियाँ नवल खुलीं, स्पर्श से लाज लगी, वह रूप जगा उर में, मेघ के घन केश, बहती निराधार, जागा दिशा ज्ञान, लाज लगे जो' आदि। ऐसे भी अनेक गीत हैं जिन्हें पढ़कर मध्ययुगीन निर्गुणपन्थियों की याद आती है। पर अनेक गीतों में निराला की अपनी ही दृष्टि से प्रतीक और बिम्ब-योजना सुबोध नहीं हैं, पर हम इन्हें महार्घ चैतन्य मणियों की तरह अपने काव्य रत्नागार में संचित करना चाहेंगे, ये सूर्य के प्रकाश के रंग-बिरंगे टुकड़े हैं। इन्हें अगर कोई विलम्बित ताल पर शास्त्रीय राग-रागनियों में बाँधे तो इनके बहुत-से अर्थ-संकेत सम्भवतः कुछ अंशों तक स्पष्ट हो सकें। इन तीन वर्षों की रचनाओं में स्थान-स्थान पर निरालाजी ने

अपने चेतनापट का नयी भावानुभूति में रंग जाने का सुख व्यक्त किया है—जैसे, 'मार दी मुझे पिचकारी, कौन री, रंगी छवि वार !' या 'भावना रंग दी तुमने प्राण, छन्द बन्धों में निज आह्वान !' या 'खुल गया रे अब अपनापन, रंग गया जो वह कौन सुमन ?' या 'रश्मि ऋजु खींच दे चित्र शतरंग के, या रंग गई पग पग पर धन्य धरा' इत्यादि। ऐसे और भी अनेक गीत उनके इस युग के काव्य में मिलेंगे जब उनकी ऊर्ध्व रुद्ध-दृष्टि एक नवीन भाव-बोध के जगत् में उतर सकी और जीवन से नया राग-सम्बन्ध स्थापित कर उनकी उच्च कोटि की प्रतिभा अनेक रचनाओं की सृष्टि कर अपने को सार्थक कर सकी। 'तुलसीदास' में वह कवि-चित्त के लिए कहते हैं— 'वह उस शाखा का वन विहंग, उड़ गया मुक्त नव निस्तरंग, छोड़ता रंग पर रंग— रंग पर जीवन !' ऐसे रंग निःसन्देह निराला की अद्वैत दृष्टि ही बरसा सकती है, जिसका अपना एक स्वतन्त्र काव्य-मूल्य है। इस युग के कृतित्व में 'सरोज स्मृति' आदि व्यक्तिगत कृतियों तथा कुछ अन्य रचनाओं को छोड़कर निराला की भाव-भूमि अत्यन्त उच्च तथा उनकी कला में एक भावमुक्त निखार तथा शिल्प में प्रौढ़ संयम आ गया है। निरालाजी का सौन्दर्य-बोध भावुक चेतना से अधिक आत्मिक चेतना का ओज तथा प्रकाश लिये हुए है। उनके कुछ भाव-भीगे प्रतीक भी है, जिनमें अधिकतर युग-परिवेश तथा जग-जीवन के प्रति उनके हृदय की करुणा प्रकट हुई है, और उनके व्यंग्यात्मक काव्य में यही भावना अपने व्यक्तिगत संघर्ष के कारण कटुता तथा तिक्तता में परिणत हो गई है। उनका 'तुलसीदास' क्लिष्ट होने पर भी श्रेष्ठ काव्य-वैभव से ओतप्रोत है और उसमें उन्होंने 'तुलसीदास' के व्यक्तित्व द्वारा अत्यन्त उदात्त स्तर पर अपने युग तथा अपने जीवन-संघर्ष को भी वाणी दी है। इस खण्ड-काव्य में निराला के भाव-जगत् तथा रचना-शक्ति का अधिक सर्वांगपूर्ण उद्घाटन हुआ है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' उनकी सूक्ष्म, जटिल कलाकारिता तथा संकलपशक्ति के द्योतक हैं। यद्यपि 'राम की शक्ति-पूजा' में तत्सम-बहुल सामासिक पदों के घरहरे-से खड़े लगते हैं, और उसके सबसे मार्मिक अंश में—जब राम अपना राजीव नयन देवी को अर्पित करने के लिए प्रस्तुत होते हैं, कृत्तिवास की रामायण की घटना को दुहराया गया है—फिर भी अपनी अबाध शिल्प-शक्ति के अदम्य वेग तथा पौरुष-सौन्दर्य-क्षमता के कारण वह हिन्दी में एक अभूतपूर्व लम्बी कविता है। इसी प्रकार 'सरोज स्मृति' कवि की आत्मव्यथा की मर्मस्पर्शी काव्य-मंजूषा है। इसकी शैली से भी घनिष्ठ आत्मीयता का परिचय मिलता है। इस रचना का निरालाजी की कृतियों में अत्यन्त कोमल तथा पवित्र स्थान है। इस प्रकार 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति-पूजा' तथा 'सरोज स्मृति' उनके व्यक्तित्व के विशद आयामों का एक महत्त्वपूर्ण त्रिकोण बनाते हैं जिसके केन्द्र-बिन्दु के रूप में हम निराला की जीवन-साधना के अद्वैत दृष्टि-बिन्दु को रख सकते हैं। निराला की बुद्धि-पक्ष से प्रेरित रचनाएँ ही मेरी दृष्टि में उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं। उनकी भावना भी अधिकांशतः उनकी बुद्धि-रश्मि से विद्ध ही देखने को मिलती है, जिसमें मुख्यतः उनके कुछ प्रार्थनापरक तथा आत्मनिवेदन के प्रगीत हैं—जैसे, 'भर देते हो बार-बार', 'पथ

पर मेरा जीवन भर दो' आदि, और कुछ हृदय की करुणा-व्यंजक, जैसे 'विधवा' आदि, कुछ उद्बोधक जैसे, 'जागो फिर एक बार', तथा अधिकतर प्रेमगीत हैं, जिनमें कहीं उद्दाम कामना जैसे, 'जूही की कली' में, कहीं सौन्दर्य का उपभोग, कहीं मधुरभाव-निवेदन अथवा स्मृति, व्रीड़ा, लज्जा तथा सुप्त-सौन्दर्य आदि का सफल चित्रण मिलता है। 'अनामिका' में निराला की और भी अनेक उत्कृष्ट रचनाएँ हैं, जो उनका स्थान उच्चतम श्रेणी के कवियों में सुरक्षित करती हैं। 'अनामिका के कवि के प्रति' मेरी छोटी-सी रचना उसके काव्य-वैभव के प्रति मेरी प्रणत अंजलि है। निराला की व्यंग्यात्मक रचनाओं में उनके हृदय की कटुता के साथ ही सामाजिक दुर्व्यवस्था, विषमता आदि पर तीव्र प्रहार मिलते हैं। उनकी 'कुकुरमुत्ता'-सी रचना अधिकतर उनके मन की कुण्ठा तथा तिक्तता की ही परिचायक है। उसमें धनी-निर्धन, व्यक्ति-समाज, अच्छे-बुरे, सभी पर उन्होंने प्रहार किया है। निराला को विद्रोही कवि मानते हैं—सामाजिक रूढ़ियों, छन्द-परम्परा आदि का उन्होंने सशक्त विद्रोह किया है; पर वह उस अर्थ में विद्रोही नहीं, जिस अर्थ में एक युग-प्रबुद्ध व्यक्ति ऐतिहासिक विकास की अनुभूति से प्रेरित होकर युग-विरोधी परिस्थितियों, मान्यताओं आदि के प्रति विद्रोह करता है। अपने कृतित्व से अधिक वह अपने व्यक्तित्व से विद्रोही (रिव्युअल) थे। वास्तव में, उनके पास ऐतिहासिक दृष्टि नहीं थी। जो कुछ उन्होंने सामन्तवाद या पूँजीपतियों के विरोध में लिखा वह आज की युग-समस्या पर अपने नवीन ऐतिहासिक दृष्टि-प्रवेश के कारण नहीं, बल्कि अपने व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष तथा आत्म-विरोधी परिस्थितियों के कारण। प्रगतिवादियों के मान्य अर्थ में न वह प्रगतिशील थे, न समाजवादी या मार्क्सवादी ही; वह मुख्यतः अद्वैतवादी और शक्तिवादी थे, और उसके बाद अपनी महत्त्वाकांक्षा तथा बलिष्ठ व्यक्तित्व के कारण थे अहंवादी। चूँकि प्रगतिवाद के चरण उसी के आलोचकों के संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण डगमगाने लगे थे, उन्होंने गिरने से बचने के लिए उस समय निराला की बाँह पकड़ी जब वह प्रायः संघर्ष से टूटकर अपनी असन्तुलित मनःस्थिति में युग के आन्दोलनों के प्रति विरक्त तथा तटस्थ हो चुके थे—जिस प्रकार अब उनकी मृत्यु के बाद अपने पक्ष को बल देने के लिए प्रयोगवादी एवं नयी कवितावादी उन्हें अपनी नवीनतम प्रेरणा के गोमुख के रूप में प्रचारित करने लगे हैं—जैसा कि विगत वर्ष इसी व्याख्यानमाला के अन्तर्गत अज्ञेयजी ने भी अपने व्याख्यान में स्वीकार किया था—वे अब निराला के व्यक्तित्व की विराट् नींव पर मिट्टी के घरौंदे तथा झाड़-फूँस के छप्पर उठाने का प्रयत्न कर रहे हैं। वैसे निरालाजी में विद्रोह, क्रान्ति तथा प्रगति के लोक-मंगल-कामी स्वर भी मुखर रहे हैं, किन्तु जिस ऐतिहासिक अर्थ की वस्तून्मुखी दृष्टि में विद्रोह, क्रान्ति या प्रगतिवाद आदि प्रयुक्त होते हैं उसका बोध न उनकी 'कुकुरमुत्ता' को पढ़कर होता है न अन्य यथार्थवादी, समाजोन्मुखी रचनाओं से ही, जिनमें वह चारों ओर फैली विकृति, सड़ाँध, दुःख, अशिक्षा तथा जड़ीभूत रूढ़ियों के ढांचे पर व्यंग्य प्रहार करते हैं। बादल से 'गरजो विप्लव के नव जलधर' या 'विप्लव के प्लावन' या 'तिरती है समीर सागर पर, अस्थिर सुख पर दुख की

छाया' या 'जग के दग्ध हृदय पर, निर्दय विप्लव की प्लावित माया'—'यह तेरी रणतरी भरी आकांक्षाओं से, घन भेरी-गर्जन से, सजग सुप्त अंकुर, उर में पृथ्वी के, आशाओं से नव जीवन की, ऊँचा कर सिर ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल' आदि निरालाजी ने कहा है, इसीलिए बादल को क्रांति का दूत मान लेना और उस क्रांति को युग-क्रान्ति से संबद्ध करना केवल उनके समर्थकों की कल्पना की उड़ान भर है। बादल-राग निराला के ही व्यक्तित्व की बहुमुखी अभिव्यक्ति है। उसमें जो विप्लव आदि की भावना है वह भारतीय स्वातन्त्र्य-युग के जागरण का आह्वान भर है, और है उसमें एक दार्शनिकता, 'भय के मायामय आंगन पर' चलने वाले सृष्टि-चक्र के विविध पक्षों का चित्रण, और उनसे मुक्ति की आकांक्षा। 'निरंजन बने चयन अंजन', 'अहे कार्य से गत कारण पर निराकार', 'हैं तीनों मिले भुवन'—'आज श्याम घन-श्याम, श्याम छवि, मुक्त कंठ है देख तुम्हें कवि' आदि सम्बोधन जीवनद्रष्टा निराला के प्रतीकात्मक दार्शनिक सम्बोधन ही हैं। हाँ, यह ठीक है कि बादल राग में निराला-जी के व्यक्तित्व के तेज तथा शक्ति को अभिव्यक्ति मिली है, उनकी इस प्रकार की उद्बोधनात्मक सभी रचनाओं की शिराएँ शक्ति स्फूर्ति के रक्त से अन्तःस्पन्दित हैं। वे बुद्धितत्व के बान, शक्ति एवं पौरुष के वैतालिक हैं। तदुपरान्त उदार भावना के, और अन्त में प्रखर व्यंग्यात्मक अभिव्यंजना के कवि हैं। चाहे, प्रारम्भ में नये छाया-वादियों की जिस प्रकार उपेक्षा की गई है उसके कारण हो, या उनके मुक्त छन्दों की उपेक्षा के कारण हो, या उनके परस्पर विरोधों एवं विषमताओं से भरे सशक्त व्यक्तित्व के कारण, या जीवन की परिस्थितियों से कठोर दारुण संघर्ष के कारण हो, अथवा उनके अहंमन्य दर्प या स्वाभिमान के कारण हो—वे प्रवेग को न बाँध सकने के कारण हिन्दी के दुर्भाग्य से टूट गए। इस भग्नावस्था से भी उन्होंने कठोर संघर्ष किया और बीच-बीच में अपनी चित्त-वृत्ति के बिखराव को समेटकर प्रार्थनापरक तथा भक्ति-परक लोकगीत लिखने का प्रयत्न किया। हिन्दी को उनकी देन प्रत्येक अवस्था में बहुमुखी रही है। वे अत्यन्त प्रचण्ड, अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त निर्मम, अत्यन्त कोमल, अत्यन्त निर्भीक तथा साहसी और अत्यन्त आत्मभीरु तथा अत्यन्त विनम्र, उग्र तथा सौम्य—अपने ही से परिचालित एक निसर्गजगत् थे—जिसे अंग्रेज़ी में फेनोमिना कहते हैं। उन्होंने अपनी अनुभूति से बोध के उच्च-से-उच्च और निम्न-से-निम्न स्तर छुए थे—वह आज के युग की एक अनिवार्य परिस्थिति, उसकी महानताओं और क्षुद्रताओं के निःसंग प्रतिनिधि थे। इस देश का मध्ययुगीन, रूढ़ि-जर्जर, महदाकांक्षा-शून्य, निष्क्रिय जीवन एक सूक्ष्म संवेदनशील भाव-प्रवण विकासकामी व्यक्तित्व के सम्मुख जो पर्वताकार बाधाएँ उपस्थित कर सकता था, उसकी निर्मम, हृदयहीन बधि-रता से पीड़ित, निराला की व्यथा को न समझ सकने के कारण, हमने अपनी आत्म-ग्लानि से बचने के लिए उन्हें देवता, महामानव और एक लेजेण्ड या अतिकल्पना बना दिया है, जिस प्रकार सास-ससुर-पति के अत्याचारों से पीड़ित कोई स्त्री जब अपनी देह में आग लगाकर आत्महत्या कर लेती है तो हम उसके लिए सती का चौरा बना-कर उसे पूजने लगते हैं, जो हमारी विवशता की द्योतक मध्ययुगीन प्रवृत्ति है।

जिस दारागंज की गलियों में ये रात-दिन उद्भ्रांत की तरह घूमकर अपने मन के ताप को शान्त करने का प्रयत्न करते थे और जहाँ के कंकड़-पत्थरों से सम्भवत: उनके पैरों के तलवे छिलकर लहूलुहान होते रहते थे, आज हम उनकी उस व्यथा को भूलकर, उनके लिए कहते हैं कि वह दारागंज की रज को पवित्र कर गये हैं। हमें इस प्रमाद तथा भावान्धता को छोड़कर अपने मन के भीतर गम्भीर पैठकर यह विचार करना चाहिए कि हमारे देश की वे कौनसी जीवन-विरोधिनी परिस्थितियां तथा पथ के कण्टक या रोड़े हैं जिन्हें हटाकर हमें युगमानव का पथ प्रशस्त बनाना है। क्योंकि निराला का हम दु:ख-दैन्यग्रस्त, पराजित व्यक्ति के रूप में नहीं, युग-जीवन के अजेय सेनानी, शरशय्या पर लेटे युग-भीष्म के रूप में सम्मान करते हैं। दु:ख-दैन्यग्रस्त तो भारत में उनसे भी अधिक ९९ प्रतिशत मनुष्य हैं। निराला को हमारा युग उनके समग्र रूप में स्वीकार कर चुका है। अब वह जनश्रुति के लोकप्रिय नायक, महाप्राण महामानव के आसन पर लोक-कल्पना में आसीन हो चुके हैं। वास्तव में, मनुष्य को देवता बनाकर हम उसमें जिस मनुष्य की उपेक्षा करते हैं उसी मनुष्य के लिए हमें अपने हृदयों में स्थान बनाकर उसकी मानवीय सुख-सुविधाओं के लिए नये धरा-जीवन का निर्माण करना है। प्रसाद का शैव-व्यक्तित्व हिमालय के शुभ्र शिखर-सा था तो निराला की शक्ति की झंझा से उत्ताल, दुर्लंघ्य तरंगों में आन्दोलित व्यक्तित्व एक विशाल समुद्र-सा, जिसके उद्दाम फेनिल ज्वारों के ऊपर प्रचण्ड सूर्य का जाज्वल्य-आलोक रंग-विरंगी ज्वालाओं में सुलगकर, दृष्टि को चमत्कृत कर देता है। निराला छायावाद युग के पौरुष-प्रकाश के स्तम्भ हैं। वह अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व में अद्वितीय हैं। हमारी पीढ़ी उनके इतने निकट रही है कि उनके व्यक्तित्व से ही हम उनके कृतित्व को आँकने के लिए विवश हैं, उनका सही मूल्यांकन भविष्य ही कर सकेगा। अपनी दुर्बल मनुष्य की बाँह से उन्होंने शक्ति का खड्ग उठाने का साहस किया था। उनके दार्शनिक व्यक्तित्व का विकास समन्वय के सम्पादन-काल में, रामकृष्ण मिशन के साधुओं के सम्पर्क में हुआ, उनकी कवि-प्रतिभा को प्रथम अभि-व्यक्ति मतवाला के माध्यम से मिली। वह विवेकानन्द के चैतन्य से नहीं, उनके विचार दर्शन से प्रभावित रहे। अद्वैत-दृष्टि उन्हें संन्यासियों के सत्संग से मिली थी; निश्चय ही, उनके विरोधी व्यक्तित्व में एक उन्नत अभीप्सा का संस्कार भी था, जो उस निराकार प्रकाश का स्पर्श प्राप्त कर सका। साधुओं की साधना का पावक अनजाने ही उनके राग-तत्त्व को प्रज्वलित कर उसे बहुत अंशों तक भस्मसात् कर चुका था, पर उसका मोह उनके भीतर विद्यमान था। निराला का व्यक्तित्व योगभ्रष्ट कवि का व्यक्तित्व था, उनकी मानसिक तथा प्राणिक वृत्तियों का यथोचित संस्कार न हो सकने के कारण शक्तिपात के स्पर्श का उनमें उद्दाम संवेगों तथा आवेशों का उदय होने लगा, जिन्होंने उनके अन्त:करण को मंथित कर दिया। वे सांसारिक नियम बन्धनों के तरकस से छटे अमोघ तीर की तरह थे, जो ऊर्ध्वलक्ष्य वेध न सकने के कारण दिग्भ्रान्त हो, अनिवार्य वेग से घूमता रहा। निरालाजी के मित्र तथा सहकर्मी के नाते मैं घनिष्ठ सम्पर्क में आया हूँ। अपने युग के कवि की दृष्टि से मैं उनके

कृतित्व को बहुत अंशों में उस युग का अत्यन्त श्रेष्ठ कृतित्व मानता हूँ, उनकी सर्व-श्रेष्ठ कृतियाँ हिन्दी की बहुमूल्य तथा स्थायी निधि हैं। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में कालिदास-से महाकवि हुए हैं, पर भारतीय दार्शनिक परम्परा में ऐसे सौन्दर्य-मण्डित, ज्योतिसंवृत हिन्दी-कवि अभी तक एकमात्र निराला ही मिले हैं—यह उनके कृतित्व की पर्याप्त विजय है। उनकी उच्च कृतियों के वास्तविक पाठक थोड़े ही हो सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। संक्षेप में, उनके व्यक्तित्व के मूल्यांकन के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि वह अनगढ़ महत्त्वाकांक्षा के प्रस्तर परदेवता के प्रकाश की मूर्ति थे।

काव्य-वस्तु के अतिरिक्त, मूल्य की दृष्टि से भी, मैं उनकी अद्वैत दृष्टि पर संक्षेप में, अपने विचार प्रकट करूँगा। निराला को अद्वैत का परिचय मात्र था। कवि के सर्जन के लिए जितना पर्याप्त होता है उतनी काल्पनिक अनुभूति अथवा दृष्टि उन्हें प्राप्त हो गयी थी। उन्होंने मूल्य की गहराई में जाने के बदले कला-शिल्प-वैचित्र्य-सम्बन्धी प्रयोग अधिक किये हैं। अद्वैतबोध वेदान्त की दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वोपरि मूल्य होने पर भी विश्वमंगल तथा जीवन-मूल्य की दृष्टि से केवल अन्तरिक्ष-भ्रमण के बोध की तरह है। जिस प्रकार आज के विज्ञान के युग में चन्द्र, मंगल आदि ग्रहों की खोज में एक दिग्चर के लिए अन्तरिक्ष-यात्रा तथा पृथ्वी की परिक्रमा करना सम्भव हो गया है, उसी प्रकार आत्मिक-अधिरोहण भी तद्गत साधना-पथ से भारत जैसी आध्यात्मिक भूमि में कुछ चुने हुए साधकों तथा ऋषियों के लिए सम्भव हो सका है। बोध-शिखरों की दृष्टि से पूर्व और पश्चिम ने समान ऊँचाइयाँ प्राप्त की हों, पर साधना-सिद्धि का पथ भारत में विशेष विकसित रहा है। किन्तु जैसे कास्मा-नाट की उड़ान अथवा इस वैज्ञानिक युग की अन्तरिक्ष यात्रा व्यर्थ ही होगी अथवा उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होगी यदि मनुष्य मंगल, चन्द्र आदि ग्रहों के प्रांगण में पदार्पण कर वहाँ अपना घर न बसा सके, जैसा कि उसका ध्येय या इस युग का लक्ष्य है, उसी प्रकार अद्वैत-बोध तभी सार्थक हो सकता है जब उसकी सहायता से जीवन-मूल्य अथवा लोक-मूल्य भी अवतरित हो सके।

जैसा मैंने 'लोकायतन' में भी कहा है—'शोध सत्य, परिणाम रहे दिग्भ्रामक, तत्त्व नित्य, उपयोग अलीक, असंगत—मूर्त न कर पाए जीवन में उसको, मन जिसको पा रहा ध्यान में पद्गत।' ब्रह्म, ईश्वर, सर्वात्मा, परमज्योति आदि का बोध प्राचीन ऋषि-मुनि भी समग्रता में ग्रहण नहीं कर सके थे। क्योंकि अवाङ्मनसगोचर तत्त्व की पूर्णतर अनुभूति केवल उसके जागतिक विकास-क्रम में, जीवन की वास्तविकता में मूर्त होने पर ही सम्भव हो सकती है। इसीलिए होने को ही जानना कहा है। यह होना, आज के युग के सन्दर्भ में, वैयक्तिक होना न होकर, सामाजिक होना ही है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय प्राचीन संस्कृति तथा लोक-जीवन के क्षेत्र में ऐसे अनेक जीवन-मूल्यों के छोटे-मोटे उर्वर अवतरण समय-समय पर होते रहे हैं, जिनमें श्रीराम तथा श्रीकृष्ण चैतन्य के अवतरण मुख्य माने जाते हैं, जिन्होंने लोक-जीवन के वैश्व संचरण को एक नया मूल्य, एक नयी सांस्कृतिक पीठिका दी है। राम और कृष्ण तो

उन मान्यताओं अथवा मूल्यों के संपुंजन तथा संयोजन के प्रतीक-भर हैं। इन मूल्यों का उदय तो उस प्राचीन कृषि-युग की सभ्यता तथा संस्कृति की अनेक शक्तियों में व्याप्त उस अश्रान्त कठोर लोक-जीवन-संघर्ष से हुआ जिसके लिए एक बाहरी परिस्थितियों का नवीन परिवेश तथा भीतरी नैतिक मर्यादाओं में विकसित हो रही नयी जीवन-व्यवस्था—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था—धीरे-धीरे जन्म लेकर संगठित हो रही थी। हमारा युग भी विश्व-संक्रान्ति का युग है, और आज भी भारतीय आध्यात्मिक जागरण-चैतन्य को विश्वव्यापी नये जीवन-मूल्य एवं मानव-मूल्य में संगठित होकर नयी जीवन की वास्तविकता में मूर्त एवं परिणत होना है, जिसके लिए विश्व के पाश्चात्य देशों की देन विज्ञान आज नयी पीठिका का निर्माण कर रहा है। जब तक हम इस युग की धरती के गर्भ से निकले इस लोकव्यापी सुघड़ी के उपकरणों को उस समग्र चैतन्य में संयोजित नहीं कर सकेंगे जो नये युग का विश्वात्मा है, तब तक न इस युग की बहिर्मुखी विश्व-परिस्थितियों के संघर्ष में संगति तथा सन्तुलन स्थापित हो सकेगा, न उस निराकार चैतन्य या बोध को ही हम नया मूल्य या अर्थ या सारभूत-गुण प्रदान कर सकेंगे, जो गत युग की मानसिक मर्यादाओं एवं सीमाओं का अतिक्रम कर, नये विश्व-सांस्कृतिक संचरण को अपनी चिच्छक्ति से नयी लोक-मान्यता, नवीन वैचारिक वैभव, बुद्धि का प्रकाश तथा नयी प्राणवत्ता एवं नवीन जीवन-गति प्रदान कर सकेगा। मेरा संकेत अवतारवाद या व्यक्तित्ववाद की ओर नहीं, नया युग निर्वैयक्तिक व्यक्तित्व का होगा, अथवा सामूहिक व्यक्तित्वमूलक होगा। नया चैतन्य निरन्तर विकासशील लोक-सामाजिकता एवं विश्व-मानवता में जीवन-मूर्त होगा, वह समग्र बोध का सारभूत सामूहिक संपुंजन होगा, जिसमें व्यक्ति-मुक्ति, लोक-साम्य तथा विश्व-ऐक्य सर्वांगीण रूप में संयोजित होंगे। मध्ययुगीन द्रष्टा तथा सन्त निराकार परात्पर सत्य का बोध स्पर्श पाकर ही सन्तुष्ट हो गए, जब उसके नये मूल्य एवं नयी लोकव्यापी सामाजिक व्यवस्था में मूर्त करना मध्ययुगों की निष्क्रिय परिस्थितियों के कारण सम्भव नहीं था। वे नवीन अनुभूति के गुणों को, जिनमें प्रकार का न होकर मात्रा का ही भेद रहा है, छोटे-मोटे धार्मिक साधना-केन्द्रों तथा सम्प्रदायों में ही संगठित करने में सफल हुए। सामन्ती परिस्थितियाँ चरम विकास के बिन्दु पर पहुँचने के बाद ह्रास और विघटन से प्रेरित मतान्तरों, रूढ़ियों आदि में विभक्त होने लगी थीं। उसमें विशेषीकरण के ही तत्त्व मिल सकते हैं। निराकार साधना या सगुण साधना के लिए वही प्राचीन साधना परम्परा की अनुगूँजें आज तक भारतीय जिज्ञासु मानसों में पायी जाती हैं। कबीर, मीरा, आदि सन्तों, साधकों तथा भक्तों के लिए, मध्ययुगीन जीवन की सीमाओं के कारण यह दृष्टिकोण ठीक था, पर छायावाद के आलोचकों ने उसी दृष्टि से इस युग के नवीन काव्य-संचरण का भी मूल्यांकन करना आरम्भ किया और उसे छायावाद नाम देकर उसमें वही मध्ययुगीन रहस्य-भावना, दार्शनिक तत्त्व आदि देखने का आवश्यकता से अधिक प्रयत्न किया। निराला अपनी निराकार दृष्टि को नयी अभिव्यंजना के सौन्दर्य-बोध से मण्डित कर सके, नया सौन्दर्य-बोध जो नयी विकसित

परिस्थितियों की उपज है, जिसमें कबीर का-सा इंगला-पिंगला-सुषुम्ना या अष्ट कमलों का या 'साजन के घर' का निवृत्तिकामी, आरोहण-मूलक, प्रतीक विधान न होकर, नवीन जीवन-प्रवृत्ति प्रेरित, नये प्रतीकों तथा बिम्बों का सौन्दर्य शिल्प मिलता है— यही उसकी विशेषता है। निरालाजी के-से उद्दाम शक्ति-वेग से मन्थित व्यक्तित्व में इतना धैर्य, सूक्ष्म विश्लेषण-संश्लेषण की श्रमसाध्य प्रवृत्ति तथा व्यापक ऐतिहासिक अनुभूति की दृष्टि न होने के कारण वह युग-विकास के विभिन्न आयामों में तथा इस युग के बौद्धिक, भाविक तथा प्राणिशास्त्रीय अथवा जैव-मूल्यों के विस्तारों, विवरणों विविधताओं तथा निगूढ़ताओं में अपनी अद्वैत दृष्टि से अन्तःसंयोजन भर, अपने कृतित्व में नये मूल्य की सृजन-प्राण-प्रतिष्ठा नहीं कर सके। फिर भी छायावादी कवियों में उनकी जो विशिष्ट देन रही है वह शक्ति-सौन्दर्य तथा ज्योति-स्पर्श की दृष्टि से अत्यन्त श्रेष्ठ है।

निराला की दार्शनिकता

वीणारानी कंठ

आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में यदि कोई सर्वाधिक विवादास्पद कवि रहा है, तो निश्चित रूप से वह निराला ही है। मुक्त छन्दों का ही नहीं, मुक्त भाव-भूमियों का, मुक्त मानव-मूल्यों का यह मसीहा आद्यन्त कटु आलोचनाओं-प्रत्यालोचनाओं की सूली पर चढ़ाया जाता रहा। किसी ने इसको संगीत-पारखी मानकर सूर और मीरा की कोटि में रखा, तो किसी ने दर्शन के गहन-गूढ़ तत्त्वों का मर्मज्ञ जानकर तुलसी की श्रेणी में ला बिठाया, तो किसी ने अति बौद्धिक कहकर इसके काव्य को ही भावनाशून्यता के दोष से ग्रस्त सिद्ध कर दिखाया। सच तो यह है कि आलोचक स्वयं एकांगिता के दोष से बिद्ध रहे और जैसा कि वाजपेयीजी ने कहा—हमारे साहित्यिक महारथी सात अंधे भाइयों की तरह उस तथाकथित हाथी की हास्य-विस्मयभरी रेखाएँ ही बखानते रहे[1] कोई इस विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व के दुःसह द्वारों से घिरे गुप्त ताखे जैसे मन तक नहीं पैठ सका। उसके हृदय की भाँति, व्यक्तित्व की भाँति, उसका काव्य भी अनेकाधिक अर्थों में अव्याख्येय ही रह गया।

वस्तुतः निराला एक ऐसे केन्द्रबिन्दु का नाम है जिसमें भारतीय संस्कृति-वृत्त के नूतन और पुरातन सारे रूप, सारे रंग, सारे स्वर और सारे आकार तिरोभूत होते रहे हैं। वह युग का कवि नहीं है, युग-युग का कवि है। उसने केवल तत्कालीन समस्याओं को ही अभिव्यक्ति नहीं दी, इस मनु-पुरातन संस्कृति की गहन आस्था के सनातन उदात्त स्वर को भी झंकृत किया। 'उनका काव्य जीवन की साधना के विविध चित्रों का अलबम है।'[2] अतः जहाँ एक ओर उनकी कविताओं में तीव्र ऐतिहासिक बोध एवं जातीय अभिमान का स्वर है[3] शक्ति के ऊर्जस्वित हुंकार का ओज एवं शौर्य का अनुलेख है[4] वहीं इसकी एकदम उलटी विरोधी दिशा में इस पौरुष-दीप्त स्वर का

---

१. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे वाजपेयी।
२. भूमिका, 'गीत-गुंज', सुधाकर पांडेय, पृ० ३४।
३. शिवाजी का पत्र, जागो फिर एक बार, यमुना के प्रति आदि।
४. राम की शक्ति-पूजा, बादल राग।

परिवर्तित अवरोह अपार करुणा-प्लावित विषादग्रस्त प्रार्थनाओं के रूप में दीख पड़ता है।[1] जिस कवि ने जूही की कली, प्रेयसी, अप्सरा, शेफालिका जैसी शुद्ध सात्त्विक सौन्दर्य की अवतारणा की, पावस के उमड़ते-झरते घनों को देखकर जिसकी सहज संवेदना ने सैकड़ों कविताओं को सृजा, उसी कवि ने 'कुकुरमुत्ता' की तीखी व्यंग्य-प्रधान कविताएँ भी लिखीं; जिन्हें देखकर बरबस लगता है हृदय की वह अपार करुणा—जिसमें तुलसी की निष्ठा, सूर की ऐकान्तिक विनम्रता, मीरा की रसमयी तन्मयता है—अपने स्रोतोद्गम पर ही जैसे वज्रकठोर आक्रोश-शिला में जकड़कर रह गई है।

प्रश्न उठता है निराला के इन सारे वादी और संवादी स्वरों में सत्य कौन है और असत्य कौन ? निश्चित रूप से निराला के ये सारे रूप, स्वर एक साथ ही सत्य भी हैं और प्रधान भी। वस्तुत: निराला विरोधाभासों के कवि हैं, विरोधों के नहीं। निराला काव्य के सारे रूपों में प्रच्छन्न रूप से एक बुद्धि-प्रधान करुणा की अस्पष्ट रेखा दिखाई देती है। यह करुणा भावावेश का आप्लावन नहीं, क्षणिक ज्वार नहीं, आत्मसाधनापरक विशाल भारतीय भावभूमि में प्रवहमान धीर-शांत, गुरु-गम्भीर स्रोतस्विनी है। वे भारतीय संस्कृति के व्याख्याता हैं। पुरातन काल से चली आती भारतीय साधना-परम्परा को उन्होंने अपनी सहज सकलपात्मिका बुद्धि एवं स्नेहाश्रित उन्नत प्रबुद्ध भावना के समन्वय से विकास की नई दिशा दी है।

'गीतिका' के समर्पण में उन्होंने लिखा था "······जिसकी मैत्री मेरी रुक्षता को देखकर मुस्करा देती थी······जिसने मेरे जड़ हाथों को अपने चेतन हाथ से उठाकर दिव्य श्रृंगार की पूर्ति की······उसी की······।" इस समर्पण का यदि विश्लेषण किया जाए तो संभवत: इस रहस्यमय व्यक्तित्व के 'गोपन, गहन, गुह्य मन' की अवस्था को समझा जा सकता है। रुक्षता के साथ सवेदनशील मुस्कान का मांसल आकर्षण और जड़ता के साथ चेतनता का अद्भुत संगम—सर्वोपरि दिव्य श्रृंगार का अनुष्ठान—निराला काव्य की ये ही दिशाएँ हैं जो ऊपर से असंतुलित, विरोधी जान पड़ती हैं, पर जिनके मूल में एक ही स्वर है 'जीवन की सरस साधना का', 'ज्योतिर्मय जग' की आकांक्षा[2] का। उसने सतत् प्रयास किया है मुक्ति का, चाहे वह आत्मा की मुक्ति हो या छन्दों के बन्धन की मुक्ति।[3] भारतीय दर्शन की आधारभित्ति उपनिषदें

---

१. अर्चना—६, ७, १२, ३५, ४२।
   आराधना—६, २१, २४, २८, ५२।
   गीतगुंज—५, ११, १२, २३।
२. गीतिका—१, १४, १५, १८, २०, ३४।
   परिमल—प्रार्थना, वासन्ती, जागो, ध्वनि, आवाहन, बादल राग।
   अनामिका—ज्येष्ठ, उद्बोधन, नाचे उस पर श्यामा, मुक्ति।
३. भूमिका, परिमल—पृ० १६।

कहती हैं—'परमपिता की असीम अनुकम्पा पर आश्रित रहने में भी स्वाधीनता नहीं, दासता ही दासता है। जंजीर चाहे सोने की हो, उतनी ही खराब है जितनी लोहे की।' वस्तुतः इस असार संसार में कोई बँधा हुआ नहीं, कोई खंडित नहीं, कहीं द्वित्व नहीं। मानव ईश्वर की उपासना करता है—भ्रमवश! क्योंकि 'मैं' और विश्व प्रभु एक-दूसरे में तिरोभूत हैं। चिंतन और रूढ़िगत विश्वासों के मोहपाश से निस्तारण इस 'मैं' की मुक्ति का पथ है। निराला उपनिषद् के इस तत्त्व-दर्शन के मर्मज्ञ हैं। उन्होंने स्वीकार किया है—"कवि जग का मुक्त प्राण है, ऊर्ध्व-ध्यान के सध्वनित गान का आलाप ही कवि कर्म है।"[1] मुक्ति केन्द्रस्थ आकांक्षा है, जिस तक पहुँचने के लिए कवि ने अनेक राहों का अवलंब ग्रहण किया है। इनमें से अनेक राहें ऐसी हैं जिन पर थोड़ी दूर चलकर ही वह पुनः वहीं जा खड़ा हुआ है जहाँ से चला था—और अनेक ऐसी हैं जो उसे इस काम्य केन्द्र के अत्यधिक निकट ला सकने में समर्थ हुई हैं।

निराला का काव्य मूलतः बुद्धिवादी है। बौद्धिक चिंतन क्रमशः भावना के धरातल पर उतरता गया है, और दार्शनिकता अन्ततः आध्यात्मिका भक्ति के दारुण दैन्य में पर्यवसित हो गई है। यद्यपि काव्य का यह विकास प्रतीपरूप ही है, पर निराला-काव्य का सत्य यही है। माया मरीचिका की छलना, मृग तृष्णा का भटकाव और दुःखमय संसार का हाहाकार इन सबकी प्रतिक्रियास्वरूप उपजी करुणा निराला की एकमात्र पूँजी थी, किन्तु नियत-नटी का क्रीड़ा कंदुक बनकर, संसार के असारत्व से परिचित होकर स्वामी रामकृष्ण के प्रभाव से विवेकानन्द के चिन्तन-क्रम की ओर आकृष्ट हो, ब्रह्म के सत्य रूप पर पड़े माया के आवरण को भेदकर, उन्होंने वेदान्त के मूलमंत्र 'अहं ब्रह्मास्मि' 'तत् त्वमसि' को भी ग्रहण किया था। अतः एक साथ ही उनमें करुणा की अंतःसलिला सरस्वती और दर्शन की गंभीर स्रोतस्विनी गंगा के दर्शन होते हैं। उनका यह द्विविध द्वन्द्व अनेक कविताओं में[2] स्पष्ट दृष्टिगत होता है। यह द्वन्द्व ही उनकी काव्य-साधना के इस अस्वाभाविक प्रतीप पर्याय का कारण है। अनेक स्थलों पर वैदान्तिक ज्ञान एवं दैन्य भक्ति का समन्वय कर उन्होंने उन दोनों के

---

१. तुलसीदास—इस जग के मग के मुक्त-प्राण !
गाओ—विहंग !—सद्ध्वनित गान,
त्यागोज्जीवित, वह उर्ध्व ध्यान, धारा-स्तव ! पद सं० १९।

२. परिमल—भीतर नग्न रूप था घोर दमन का,
बाहर अचल धैर्य था उसके उस दुखमय जीवन का
भीतर ज्वाला धधक रही थी सिन्धु अनल की
बाहर थीं दो बूँदें—पर थीं शांत भाव में निश्चल-
विकल जलधि के जर्जर मर्मस्थली की। —'स्वप्न-स्मृति'

पृथक् अस्तित्व को ही भ्रम सिद्ध कर दिया है।[1]

मूलतः निराला की समस्त दार्शनिक मान्यताओं, बौद्धिक चिंतनाओं के पीछे प्रत्यक्षतः अथवा अप्रत्यक्षतः वेदान्त का स्वर ही प्रबल रहा है। अगर यह मान लिया जाए कि कवि का अनुभूत सत्य और भोगा हुआ व्यक्तित्व ही कविता में अभिव्यक्त होता है तो निराला के जीवन में वेदान्त के सिद्धान्तों का प्राधान्य अस्वाभाविक नहीं। प्रारंभिक जीवन के कटु अनुभवों एवं दारुण दुःखों के पश्चात् वे सहज ही विवेकानन्द की ओर आकृष्ट हुए।

निराला उस युग के प्रतिनिधि थे जो धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक नवोत्थान के चौराहे पर आ खड़ा हुआ था। दयानन्द और राममोहन राय के तर्कों ने हिन्दुत्व का ही उत्थान नहीं किया था, उस युग की नवोदित मनीषाओं को भी अपनी ओर झुकने को बाध्य किया था। एक ओर तो निराला में इस जाग्रत जातित्व का, हिन्दुत्व का, तीव्र उन्मेष था और दूसरी ओर भावुक कवि-हृदय की जन्मजात विगलित करुणा थी। पहली भावना को पोषण मिला विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त से और दूसरी को स्वामी रामकृष्ण की भाववादी अद्वैत साधना से बल मिला। यह अद्वैतसाधना सहजानुभूति और आत्मिक आध्यात्म पर आधारित थी। धर्म इनके लिए आनन्द था और समाधि उनकी पूजा। विश्वास और जागृति उसके सोपान थे, उत्थान और मुक्ति चरम प्राप्ति। उनकी कविताओं में जो सतही विरोधाभास प्रतीत होता है उसके मूल में निराला की यह द्वन्द्वात्मक मनःस्थिति ही सर्वोपरि है जिसमें वास्तविक रूप में कहीं कोई द्वन्द्व नहीं।

निराला ने स्वयम् स्वीकार किया है कि उन्हें 'कवि का हृदय और दार्शनिक का मस्तिष्क' मिला है। अतः जहाँ एक ओर उनमें भावना का तीव्रतम आवेश है वहीं दूसरी ओर चिंतनजन्य गहन दार्शनिक ज्ञान भी। पर कवि की विशेषता दोनों के अद्भुत समन्वय में है। कविता 'दर्शन के ठंडे हाथों का स्पर्श पाकर न जड़ बनी है न आँखों से ओझल हुई है।' काव्य ने दर्शन को स्निग्धता प्रदान की है और दर्शन ने काव्य को उदात्त बनाया है। ठीक वैसे ही वेदान्त में निहित दार्शनिक भाव काव्यात्मक सौन्दर्य से जगमगा उठे हैं। कहना न होगा "वेदान्त का दर्शन कविता है और निराला की कविता का दर्शन वेदान्त।"

यह तो स्पष्ट ही है कि निराला के काव्य के उदात्त और स्थूल, व्यावहारिक यथार्थवादी और आध्यात्मिक भावनावादी दोनों ही स्वरूपों का मूलाधार वेदान्तीय दर्शन है जो रामकृष्ण और विवेकानन्द के माध्यम से परिमार्जित, परिवर्द्धित और

---

१. परिमल—भक्ति-योग-कर्म-ज्ञान एक ही हैं
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।
एक ही है, दूसरा नहीं है कुछ—
द्वैतभाव ही है भ्रम ! 'पञ्चवटी-प्रसंग' ४, पृ० २२५।

परिवर्तित रूप में निराला तक पहुँचा है। इस दर्शन की चार स्थितियाँ हैं—(१) वेदान्तिक शुद्ध अद्वैतवादी, (२) विवेकानन्दीय व्यावहारिक अद्वैतवादी, (३) रहस्यवादी और (४) विनयपरक भक्ति। इसे यों भी रखा जा सकता है—
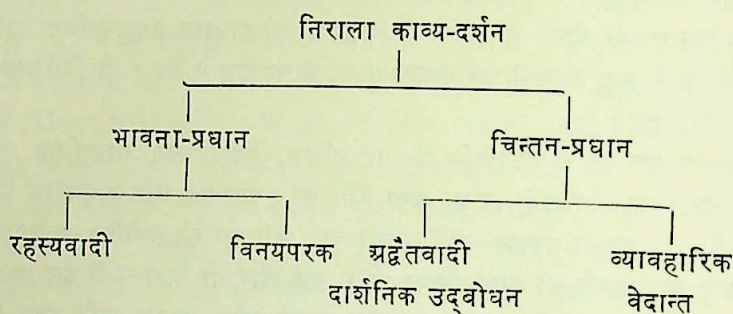
"निराला जान में कवि और अनजान में संत थे"[1]। प्रारम्भ से ही उन्होंने अपनी इस चित्तवृत्ति के कारण धर्म और दर्शन का गहन अध्ययन किया था। वेदान्त के चिन्तन ने ही उन्हें संसार के प्रति तीव्र विराग की दीक्षा दी थी। अतः उनकी कविताओं में, चाहे वे उत्कट शृंगार की हों अथवा तीव्र विषाद[2] की, सर्वत्र एक तटस्थता दृष्टिगत होती है। द्वन्द्व के क्षण आते हैं पर वर्षान्त के बादलों की भाँति ठहरते नहीं उड़ते चले जाते हैं।[3] जय हो अथवा पराजय, सुख हो अथवा दुःख, आशा हो अथवा निराशा[4]—जीवन की हर स्थिति का उत्तरदायी वह अन्तर्भावित ब्रह्म है, वही अन्तिम सत्य है, शेष सब मिथ्या है। स्वयम् पर वह विश्वास खो देता है, बार-बार हार मानता है[5] क्योंकि उस सर्वज्ञ, नित्य शुद्ध सतत् जाग्रत, और दयामय निराकार ब्रह्म का प्रकाश उसकी आत्मा उचित मात्रा में ग्रहण नहीं कर

---

१. उनकी दृष्टि में दर्द और विश्वास की धूपछाँही आभा है। इस दर्द का संबंध उसकी हल्की मनोवृत्ति से नहीं और न उस अहं का सस्ता प्रकाशन माना जा सकता है। महादेवी—महाप्राण निराला।

२. शेष, पतनोन्मुख, वृत्ति, प्रार्थना, अध्यात्म-फल, मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा।

३. रूखी री डाल वसन वासन्ती लेगी,
स्वागत, ध्वनि, रे कुछ न हुआ तो क्या,
मैं रहूँगा न गृह के भीतर।

४. जीवन की विजय सब पराजय
चिर अतीत आशा, सुख, सब भय
सब तुम तुममें सब तन्मय।

५. खेवा (परिमल)।

पाती । किन्तु उस अखंड अविनाशी परमात्मा के पति उसका विश्वास खंडित नहीं होता ।[१]

ब्रह्म अनश्वर है और मायाओं से परे है, स्रष्टा, भोक्ता एवं द्रष्टा है और यह अहं उसीकी अनुकृति है । अतः 'अहं' अगर 'ब्रह्म' की तरह ही अपने को अनश्वर मायातीत मान ले तो आत्मविश्वास के लिए और चाहिए भी क्या—शक्ति और आकार के संघात से जिस नाम-रूपधारी शरीर का निर्माण हुआ है वह अवश्य विघटित होगा पर आत्मा संघात नहीं अतः वह अनश्वर अविघटित है । मृत्यु तथा जीवन उसकी छायाएँ मात्र हैं । वेदान्त कहता है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्ष परिषस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य न रून्नन्योअभिचाकशीति
समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः
गुष्ट यदा पश्यत्यन्यमीशस्य महिमानमिति वीतशोकः

—मुण्डकोपनिषद् ३।१।१-२।

ईश्वर मत कहो, त्वं, तू, मत कहो, अहं, मैं कहो यही अद्वैत है, यही बन्धन-मुक्ति है । निराला बन्धनमुक्त हैं । आत्मदर्शन ने उन्हें निस्पृह, तटस्थ, आत्म-श्लाघायुक्त बना दिया है । हर्ष-विषाद में वे सम रह सकते हैं—

जो जो आए थे चले गए, मेरे प्रिय सब भले गए
सब बुरे गए ।

निराला का यह आत्मविश्वास क्षुद्र 'मैं' नहीं यह सबके प्रति विश्वास का प्रतीक है क्योंकि 'मैं' में ही 'तुम' और 'वह' समाविष्ट हैं ।[२] यह मैं अशेष ऊर्जा, शक्ति और आनन्द का पर्याय है, साथ ही यह अविनाशी, सर्वज्ञ और ज्योतिर्मय है । कवि जब 'मैं' की भूमि पर कल्याणमय ऊर्ध्वगामी ऊर्ज्वसित जीवन की कल्पना करता है तो परोक्ष रूप से उसमें सारी सृष्टि की कल्याण कामना समाहित होती है । जगत् और जीवन अनेक नहीं एक है, बहुत्व तो स्वप्नवत् उद्भासित है, एकत्व की ही नानाविध अभिव्यक्ति है । इस समष्टि को उपनिषदों ने यों कहा है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखं ।

'प्रबन्ध-प्रतिमा' में उन्होंने अपने इस 'मैं' का स्पष्ट एवं विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है ।

---

१. जीवन, प्रात के लघु-पात से
उत्थान—पतनाघात से
रह जाय चुप, निर्द्वन्द्व ।

२. 'निरालाजी की 'मैं' शैली क्षुद्र अहम् की शैली नहीं है । वह आत्मा-नुभूति में सर्वात्मानुभूति है, सबजेक्टिव में आबजेक्टिव है ।'
—शांतिप्रिय द्विवेदी, निराला अंक, पृ० ५८, जनभारती

मतवाला के संपादन-काल में ही निराला रामकृष्ण मिशन के संपर्क में आए थे, और वहीं विवेकानन्द के व्यावहारिक वेदान्त से उनका परिचय हुआ था। 'विवेकानन्द नवयुग के विश्वव्यापी विघटनशील वातावरण में उस आधारशिला की भाँति थे जिस पर धर्म दृढ़ रह सके, उस प्रामाणिक वाणी की तरह थे जिसमें मनुष्य अपने को पहचान सकें'।[१] वेदान्त ने सांसारिक असारता एवं नश्वरता का ज्ञान दिया था, आत्मा को 'अग्नि उर्दचिवत्' परमात्मा से अभिन्न माना था, किन्तु साथ ही अज्ञान एवं माया की स्थिति भी स्वीकार की थी, जिसके परिणामस्वरूप आत्मा अंधकार में भटकती है। अपनी मुक्ति एवं स्वाधीनता का विवेक खो देती है। विवेकानन्द ने इस व्याख्या को 'कर्म'[२] से संलग्न कर व्यावहारिक भूमि पर प्रतिष्ठित किया। उस साधना का मार्गोद्घाटन किया जिसमें विवेक का स्थान सर्वोपरि था। विमोक (इच्छाओं से मुक्ति), अभ्यास (परमात्मा की ओर मन की सतत् गति), क्रिया (दूसरों का उपकार), कल्याण (सत्य आर्जव अहिंसा) और अनवसाद (आंतरिक तेज, उल्लास) के विभिन्न सोपान थे। वे मूड़ मुड़ाकर संन्यासी बन जाने के कायल नहीं थे। 'परमात्मा की भक्ति करो, वह भक्ति जो तुम्हारी शक्ति का हनन न करे, प्रकृति के विरुद्ध न जाय वरन आत्मा को अधिक उच्च एवं शक्तिशाली बनाए।'[३] उनके धर्म ने उस आदर्श की प्रतिष्ठा की जिसके प्रकाश में नैराश्य और अवसान के गहन अंधकार में गोते खाती युग-चेतना आत्मविश्वासपूर्ण कर्म-विन्यस्त उदात्त जीवन की भूमि पर प्रतिष्ठित हो सकी। निराला के काव्य में जो आस्था एवं विश्वास का स्वर सर्वत्र दीख पड़ता है उसके पीछे विवेकानन्द का वही व्यावहारिक वेदान्त है जिसमें उन्होंने कहा था, 'अपने ऊपर विश्वास न करना सबसे बड़ी नास्तिकता है।'[४] निराला को हम शक्ति एवं पौरुष का कवि मानते हैं, 'ऊर्ध्वगामी विकास' का कवि जानते हैं, क्योंकि निराला ने विवेकानन्द के इस विश्वास को वाणी दी थी। उनकी कविताओं में इसी विश्वास के कारण मानव के प्रति अटूट आस्था, सहृदयता और संवेदनशील तन्मयता है। अपने परवर्ती काव्य में उन्होंने युग की दलित-संत्रस्त मानवता से करुणार्द्र होकर कटु व्यंग्य का संधान किया था, किन्तु यदि इस भाव का भी विश्लेषण किया जाय तो निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उसमें भी व्यावहारिक वेदान्त ही पर्यवसित है। जिस आत्मा की सर्वज्ञता, अनश्वरता, बंधन-मुक्तता में कवि की आस्था थी इसकी ऐसी दशा देखकर कवि उद्बोधन करना चाहता है किन्तु सीधे से नहीं उल्टा जाप करके।[५]

---

१. विवेकानन्द साहित्य—जन्मशती संस्करण—भगिनी निवेदिता।
२. ,, ,, पृ० ५।
३. उपरिवत्।
४. वि० सा०—पृ० ४।
५. 'भयों सिद्ध करि उलटा जापू' अगर किसी पर खप सकता है तो हिन्दी के इतिहास में एकमात्र मुझ पर।'
मेरे गीत और कला—प्रबन्ध प्रतिमा, निराला।

विवेक के द्वारा ही उन्होंने प्रत्यक्ष जीवन के साथ आदर्शों का समन्वय करना चाहा था, वर्तमान जीवन की अनन्त के साथ एकरूपता स्थापित करनी चाही थी । विवेकानन्द ने कहा था—"प्रत्येक मनुष्य कूदकर सर्वोच्च आदर्श पा लेना चाहता है···कूदने का अंत गिरने में होता है । हम यहाँ बँधे हुए हैं और धीरे-धीरे ही अपनी जंजीरों को हमें तोड़ना है ।" यह ज्ञान ही विवेक है, निराला ने दूरागत कुहेलिका-ग्रस्त भविष्य की कल्पना इसी विवेक के द्वारा स्पष्ट अनावृत रूप में की थी । इसी विवेक के कारण उन्होंने जीवन को कर्मठता का पाठ पढ़ाया था, बौद्धिकता के साथ पौरुष एवं शक्ति का समन्वय किया था ।[१] परिमल के प्रारंभिक प्रार्थना-गीतों में कवि ने इस विवेक की विधायिका शक्ति का आवाहन किया है ।[२]

'तुम' के साथ 'मैं' के एकीकरण के मार्ग में बहुत सारी बाधाएँ और विपत्तियाँ आती हैं, कुहेलिकाएँ आशा के आकाश पर छाकर दृष्टिपथ[३] को ओझल कर देती हैं पर विवेक द्वारा कवि बार-बार शक्ति प्राप्त कर आगे को बढ़ता है ।[४] यही विवेक उसे वेदान्तिक साम्यवाद की भूमि पर प्रतिष्ठित करता है[५] और यही विवेक उसकी कविताओं में क्रान्ति के शंखनाद के रूप में उभरकर आया है ।[६]

स्वामी विवेकानन्द का उत्कट कर्मयोग रामकृष्ण के शक्ति-आवाहन के रूप में निराला में अभियुक्त हुआ है । सांसारिक द्वैतभाव के विनाश के लिए उन्होंने 'माँ' रूप में उस अलौकिक, सच्चिदानन्द ब्रह्म को ही नानारूपिणी बनाकर प्रतिष्ठित किया । शायद इसके पीछे रामकृष्ण के प्रभाव से अधिक मातृ-स्नेह वंचित किशोर की अचेतन लालसा ही अधिक हो । यह माँ उनकी भक्ति है, शक्ति है, यह माँ ही उनकी राधा है, आराधना है, और यही माँ भारती है, प्रकृति है ।[७]

निराला के काव्य में अद्वैत दर्शन ने एक अद्भुत अलौकिकता, रहस्यात्मकता एवं आध्यात्मिकता का स्वर भर दिया है । जिस ब्रह्म ने उसे कर्मवाद का संदेश देकर

---

१. मिला ज्ञान से जो धन,
नहीं हुआ निश्चेतन,
बाँधो उससे जीवन
साधो पग-पग यह प्रतीक—गीतिका ।
२. जग को ज्योतिर्मय कर दो (प्रार्थना), प्रथम प्रभात, बसन्त समीर ।
३. कहीं भी नहीं सत्य का रूप
अखिल जग एक अन्धतम कूप । —गीतिका ।
४. जागो, झरना (परिमल) ।
५. कण ।
६. एक बार बस और नाच तू श्यामा ।
७. पंचवटी, आग्रह, एक ही आशा में सब प्राण, प्रात तव द्वार पर, कल्पना कानन की रानी ।

जीवन की कटु विभीषिकाओं से जूझने का बल दिया है उस परोक्ष ब्रह्म के प्रति अनेक स्थलों पर कवि के हृदय की अपार जिज्ञासा के साथ एकनिष्ठ अनुराग की भी व्यंजना हुई है।

निराला में बौद्धिकता और रागात्मिकता के बीज समभावेन उपस्थित हैं। वेदान्त ने इन दोनों को ही पल्लवित किया है। बौद्धिकता ने विवेकानन्द से प्रभावित होकर व्यावहारिक वेदान्त के कर्मवादी सिद्धांतों को जीवन में उतारा और रागात्मिका वृत्ति ने अद्वैतवादी रहस्यवाद के स्तर से चलती हुई अनुराग और करुणा की विस्तृत जलधारा में अपनी परिणति ढूँढ़ ली। विवेकानन्द ने स्वीकार किया था प्रेम संघात्मिका शक्ति है और घृणा विघटनकारी अनेकत्व विधायिका शक्ति[1], अतः संसार के बहुत्व के मध्य यदि एकत्व की स्थापना प्रेम है तो प्रेमी ही स्वीकार्य है, सर्वोपरि है। वस्तु की सूक्ष्म (नाम), घनीभूत (विचार) और अत्यन्त घनीभूत (रूप) इन तीन अवस्थाओं में ऊपर से जिस 'त्रित्व' का बोध होता है, वस्तुतः वह 'एकत्व' है। परमात्मा की सूक्ष्म एवं आत्मा की अत्यंत घनीभूत अवस्था के बीच प्रेम शृंखला का कार्य करता है। निराला के प्रेम-काव्य में प्रेम वस्तुतः अद्वैतवाद की एक अत्यन्त स्वाभाविक परिणति है। यही प्रेम परोक्ष के प्रति अपार जिज्ञासाओं का संधान करता है, यही प्रेम अपनी भाव-विह्वल व्याकुलता में दर्शन की भूमि पर रहस्यवाद का नियामक है और यही प्रेम निराला काव्य के साम्यवाद का पोषक है। इसी अर्थ में निराला के काव्य का मेरुदंड रहस्यवाद है।[2] किन्तु निराला के रहस्यवाद में न तो मध्ययुगीन संतों की कुहेलिका है न रवीन्द्र की पिच्छल भावुकता, यहाँ न प्रसाद की उत्कट बौद्धिकता है न महादेवी का द्वैतवादी दुःखदर्शन ! इस रहस्यवाद में निर्गुण संतों की साधना और सगुणभक्तों के प्रेम का समन्वय है। वे कहीं भी अपने प्रणयनिवेदन में स्त्रैणता की हद तक नहीं पहुँचे हैं। उनमें रसता है, रसात्मकता है, पर पौरुष की अनुगूँज भी है। उसके विरह में भी मिलन का अलक्ष्य भाव है, क्योंकि इस रहस्यवाद का आधार द्वैत नहीं अद्वैत है, अज्ञान नहीं वेदान्ती ज्ञानवाद है।

निराला के काव्य-दर्शन का चौथा आयाम है—विह्वल विनयपरक भक्ति का। भक्ति का यह स्वर मध्ययुगीन संतों के अत्यधिक निकट है।[3] क्रान्ति के गायक उद्धत पौरुष के प्रतीक निराला का यह अंतिम पर्यवसान बड़ा ही विलक्षण है। विवेकानन्द

१. विवेकानन्द साहित्य—जन्मशती-संस्करण।

२. भर देते हों, विफल वासना,
हुआ प्रात जाओगे तुम चले विस्मृत विभोर,
स्वप्न स्मृति, मैं न रहूँगी जब सूना होगा जग, तुम्हीं गाती हो अपना गान।

३. अर्चना—७, १६, २१, ३२।
आराधना—६, १६, १८, २१, २४, २८।
गीतगुंज—१२, ६२।

ने जिस कर्मवाद की प्रतिष्ठा की थी उसका अंतिम सोपान था 'अनवसाद', किन्तु निराला के काव्य-दर्शन के अंतिम आयाम में है अवसादपूर्ण मन:स्थिति से उठी हुई करुणा, दया की साधना का स्वर। कवि ने आराधना में स्वयम् जैसे स्वीकार कर लिया है—

अपना जपना रहा,
सत्य कल्पना रहा,
यौवन सपना रहा,
ज्ञान वही धो गया।

आराधना—६५

और वह जैसे पश्चात्ताप करता है—

ज्ञान की खोज में ओज कुल खो दिया
सत्य की नित्य आराधना, अवमनन।

आराधना—७१

किन्तु सच तो यह है कि जीवन के आरंभ में कवि ने जिस दर्शन को केवल बुद्धि के सहारे वरण किया था, उसी दर्शन को जीवन की अंतिम वेला में श्रद्धा-समन्वित करके अपनी भूल का संशोधन कर लिया। वेदान्त का मूलाधार था विश्वास, किन्तु श्रद्धा के अभाव में विश्वास मात्र एक छलना है। अर्चना, आराधना और गीत-गुंज के गीतों में करुणा और भक्ति का जो स्वर है वह इस श्रद्धा-समन्वित विश्वास की ही अभिव्यक्ति है।[1] अद्वैत-दर्शन का उत्कट बुद्धिवाद इस श्रद्धा-विश्वास और भक्ति की त्रिवेणी का अवगाहन कर सहज-सुलभ और सर्वसम्मत हो गया है। संसार की वह वासना, जिसे ज्ञान के हाथ निर्मल नहीं बना पाए थे, मुक्ति का वह इष्ट जो श्रद्धा के पाथेय के बिना सर्वदा आकाशकुसुम बना रहा था, अद्वैतवादी साम्य की वह आकांक्षा जो विश्वास के अभाव में अधूरी रह गई थी—इस नए भक्त्यात्मक स्वर से घुल-मिलकर सहज-संवेद्य, सहज-ग्रह्य, सहज-प्राप्य बन गई।[2] इस स्वर ने ही कवि को वह आस्था दी जिसके सहारे वह संसार को उदात्त भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित कर सकता था।

---

१. तुमसे लाग लगी जो मन की
जग की हुई वासना बासी—आराधना—५।

२. आराधना—१०, ४, ४६, ५२।
अर्चना—१६, २३, ३२।
गीतगुंज—६, १०, १७।

तो यह है निराला-काव्य-दर्शन के चार श्रायामों का विश्लेषण जिसकी मूल-वर्तिनी धारा है वेदान्त श्रौर उसका परिष्कृत कर्मयोग । किन्तु इस विश्लेषण के बाद इतना ही कहा जा सकता है कि किसी भी कवि के काव्य का दर्शन मात्र दार्शनिक तत्त्वों की ज्ञानवाची श्रभिव्यक्ति नहीं होती, वरन् उसकी श्रनुभूति का श्रंश होता है । दर्शन का कोरा ज्ञान चिंतन की भूमि पर भावनाश्रों का श्रंगी बनकर श्रभिव्यक्त होता है । निराला में बौद्धिकता सर्वोपरि है किन्तु भावना श्रौर कल्पना से निस्संग बौद्धिक दार्शनिकता उनके काव्य में विरल ही है । वे कवि दार्शनिक नहीं दार्शनिक कवि हैं ।

निराला की राष्ट्रीयता

नरेन्द्र भानावत

निराला की राष्ट्रीयता पर चर्चा करने के पूर्व 'राष्ट्रीयता' के स्वरूप पर दृष्टि डालनी होगी। राजनीतिक विचारकों ने 'राष्ट्रीयता' शब्द का जितना भ्रामक प्रयोग किया है कदाचित् उतना और किसी शब्द का नहीं। कुछ लोगों ने उसे केवल राज्यत्व (statehood) का पर्याय मानकर राजनीतिक संगठन की इकाई माना है और उसकी सांस्कृतिक विरासत तथा आध्यात्मिक एकता का बहिष्कार किया है। सच तो यह है कि राष्ट्रीयता से प्रकट होने वाली एकता मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक है जबकि राज्य की एकता राजनीतिक है। प्रो० जिर्मन के शब्दों में, "राष्ट्रीयता धर्म की भाँति आध्यात्मिक है, राज्यत्व भौतिक है; राष्ट्रीयता मनोवैज्ञानिक है, राज्यत्व राजनीतिक है; राष्ट्रीयता मन की स्थिति है, राज्यत्व कानून की स्थिति है।" कहना न होगा कि निराला ने राष्ट्रीयता की अखण्ड आत्मा को जीवन का उमड़ता हुआ विद्रोह और भाव का मुक्त सूक्ष्म आकाश दिया है।

निराला की राष्ट्रीयता राजनैतिक नेताओं की तरह नारेबाज़ी, दौड़-धूप, तोड़-फोड़ और पद-प्रभुता में व्यक्त नहीं हुई है। वह संस्कृति के जागरूक कवि, अध्यात्म के उद्गायक और क्रांति में उद्गाता के शत-शत स्वरों में अपना रूप निखारती रही है। निराला का कृतित्व ही राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत नहीं है, वरन् उसका व्यक्तित्व भी राष्ट्रीयता के ताने-बाने से गुँथा हुआ है। मुझे तो लगता है कि उनका व्यक्तित्व राष्ट्रीयता का जितना प्रभाव और प्रतिनिधित्व प्रकट करता है उतना शायद ही किसी वर्तमान कवि का। बैसवाड़े के जीवन की मस्ती और पिता द्वारा पीठ पर पड़ने वाली प्राणघातक चोटों ने उनके जीवन में वह प्यार और प्रतिकार भरा जिससे वे 'मोगल दल बल के जलद मान' से लड़ सके। दार्शनिक मस्तिष्क, भक्त का-सा हृदय, कलाकार जैसे हाथ और पहलवान जैसा वक्षस्थल—यही तो राष्ट्रीयता है। इसी को व्यक्त करने के लिए 'अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ' हैं, 'स्फीत शिराएँ' हैं जिनमें 'स्वस्थ रक्त संचार' करता है और ऊर्जस्वित होता है 'अपार वीर्य'।

स्वामी विवेकानन्द से आध्यात्मिकता, रामकृष्ण मिशन से अद्वैतवादी भावना तथा गांधी और तिलक से विद्रोह की खाद पाकर निराला की राष्ट्रीयता अंकुरित

और पल्लवित हुई थी । तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक जीवन की विषमता, अतीत के उज्ज्वल वैभव की गरिमा और भविष्य की मनोहारिणी कल्पना ने उनकी राष्ट्रीय चेतना को गतिशील बनाया था । भारतेन्दु-युग में राष्ट्रीयता हिंदुत्व की सीमा से सर्वथा मुक्त नहीं थी और न राज-प्रशस्तियों से ही उसका सम्बन्ध छूटा था । द्विवेदी-युगीन राष्ट्रीयता ने जाति, समाज और देश की सीमा के बाहर अपना मुँह नहीं निकाला था; पर निराला ने राष्ट्रीयता को मानवता के व्यापक धरातल पर ला उतारा; वह केवल मात्र हिंदुत्व की परिधि में ही सीमित नहीं रही । भारतीयता का सर्वांग-सम्पूर्ण रूप हिंदू और मुसलमान, दोनों को गले लगाकर विहँस उठा । राज-प्रशस्ति-सी चाटुकारिता को भस्मीभूत कर निराला ने इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई मज़दूरिन का स्वागत किया । भिक्षुक के प्रति सहानुभूति प्रकट की और हृदय की आँख उठाकर उस भिक्षुक को सर्वप्रथम देखा—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता ।

जाति, समाज और देश से आगे बढ़कर निराला की राष्ट्रीयता ने अन्तर्राष्ट्रीयता के साथ कदम मिलाया है । सांस्कृतिक दृष्टि से विश्व की एकात्मकता पर ज़ोर दिया है । और जड़ता तथा चेतनता में हो रहे द्वन्द्व में भारती (आध्यात्मिकता) की विजय-घोषणा की है—

होगा फिर से दुर्धर्ष समर,
जड़ से चेतन का निशिवासर;
कवि का प्रति छवि से जीवनहर, जीवन भर;
भारती इधर, है उधर सकल;
जड़ जीवन के संचित कौशल;
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल माया कर ।

संक्षेप में निराला की राष्ट्रीयता के निम्नलिखित रूप हैं—

(१) देश की तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर मानसिक क्षोभ ।
(२) नारी की महानता और पवित्रता का चित्रण ।
(३) अतीत के सांस्कृतिक वैभव का गौरव-गान ।
(४) भविष्य के सुखी, स्वाधीन समाज का मधुर चित्र ।
(५) राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति अगाध निष्ठा ।

(१) तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर कवि का क्षोभ—

निराला ने देश की सामाजिक विभीषिका और आर्थिक शोषण की मनोवृत्ति का कठोर व्यंग्यात्मक शैली में तिलमिला देने वाला हृदयद्रावक चित्र खींचा है। पद्य की अपेक्षा गद्य में उनका व्यंग्य अधिक खिल उठा है। 'कुल्लीभाट' में बंगाल की मध्यवर्गीय संस्कृति तथा साहित्य और संगीत की रहस्यात्मक कुलीनता के संदर्भ में उन अछूत बच्चों को रखकर पूरे युग पर व्यंग्य कराया है—जो मारे डर के फूलों को निराला के हाथ में इसलिए नहीं दे रहे थे कि छू जाने पर निराला को नहाना पड़ेगा। इससे अधिक हीन भावना और क्या हो सकती है? 'बिल्लेसुर बकरिहा' ग्रामीण जीवन की स्वार्थपरता, ईर्ष्या और पैसे की पूजा का सुन्दर चित्र है और साथ ही है भारतीय किसान की अपराजेय शक्ति एवं दृढ़ता की व्यंग्यभरी कहानी। 'चतुरी चमार' में शूद्रत्व के प्रति उठती हुई विद्रोह की वह चिनगारी है जो अन्त में ज़मींदारी की कुलीनता को भस्मीभूत करके रहती है।

गिरी हुई अवस्था का सबसे सांगोपांग चित्र 'तुलसीदास' में मिलता है। प्रारंभ के छंदों में कवि ने मुगल संस्कृति के आलोक में मलीन पड़ती हुई आर्य संस्कृति का दिग्दर्शन कराया है। एक ओर भारतीय आकाश का 'प्रभापूर्ण शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य' अस्त हो रहा है और दूसरी ओर मुस्लिम संस्कृति का चन्द्र पृथ्वी के अधरों का चुम्बन कर रहा है—

झरते हैं शशिधर से क्षण-क्षण
पृथ्वी के अधरों पर निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन, संजीवन।

सांस्कृतिक विकास के नाम पर कपट, धोखा और छलना का साम्राज्य है—

छल छल छल कहता यद्यपि जल
वह मंत्र मुग्ध सुनता 'कल कल'।

वर्ण-व्यवस्था टूट गई है—'पूजा में प्रतिरोध-अनल है जलता'। क्षत्रिय 'रक्षा से रहित सर्व', द्विज 'चाटुकार' और शूद्र—

शेष-श्वास, पशु मूक - भाष,
पाते प्रहार अब हताश्वास;
सोचते कभी, आजन्मग्रास द्विजगण के।

कवि इस सांस्कृतिक पतन को देखकर आन्दोलित हो उठता है और निश्चय करता है—

करना होगा यह तिमिर पार—
देखना सत्य का मिहिर द्वार—
बहना जीवन के प्रखर-ज्वार में निश्चय।

'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नए पत्ते' के व्यंग्य भी हृदय को तिलमिला देने

वाले हैं । यहाँ 'कुकुरमुत्ता' का एक व्यंग्य देखिये जो गुलाब पर कसा गया है—

रोज़ पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी

गुलाब 'केपिटलिस्ट' व्यक्तित्व का प्रतीक है ।

(२) नारी की महानता और पवित्रता—

नारी को संतों और भक्तों ने वासना की पुतली और मायाविनी के रूप में देखा था । रीतिकाल में नायिका केवल काम-क्रीड़ा का कन्दुक बनकर रह गई थी । छायावादी कवियों ने नारी के मन की सूक्ष्म गहराइयों की थाह ली । निराला ने नारी के 'शक्ति' रूप की उपासना की । वह उनकी दृष्टि में अबला न रहकर सबला होकर समादृत हुई । नारी की दीनता, निराशा और असहायता का चित्रण करते हुए भी निराला ने उसे प्रेरणा और शक्ति-स्रोत के रूप में देखा । वह वासना का विष होकर साधना का अमृत है । 'विधवा' उसे 'इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी' पवित्र और 'दीप-शिखा-सी' शान्त लगती है । 'तुलसीदास' में रत्नावली का जो चित्र उतारा गया है वह नारी के अबलापन को, उसके वासनात्मक व्यक्ति को जला देने वाला है । तुलसी का विलासी मन उसे 'सत्य-यष्टि' के रूप में स्वीकार कर उर्द्धगामी होता है । वह 'प्रेम के फाग में आगत्याग की तरुणा' बनकर तुलसी के 'जड़-युगल किनारों' के बीच स्वर्गंगा बनकर प्रवाहित हो उठती है—

नश्वरता पर आलोक-सुघर दृक्-करुणा ।

रत्नावली 'नील वसना शारदा' और 'अनल प्रतिमा' के रूप में तुलसी को धिक्कारती है—

धिक ! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़, चाम ।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए ।

लगता है जैसे कवि ने सम्पूर्ण रीतिकालीन परम्परा को धिक्कारा है । नारी की यही भर्त्सना पाकर तुलसी का मन जागता है और बिखरे हुए तत्त्वों को बाँधकर राष्ट्रीयता का उद्घोष करता है । मुस्लिम संस्कृति का चन्द्र अस्त होता है और 'जागो जागो आया प्रभात' । रत्नावली ही सरस्वती और लक्ष्मी के रूप में—

संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जल,
प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा ।

'पंचवटी-प्रसंग' में लक्ष्मण ने सीता की मातृत्व शक्ति को आत्मार्पण किया है। यहाँ लक्ष्मण उत्कट देश-प्रेमी के रूप में और सीता भारतमाता के रूप में ही चित्रित हुई है। पराधीन भारत माता को ऐसे ही प्राणोत्सर्गमय बलिदानी भाव उसके लाड़ले बेटों ने समर्पित किये थे—

> **यदि प्रभो मुझ पर सन्तुष्ट हो**
> **तो यही वर मैं माँगता हूँ।**
> **माता की तृप्ति पर**
> **बलि हो शरीर-मन**
> **मेरा सर्वस्व-सार;**
> **तुच्छ वासनाओं का**
> **विसर्जन मैं कर सकूँ;**
> **कामना रहे तो एक**
> **भक्ति की बनी रहे।**

क्योंकि उसकी यह माता 'आदि-शक्ति रूपिणी' है जो 'सारे ब्रह्माण्ड के मूल में विराजती' है।

'जुही की कली' के रूप में निराला ने नारी के प्रेमिल हृदय को पहचाना है। वह 'प्यारे' को शय्या के पास देखकर

> **नम्र मुखी हँसी—खिली,**
> **खेल रंग, प्यारे संग।**

(३) अतीत का सांस्कृतिक वैभव—

निराला ने जहाँ वर्तमान की विभीषिका और दुर्दशा का चित्रण किया है वहाँ अतीत के उज्ज्वल वैभव की जानकारी भी दी है। कवि को अपनी संस्कृति की आध्यात्मवादी भावना पर गर्व है। संस्कृति का यह प्रेम रहस्यवाद, प्रकृति-प्रेम और राष्ट्रीय महान् आत्माओं के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में व्यक्त हुआ है।

स्वामी शारदानन्दजी महाराज, स्वामी प्रेमानन्दजी आदि को कवि ने भारतीय संस्कृति के अग्रदूत के रूप में स्वीकार किया है। रामकृष्ण मिशन के सम्पर्क से मिली हुई अद्वैतभावना कवि को विश्व-संस्कृति का चितेरा बना सकी। जीव और ब्रह्म के अमिट सम्बन्ध की कैसी कामना निम्नलिखित पंक्तियों में ललकती है—

> **तुम दिनकर के खर किरण-जाल,**
> **मैं सरसिज की मुस्कान,**
> **तुम वर्षों के बीते वियोग,**
> **मैं हूँ पिछली पहचान।**
> **तुम भोग और मैं सिद्धि,**
> **तुम हो रागानुग निश्छल तप,**
> **मैं शुचिता सरल समृद्धि।**

कवि आध्यात्मवाद से प्रभावित होकर भी सांसारिकता से विमुख नहीं है। वह निष्क्रिय जीवन का विरोधी है। उसके लिए साधना ही जीवन है। तभी तो लक्ष्मण का आदर्श है—

(१) बहता हूँ माता के चरणामृत-सागर में
मुक्ति नहीं जानता मैं, भक्ति रहे, काफी है।
(२) आनन्द बन जाना हेय है,
श्रेयस्कर आनन्द पाना है।

कवि प्रकृति की ओर भी अधिक आकृष्ट हुआ। उसने बंगाल में बरसते हुए बादलों की बौछारें अपनी पीठ पर सहीं, तभी तो विभिन्न स्वरों में 'बादल-राग' सजग हो उठा। वसन्त के प्रति उसका अटूट विश्वास बना रहा, 'अभी न होगा मेरा अन्त'। 'संध्या-सुन्दरी' के रूप में उसने अपनी मानवीय भावनाओं का परिष्कार किया और 'यमुना के प्रति' तथा 'दिल्ली और खण्डहर' में पुरातन वैभव के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उसे नवीन जीवन दिया।

निराला ने 'महाराज शिवाजी का पत्र' और गुरु गोविंदसिंह पर 'जागो फिर एक बार' नाम की कविताओं में उस राष्ट्रीय जागरण का मंत्र फूँका जो स्वतन्त्रता से पूर्व अपने पूरे उभार पर था। औरंगज़ेब की राष्ट्र-विघायिनी नीति के जाल में जयसिंह के फँसने पर शिवाजी उसे ललकारते हुए अफसोस प्रकट करते हैं—

हाय री दासता !
पेट के लिए ही
लड़ते हैं भाई भाई—
कोई तुम ऐसा भी कीर्तिकामी !
वीरवर ! समर में
धर्म-घातकों से ही खेलती है रण क्रीड़ा
मेरी तलवार, निकल म्यान से !

और उद्‌बोधन देते हैं—

शत्रुओं के खून से
धो सके यदि एक भी तुम माँ का दाग,
कितना अनुराग देशवासियों का पाओगे !
निर्जर हो जाओगे—
अमर कहलाओगे !

गोविन्दसिंह के शब्दों को उद्‌धृत कर 'जागो फिर एक बार' में कवि ने भारतीय संस्कृति की उत्सर्ग-भावना का चित्र खींचा है—

समर में अमर कर प्राण,
गान गाए महासिंधु से
सिन्धु-नद-तीर वासी !

सैन्धव तुरंगों पर
चतुरंग चमू संग;
सवा सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोविन्दसिंह निज
नाम जब कहाऊँगा ।

और आत्मा की अमरता का उद्‌घोष करते हुए दैन्य, निराशा और कामपरता का परिहार किया है—

तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज भर भी है नहीं पूरा यह विश्व भार—
जागो फिर एक बार !

'राम की शक्ति-पूजा' निराला की अन्यतम प्रौढ़ कृति है। इसमें कवि ने राम के व्याज से अपने युग की अनुभूति, निराशा, पराजय, संघर्ष और विजय-कामना का चित्र खींचा है। यहाँ राम का मानवीय रूप हमें अधिक आकर्षित करता है। वे साधक हैं। उनमें शक्ति और पुरुषार्थ हैं। रावण को परास्त करने की सिद्धि प्राप्त करने के लिए वे शक्ति की पूजा करते हैं; पर देवी द्वारा परीक्षा लेने पर पूजा का कमल न पाकर वे चंचल हो उठते हैं—

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध !

पर शीघ्र ही उनके मस्तिष्क में विचार आता है—

कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन ।
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात एक नयन ।।

और तभी शक्ति (देवी) आकर उनका हाथ पकड़ लेती है और वह राम के बदन में प्रवेश करती हुई कह उठती है—

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन ।

(४) सुखी स्वाधीन समाज का चित्र—

कवि अतीत के वैभवपूर्ण चित्र खींचने में या वर्तमान की अधोदशा पर आँसू बहाने में ही नहीं लगा रहा, वरन् भविष्य के प्रति आस्थावान् भी रहा है। उसे विश्वास है कि यह दयनीय अवस्था अधिक दिनों तक न रहेगी। और सचमुच आज हम 'बाधाविहीन-बंध छन्द ज्यों' विदेशी सत्ता से सदा के लिए मुक्त हो गये हैं। 'शत-

शत कल्मष के छल' छलकाकर जो रागिनियाँ बहती थीं वे सब सो गई हैं। पर कुछ भी हो, निराला अन्त तक संघर्षों में ही पलते रहे। उनको प्रत्यक्ष जीवन में भौतिक सुखों का आनन्द नहीं मिल सका। भले ही वे कहते रहे—

जागा दिशा-ज्ञान;
उगा रवि पूर्व का गगन में, नव-मान।
हारे हुए सकल दैन्य दलमल चले,—
जीते हुए लगे जीते हुए गले,
बन्द वह विश्व में गूँजा विजय-गान।

(५) हिन्दी के प्रति अगाध निष्ठा—

राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा की एकता का होना अनिवार्य नहीं तो आवश्यक शर्त है। निराला नागरी के उद्धार और हिन्दी के सम्मान के लिए जीवन-भर लड़ते रहे। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के इन्दौर अधिवेशन में जब गांधीजी ने यह कह दिया कि मुझे हिन्दी में कोई रवीन्द्रनाथ नज़र नहीं आता, तो निराला तिलमिला उठे। उन्हें इस कथन में हिन्दी का अपमान नज़र आया और उन्हें लगा, जैसे उनके स्वाभिमान को कोई कुरेद रहा है। वे शीघ्र गांधीजी के पास पहुँचे और कहने लगे, "आपने मेरा 'तुलसीदास' पढ़ा है?" गांधीजी ने गोस्वामी तुलसीदास का 'मानस' पढ़ा था, निराला का 'तुलसीदास' नहीं। इस पर निराला बोले—"अगर आपने मेरा 'तुलसीदास' पढ़ लिया होता तो शायद यह कहने की हिम्मत न करते कि हिन्दी में कोई रवीन्द्रनाथ नहीं है।" पर हिन्दी का यह अनन्य सेवक और दृढ़ समर्थक हिन्दी-सेवियों द्वारा ही इतनी उपेक्षा से देखा गया कि जीवन के अन्तिम दिनों में उसे हिन्दी से चिढ़ हो गई और अंग्रेज़ी को ही अपनी बातचीत का माध्यम बनाकर उसने हिन्दी और हिन्दी-भक्तों के प्रति आक्रोश प्रकट किया। पर इससे उनकी राष्ट्रीयता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता।

इस प्रकार निराला की राष्ट्रीयता विधिपरक (Positive) है। उसमें विद्रोह है, उत्पीड़न है, पर निगति के लिए नहीं, प्रगति के लिए। निराला का विद्रोह जीवन को निखारता है, उनका दैन्य सामाजिक विद्रूप को कुचलने की प्रेरणा देता है और उनका 'चिरकालिक क्रन्दन' घोषणा करता है—

हो रहे आज जो खिन्न-खिन्न
छुट-छुट कर दल से भिन्न-भिन्न
यह अकल-कला, गह सकल छिन्न, जोड़ेगी।

निराला के काव्य में वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष

श्यामसुन्दर घोष

निराला मार्क्सवादी नहीं थे, हो भी नहीं सकते थे, क्योंकि अद्वैतवादी थे तो उनके काव्य में वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष कहाँ से आये ?

वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष प्रेमचन्द में भी है। वे भी मार्क्सवादी नहीं थे, वस्तुवादी थे। वस्तुवाद में वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष अनायास आ जाता है। इसलिए वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष प्रेमचन्द में भी है और निराला में भी। निराला अद्वैतवादी थे सही, लेकिन उनका अद्वैतवाद विवेकानन्द का अद्वैतवाद था जिसमें जीवन और समाज की वास्तविकता का बहुत बड़ा स्थान है।

अद्वैतवाद और वस्तुवाद में विरोध नहीं है। अद्वैतवादी होते हुए भी वस्तुवादी हुआ जा सकता है। विवेकानन्द ने यह सिद्ध कर दिखाया था। निराला भी इसी पथ के पथिक थे। इसीलिए निराला के परवर्ती काव्य में यथार्थ और भक्ति तथा वास्तविकता और दर्शन का अद्भुत संगम है। जिस कवि ने 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते' और 'बेला' की रचना की है, उसी ने 'अणिमा', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' के गीत लिखे। इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। हिन्दी साहित्य में ऐसे साहित्यकारों की एक लम्बी परंपरा है। कबीर आत्मा और परमात्मा के गूढ़ संबंधों का निरूपण करते हुए भी सामाजिक स्थितियों में निहित विडम्बनाओं को नहीं भूलते थे। वे एक ही भाव से डाँट-फटकार और व्यंग्य की वाणी बोलते थे और प्रेम की पीर का भी प्रकाशन करते थे। तुलसी भी भक्ति में लवलीन होते हुए यथार्थ जीवन की समस्याओं का निराकरण करना न भूले। तो निराला के काव्य को ही देखकर हम क्यों चौंके ?

निराला में वर्ग-चेतना के भाव बहुत पहले से ही थे। यह कुछ तो अवध की मिट्टी का संस्कार था और कुछ महिषादल में रहने के कारण संभव हुआ था। महिषादल में नौकरी करते हुए उन्होंने किसान और भूमिपतियों के संबंध की सारी जटिलताएँ देखी थीं। इसी कारण उनको अपनी नौकरी छोड़नी पड़ी थी। निराला किसान के बेटे थे। किसान सिपाही हो गया था, लेकिन किसान के संस्कार मिटे नहीं थे। इस दशा में निराला ज़मींदार के मुलाज़िम होकर किसानों से किस प्रकार निबट

सकते थे। इसीलिए उन्होंने नौकरी छोड़ दी। यह उनके मन में निहित वर्ग-चेतना के कारण ही सम्भव हुआ।

महिषादल के बाद भी निराला का सम्पर्क गाँव के किसानों, खेतिहरों और निम्नवर्ग के लोगों से बना रहा। वे जब देहात में रहते थे तो उनका घर साधारण जनों का अड्डा (House of Commons) बना रहता था। ऐसा उन्होंने 'चतुरी चमार' में लिखा है।[1] जब कभी वे कुछ दिनों के लिए गाँवों से टल जाते थे तो किसान आन्दोलन निर्बल-सा मालूम होता था। किसान आन्दोलन में निराला का सक्रिय योग नहीं रहता था, यह ठीक है, लेकिन मन से वे किसानों के साथ थे और उनका उतना ही समर्थन किसानों के लिए बहुत था। निराला ने 'चतुरी चमार' में लिखा है—"साल भर बाद जब आन्दोलन में प्रतिक्रिया हुई, ज़मींदारों ने दावा करना शुरू किया, तब गाँव के नेता मेरे पास मदद के लिए आये, बोले, गाँव में चलकर लिखो, तुम रहोगे तो मार न पड़ेगी, लोगों को हिम्मत रहेगी, अब सख्ती हो रही है। मैंने कहा—मैं कुछ पुलिस तो हूँ नहीं जो तुम्हारी रक्षा करूँगा, फिर मार खाकर चुपचाप रहने वाला धैर्य मुझमें थोड़ा है। कहीं ऐसा न हो कि शक्ति का दुरुपयोग हो। गाँव के नेता ने कहा—तुम्हें कुछ करना तो है नहीं बस बैठा रहना है। मैं गया।"[2] इससे स्पष्ट है कि निराला का गाँव के किसानों से घनिष्ठ संबंध था। फिर वे उनकी वर्ग-चेतना से अछूते कैसे रहते? अन्याय सह लेना तो उनके स्वभाव के विरुद्ध बात थी। तो फिर वर्ग-संघर्ष ही उनके लिए अस्वाभाविक क्यों होता?

'कुकुरमुत्ता' मूलतः वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष का काव्य है। जिस समाज और काल में निराला रह रहे थे वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष उस समाज और काल की उल्लेख्य विशेषता है—ऐसी विशेषता जिसकी ओर से कोई भी वस्तुवादी विचारक या कलाकार आँखें नहीं मूँद सकता। उसका उल्लेख न करना उस समय की सामाजिक सचाई को झुठलाना होगा। निराला ऐसा नहीं कर सकते थे। इसीलिए उन्होंने 'कुकुरमुत्ता' में वर्ग-चेतना और वर्ग-संघर्ष को स्पष्ट वाणी दी।[3] लेकिन यह तो विस्फोट मात्र था। इसका विधिवत् प्रकाशन भी आवश्यक था। यह उन्होंने बाद की कविताओं में, विशेषकर 'नये पत्ते' और 'बेला' की कविताओं में, किया है।

वर्ग-चेतना की दृष्टि से 'नये पत्ते' की कविता 'थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा' ध्यान देने योग्य है। वर्ग-चेतना-प्रधान काव्य में शोषण के मूलभूत कारणों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। जनता वास्तविकताओं, आर्थिक संबंधों, शोषणों और स्वार्थों को जान जाये और यह चेतना उसके मन में लोहे की कनी-सी चुभे, यही वर्ग-चेतना का प्रथम लक्षण है। निराला ने अपनी वर्ग-चेतनामूलक कविताओं में

---

१. चतुरी चमार, द्वितीय संस्करण, पृ० ९।

२. वही, पृ० १५।

३. विस्तृत विवेचन के लिए देखें लेखक की पुस्तक सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'।

ऐसा ही किया है । उन्होंने ये कविताएं उस समय लिखीं जब देश पराधीन था । अतः जनता पर दुहरे शोषण का भार था । एक ओर तो विदेशी सत्ताधारी थे और दूसरी ओर अपने ही देश के पूँजीपति, स्वार्थी जमींदार और अंग्रेज़ों के नमकहलाल । जनता इन दोनों ही पक्षों को, उनके स्वार्थों और असलियतों को पहचानती थी । कवि ने इन दोनों के स्वरूप और स्वभाव की वास्तविकता स्पष्ट की है । अंग्रेजी शासन की वास्तविकता इन पंक्तियों में नंगी हो गई है—

बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया
टापू में ले चल कर रखा और कैद किया
एक का डंका बजा
बहुतों की आंख झँपी
लहलही धरती पर रेगिस्तान जैसा तपा
जोत में जल छिपा
धोखा छिपा, छल छिपा ।[1]

यहाँ जनता की दृष्टि में कवि ने विदेशी शासन की वास्तविकता स्पष्ट कर दी है । यह वास्तविकता-बोध ही वर्ग-चेतना है । यही उन्हें अपनी स्थिति और सामाजिक स्वरूप पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है ।

विदेशी शासक केवल डंका बजाकर ही नहीं रह जाते वरन् गोल बाँधते और घेरा डालते हैं । अपना मतलब गाँठकर आँखें फेरते उनको देर नहीं लगती । लेकिन फिर भी उनका जाल ऐसा होता है कि लोग उसमें जा फंसते हैं । स्वार्थ के वशीभूत होने के कारण ही ऐसा होता है । अतः ऐसे लोगों की वास्तविकता—चाटुकारवृत्ति और टुकड़खोर प्रवृत्ति भी जनता को साफ-साफ समझनी चाहिए । 'राजे ने अपनी रखवाली की' में ऐसे चापलूसों और खुशामदियों का सही चित्र खींचा गया है—

कितने ब्राह्मण आये
पोथियों में जनता को बाँधे हुए
कवियों ने उसकी (राजा की) बहादुरी के गीत गाय
लेखकों ने लेख लिखे
एतिहासिकों ने इतिहास के पन्ने भरे
नाट्य कलाकारों ने कितने नाटक रचे
रंगमंच पर खेले[2]

इस प्रकार राजा जनता के लोगों को बरगलाकर, झाँसापट्टी देकर, या टुकड़ों का लालच दिखाकर जनता से अलग करता है और उनके द्वारा जनता पर जादू चलाता है । एक विशेष दशा तक, जब तक जन-शक्ति जागृत नहीं होती, जनता पर राजा और उसके समाज का यह जादू चलता रहता है । लोक-नारियों के लिए रानियाँ

---

१. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० २९-३० ।
२. वही, पृ० ३१-३२ ।

आदर्श सिद्ध होती हैं, धोखे से भरे हुए धर्म का बढ़ाव होता है, सभ्यता के नाम पर युद्ध होते हैं और खून की नदियाँ बहती हैं। जनता आँख-कान मूँद उसमें डुबकियाँ लेती है। लेकिन जब जनता को इन सबका ज्ञान हो जाता है तो उनके मन में जन-चेतना की लपटें उठने लगती हैं। 'राजे ने अपनी रखवाली की' में कवि ने ऐसी ही जन-चेतना का आभास दिया है। इस कविता में जनता की साफ और पैनी दृष्टि से सामाजिक सचाई नहीं छिपती। वह इस बात को राई-रत्ती जानती है कि राजा अपने स्वार्थ के लिए ही सब-कुछ करता है। कुछ टुकड़खोर, जो जनद्रोही कहे जाते हैं, उसे स्वार्थ-साधन में सहयोग देते हैं और उसका हाथ मज़बूत करते हैं। ऐसी चेतना हो जाने के बाद ही जन-शक्ति का क्रोध उबलता है, उसमें प्रतिरोध की भावना आती है और जन-साधारण वर्ग-संघर्ष के लिए प्रस्तुत होता है।

वर्ग-चेतना में जहाँ शोषक के स्वार्थों, उसकी चालबाज़ियों, शोषण-यंत्रों और प्रक्रियाओं का ज्ञान आवश्यक है वहाँ निजी शोषित स्वरूप पर ध्यान जाना भी आवश्यक है। 'दगा की' कविता में जनता वर्ग-चेतना के आलोक में अपना शोषित चेहरा साफ देखती है—

> **चेहरा पीला पड़ा**
> **रीढ़ झुकी। हाथ जोड़े**
> **आँख का अँधेरा बढ़ा**
> **सैकड़ों सदियाँ गुज़रीं।**[1]

जब तक जनता को अपने इस दयनीय रूप का बोध नहीं हाता जन-चेतना बलवती नहीं होती। फिर उसके साथ उन पुरातन संस्कारों से भी परिचित होना होगा जो जन-शक्ति के बढ़ते हुए पाँवों में बेड़ियाँ स्वरूप हैं। इस दृष्टि से विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय, दार्शनिक मतवाद, कविता, कला, कोमलता के संस्कारों का खोखलापन दिखलाना आवश्यक होगा। 'दगा की' कविता में निराला के जनसाधारण इस बात को भी साफ-साफ समझते हैं।

> **किसी ने कहा कि एक तीन हैं**
> **किसी ने कहा कि तीन तीन हैं**
> **किसी ने नसें टोईं, किसी ने कलम देखे**
> **किसी ने बिहार किया, किसी ने अँगूठे चूमे**
> **लोगों ने कहा कि धन्य हो गये**
> **मगर खंजड़ी न गई।**[2]

इस प्रकार जनता अपनी ही दृष्टि से अपने जन-जीवन का इतिहास पढ़ती है और कमज़ोरियों से वाकिफ होती है। इन बोधों के बिना वर्ग-चेतना का कोई अर्थ और प्रयोजन नहीं है। अपनी कमज़ोरी और दूसरों की शहज़ोरी जान लेने के बाद ही

---

१. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० ३५।
२. वही, पृ० ३५-३६।

वर्ग-चेतना परिपूर्ण रूप से स्फुट होती है । 'नये पत्ते' की कविताओं में सामाजिक वैषम्य और अव्यवस्था के बीच जन की विवशता, कुंठा और असहायता का अच्छा चित्रण हुआ है । विवशता का चुभता हुआ बोध अन्ततः कर्म की प्रेरणा देता है और उसका कारण होता है। उसका कवि ने बहुत सुन्दर चित्र खींचा है—

माल हाट में है और भाव नहीं
जैसे लड़ने को खड़े दाव नहीं
दीठ बँधी अँधेरा उजेला हुआ
सेंधों का ढेला शकरपाला हुआ[1]

इन पंक्तियों में तत्कालीन आर्थिक मंदी और मंहगाई, जनता की क्रय-शक्ति का क्रमशः ह्रास, उसका जड़ सामाजिक व्यवस्था को हताश भाव से टुकुर-टुकुर देखना, सभी सूक्ष्मता और व्यंग्यमयता से वर्णित हैं। ये स्थितियां कवि जनता की आँखों से देखता है और उसी की समझ से समझता है। यहाँ कवि की चेतना जन-चेतना से तदाकार हो गई है । जनसामान्य की विवशता और विडम्बना का ऐसा बोध हमें निराला के अतिरिक्त और किसी कवि में नहीं मिलता ।

'नये पत्ते' की कविताओं में जनता के विविध शोषकों का रूप खुलकर स्पष्ट हुआ है। कवि ने व्यापारियों, बनियों और वैश्यों किसी को नहीं छोड़ा है । जनता की आँखों से इनका शोषक रूप नहीं छिप सकता। एक ओर तो जन-साधारण दिन-दिन गरीब होते जा रहे हैं और दूसरी ओर ये पूँजी बढ़ाते हैं और स्वच्छ विहार करते हैं ।

बालों के नीचे पड़ी जनता बलतोड़ हुई
माल के दलाल ये वैश्य हुए देश के
सागर भरा हुआ
लहरों से बहले रहे
किरनें समन्दर पर पड़ती कैसी दिखीं
लहरों के झूले झूले
कितना बिहार किया कानूनी पानी पर ।[2]

'नये पत्ते' की कविताओं में वर्ग-संघर्ष का श्रीगणेश 'तारे गिनते रहे' कविता से होता है । वर्ग-चेतना के बाद वर्ग-संघर्ष की स्थिति स्वाभाविक है । अपनी हीन दशा पर कोई कब तक आँसू बहाएगा या सामाजिक वैषम्य के शिकंजों में कसा चुप रहेगा ? इस दृष्टि से वर्ग-चेतना के बाद वर्ग-संघर्ष अनिवार्य है, लेकिन इसकी भी अनेक स्थितियाँ होती हैं जिनमें से एक इस प्रकार है—

राज चेतना की राह रोक कर
लोग खड़े हुए , कामयाब हुए
दुश्मनों के पैर न जमने दिये

---

१. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० ३९।

२. वही, पृ० ४१ ।

आपस में मिले रहे, ज़बांदराज़ी न की
लोक की समाज की लाज रखी
बढ़े चले ।[1]

वर्ग-संघर्ष में पहली स्थिति है निर्भयता और निर्भीकता की । शोषित शोषक से आँखें मिला सके, और उसकी राह रोककर खड़ा हो यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है । लेकिन यह तभी हो सकता है जब आपस में ध्येय और लक्ष्य की एकता हो । ऐसी स्थिति में वाद-विवाद परे रख देने होंगे, मध्य वर्ग के लोगों की तरह ज़बांदराज़ी नहीं करनी होगी । तभी हम कामयाब हो सकते हैं । ऐसा होने पर ही दुश्मनों के पैर नहीं जमेंगे । निराला का जनसाधारण यही करता है ।[2]

जब जनता अपना मनोबल दृढ़ कर संगठित हो जाती है तो वर्ग-संघर्ष की मोर्चाबन्दी हुई समझिये । लेकिन जनता में अद्भुत सहनशीलता भी होती है । वह सहज ही संघर्ष नहीं करना चाहती । जनता के स्वभाव के इस पहलू का 'कुत्ता भौंकता रहा' कविता में अच्छा चित्रण हुआ है । जाड़े का समय है और ठंडक अधिक है । बाहर ओले पड़े हैं । एक हफ्ता पहले पाला पड़ा था । कुल-की-कुल अरहर मर चुकी । गेहूं के पेड़ ऐंठे खड़े हैं और खेतिहरों में जान नहीं है । वे मन मारे एक-दूसरे से गिरे गले से बातें करते हुए दरवाज़े पर कौड़े ताप रहे हैं । बाहर कुहरा छाया हुआ है । इन पंक्तियों में प्रकृति के कोप की मारी गाँव की जड़ ज़िन्दगी का बड़ा सच्चा चित्रण हुआ है । गाँव और किसानों की यह दशा देखकर किसको दया न आयेगी ! लेकिन शोषकों को इससे क्या लेना-देना ? ऐसी ही परिस्थिति में ज़मींदार का सिपाही कंधे पर लट्ठ डाले आता है और किसानों से कहता है—

डेरे पर थानेदार आये हैं
डिप्टी साहब ने चन्दा लगाया है
एक हफ्ते के अन्दर देना है
चलो बात दे आओ ।[3]

सिपाही का यह कहना जले पर नमक छिड़कना है । लेकिन सहनशील किसान कुछ नहीं कहते, हाँ-ना कुछ नहीं । इससे उनकी सहनशीलता, क्रोध, क्षोभ और कुछ कर गुज़रने का संकल्प सब स्पष्ट है । उसकी सांकेतिक अभिव्यक्ति कवि ने इस प्रकार कराई है—

कौड़े से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ
और भौंकने लगा ।[4]

---

१. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० ४० ।
२. वही, पृ० ४० ।
३. वही, पृ० ६२ ।
४. वही, पृ० ६२ ।

ग्रामीण शोषण का ऐसा सच्चा, कलात्मक और प्रभावकारी वर्णन प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी नहीं मिलेगा। शोषण इतना प्रत्यक्ष है कि पशु भी उसकी भीषणता से अवगत और क्षुब्ध है। यहाँ निराला ने कौशल से काम लेकर, अर्थात् किसानों को चुप दिखाकर, उनके हृदय की घृणा, क्षोभ, आक्रोश सभी सफलतापूर्वक व्यंजित कर दिये हैं। यह वर्ग-संघर्ष के प्रारंभ के ठीक पहले की स्थिति है। इसके बाद निराला ने 'झींगुर डटकर बोला' कविता लिखी है, जिसमें वर्ग-संघर्ष का स्वर एकदम स्पष्ट और साफ हो गया है।

'झींगुर डटकर बोला' कविता में निराला का जनसाधारण वह जनसाधारण नहीं है, जिसको देखकर कुत्ता करुणा से द्रवित हो जाता है। अब उसकी निरीहता और निष्क्रियता समाप्त-प्राय है। उनका अपना संगठन है और किसान-सभा है। लेकिन उनके संगठन को तोड़ने और उनको बहकाने के लिए अनेक प्रकार के षड्यंत्र होते हैं। ज़मींदारों से साँठ-गाँठ किये हुए गांधीवादी किसानों को समझाने आते हैं, कहते हैं—

देश की भक्ति से
निर्विरोध शक्ति से
राज अपना होगा
ज़मींदार साहूकार अपने कहलायेंगे
शासन की सत्ता हिल जायगी
हिन्दू और मुसलमान
बैर-भाव भूलकर जल्द गले लगेंगे।[1]

इस प्रकार गांधीवादियों का भाषण चलता है। लेकिन जनता उनके चकमे में नहीं आती। जमींदारों से इनकी जो साँठ-गाँठ है उससे वह अवगत है। घोड़े और घास की यारी नहीं हो सकती। गांधीवादियों की बगुलाभक्ति जनता खूब पहचानती है। उसमें सूक्ष्म वर्ग-चेतना है। थोड़ी ही देर के बाद ज़मींदार का गोड़इत दुनाली बन्दूक लिये एक खेत से गोली दागने लगता है। भीड़ भागने लगती है और कांस्टेबुल खड़ा ललकारता रहता है। इस समय किसानों के हितैषी कांग्रेस वालों का साहस सटक सीताराम हो जाता है, उनको ज़मींदारों को समझाते नहीं बनता। इस प्रकार उनकी मिली-भगत जनता की नज़र में स्पष्ट है। झींगुर साफ कहता है—'चूंकि हम किसान सभा के हैं इसलिए भाईजी के मददगार ज़मींदार ने गोली चलवाई है।"[2]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व कांग्रेस का जो स्वरूप और स्वभाव था और उसमें बड़े लोगों के जो निहित स्वार्थ थे उनको तत्कालीन बहुसंख्यक जनता ने भले ही न समझा हो, लेकिन हिन्दी के साहित्यकारों ने खूब समझा था। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी ऐसे जन-विरोधी, पूँजीपतियों और भूमिपतियों से समझौता किये हुए नेताओं के

---

१. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० ६३।
२. वही, पृ० ६४।

चित्र हैं। निराला ने भी ऐसे तथाकथित बगुलाभगत नेताओं का चित्र खींचा है।

समाज में वर्ग-संघर्ष इसलिए भी अनिवार्य हो जाता है कि ज़मींदारों के अत्याचार किसानों की सहनशीलता से लजाते नहीं। उनके दल-बल के लोग तो और भी तिल का ताड़ करते हैं। जनता को मामूली-मामूली बात के लिए तंग करना और डराना-धमकाना उनका स्वभाव जो ठहरा। उनकी हरकतों का निराला ने 'छलाँग मारता गया' में अच्छा चित्रण किया है—

अगर किसी जोत या बाग की मेड़ को
छूता भी पेड़ हो
बढ़ा हो किसान भी अधिकार के लिए
गूला उस पेड़ के
तने पर रखकर वह
डट-डटकर देखता है[1]

यह ज़मींदार के सिपाही की हरकत है। वह लोहे-बँधे लाठी के गूले से किसानों के दरवाज़े पर गढ़ा करता है। इस रूप में अकारण ही किसानों पर रोब गाँठता है। अब उससे इतना दबकर कौन रहे? लोग जितना ही दबेंगे वह उतना ही दबायेगा, इसलिए ऐसे अवसरों पर जनता ताव खा जाती है—

आँखों में उस अवसर पर
धुंधी छा जाती है
आदमी जैसे कमान
बन जाता है किसान
सामाजिक और राजनैतिक सहारे कुल
छुटकर भग जाते हैं
धर्म-कर्म लोग-जन
जान पर खेलते हैं[2]

वर्ग-संघर्ष के ऐसे अवसरों पर किसानों और खेतिहरों का साथ देने वाले कुत्ते और मेंढक हैं। शोषितों के लिए उनके हृदय में जो करुणा और सहानुभूति है पूंजीवादी समाज-व्यवस्था में स्वार्थ-भावना से प्रेरित मानव-हृदय में उनकी कल्पना नहीं की जा सकती।

'डिप्टी साहब आये' कविता में जनता को प्रचलित बेगारी और मुफ्तखोरी का जमकर विरोध करते दिखाया गया है। सरकारी अमले गाँव के दौरे पर क्या जाते हैं मानो अपनी ससुराल जाते हैं। जो शौक किसी जन्म में पूरे नहीं हुए होते उनको पूरा करने के लिए यही अवसर अनुकूल समझा जाता है। दूध, दही, घी, मांस आदि की फ़रमाइश होती है। लेकिन जनता इन बातों को कब तक बर्दाश्त करे? जिसको खुद रोटियों के लाले पड़े हों, वह दूसरे के लिए रबड़ी और मलाई कहाँ से लाए?

---

१. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० ९२-९३।
२. वही, पृ० ९३।

इसलिए जब डिप्टी साहब का गोड़इत बदलू अहीर के दरवाज़े पर आकर डिप्टी साहब का बखान करता है कि वे ऐसे-वैसे नहीं, 'अहिर के मूसर और दई के दूसर हैं और इनके घाट में भेड़ और भेड़िये बिना किसी वैर-भाव के एक साथ पानी पीते हैं' तो बदलू पर कोई असर नहीं होता। लेकिन गोड़इत तो अपनी मौज में है। डिप्टी साहब और अन्य अफ़सरों के रोब का उस पर नशा छाया हुआ है। इसलिए वह गले को खँखारकर गाँव को गुंजाता हुआ कहता है—

इनके साथ और अफ़सरान हैं
जैसे दारोगाजी
बीस सेर दूध दोनों घड़ों में जल्द भर[1]

बदलू गोड़इत की बात को सुनकर भी अनसुनी कर देता है। वह उससे डिप्टी साहब के आने के प्रयोजन की बातें करता है। ज़मींदार किस प्रकार लछमिन के बाग को बंजर कहकर और उसे अपने बाप की दोगली लड़की ठहराकर बाग हड़प लेना चाहता है, यह सभी गाँव वाले जानते हैं। डिप्टी साहब इसी की तथाकथित तहक़ीकात करने के लिए आये हैं, बदलू गोड़इत से यह कहता है। लेकिन गोड़इत तो अफ़सरी शान और ज़मींदार के बल पर फूला हुआ है, वह इस बात से पिनक जाता है और बदलू से कहता है—

जानता नहीं है बे,
गोड़इत ने पैर रोपा
ज़मींदार के हैं हम
मालिक का भला जहाँ वहाँ है हमारा भला।[2]

फिर क्या था ! बदलू को जोश आ गया। अपने ही वर्ग के प्रति अपने ही लोगों की यह गद्दारी देखी नहीं जाती। बदलू क्रोध से भरकर घूँसा तानकर गोड़इत की नाक पर मारता है। इस पर कवि कहता है—"गोड़इत जन-प्रेमी था ज़मीं चूमने लगा।" कैसी निर्मम प्रतिक्रिया है ! लेकिन इसके बाद वर्ग-संघर्ष का समाँ बँध जाता है—

तब तक बदलू के कुल तरफ़दार आ गए
मन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार
लच्छू नाई, बली कहार, कुल टूट पड़े
कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं हुआ होने लगा
बदल गया राव-रंग
सब लोग सत्य कहने के लिये तुल गए।[3]

यहाँ विभिन्न जातियों के लोगों को इकट्ठा कर कवि जनता को जिस एकजूट शक्ति का परिचय दिया है, वह वर्ग-संघर्ष के लिए आवश्यक है। जनता की ऐसी एकता,

---

१. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० ६४।
२. वही, पृ० ६५।
३. वही, पृ० ६५।

तत्परता और प्रतिरोध के आगे शोषकों की एक नहीं चलती। थानेदार के भेजे हुए सिपाही अब दाम लेकर आते हैं और माल ले जाते हैं। लेकिन बात यहीं तक नहीं रहती। जगी हुई जन-शक्ति वह नाग है जिसके फन कुचले नहीं जा सकते। सब लोग एक होकर ज़मींदारी के विरोध में गवाही देते हैं। इस प्रकार ज़मींदार की बनी-बनाई योजना की मिट्टी पलीद हो जाती है। इस तरह निराला ने वर्ग-संघर्ष के यथार्थ रूप को उसकी सफलता के साथ चित्रित किया है।

वर्ग-संघर्ष प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी है, पर वहाँ अधिकतर असफल है चाहे वह असफलता मध्यवर्गीय नेता अमरकान्त या चक्रधर जैसों के कारण हो। प्रेमचन्द के उपन्यासों में असफल वर्ग-संघर्ष के बाद एक उदास और मायूस वातावरण चित्रित है[१] लेकिन निराला की कविता में वर्ग-संघर्ष का ऐसा निराशा उत्पन्न करने वाला चित्र नहीं मिलता। शायद निराशा के ओजस्वी और अजेय व्यक्तित्व को वैसा चित्र खींचना अभीष्ट नहीं था।

'महगू महगा रहा' कविता में देश में प्रचलित साँठ-गाँठ वाली राजनीति, उसके प्रचार-हथकंडों और प्रलोभनों के बीच भी जन-चेतना के रूप को सही उभरते दिखाया गया है। कविता में एक ऐसे नेता का चित्र है जो लंदन के ग्रेजुएट, एम०ए० और बैरिस्टर हैं। ये गाँव में भाषण देने के लिए मोटर पर जाते हैं। माँ को तपेदिक है जिसका इलाज स्विट्ज़रलैंड के अस्पताल में होता है। ऐसे नेताओं को जनता खूब पहचानती है—

> **राजों के बाजू पकड़, बाप की वकालत से**
> **कुर्सी रखने वाले अनुल्लंघ विद्या से**
> **देशी जनों के बीच**
> **लेडी जमींदारों को आखों तले रक्खे हुए**
> **मिलों के मुनाफा खानेवालों के अभिन्न मित्र**
> **देश के किसानों, मजदूरों के भी अपने सगे**
> **विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए**
> **गले का चढ़ाव बुर्जुआजी का नहीं गया।[२]**

ऐसे नेता क्या भाषण देंगे और इनसे जनता का कौनसा दुख-दर्द दूर होगा, यह गाँव के सभी लोग भली भाँति जानते हैं। लेकिन ऐसे नेताओं के भाषण न सुनने जाएँ तो घूँसे और डंडे से खबर ली जाएगी। इनकी पुलिस से भी मिली-भगत हो सकती है। क्या ठिकाना है ऐसे लोगों का? इसलिए घूँसों-डंडों से बचने के लिए गाँव के लोगों ने एक रास्ता निकाला है, वे सभाओं में जाते हैं। नेताजी कांग्रेस के चुनाव पर बोलते हैं। बगल में कांग्रेस के उम्मीदवार जेल जाने वाले ज़मींदार भी हैं। उनका भी भाषण होता है। लेकिन यह सब होने पर भी जनता अपने ही ढंग से सोचती और

---

१. द्रष्टव्य, कर्मभूमि, पृ० ३७४।
२. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० १०७।

समझती है। जनता के लिए पंडितजी की राय से कहीं अधिक वेशकीमती राय है महगू की। भाषण के बाद लकुआ महगू से पूछता है—"क्यों हो महगू, अपनी तो राय दो। आजकल कहते हैं ये भी अपने नहीं।" इस प्रकार निराला ने जनता के उस रूप को प्रत्यक्ष किया है जो चिकनी-चुपड़ी बातों और थोथे भाषणों से अप्रभावित रहती है। महगू ऐसे नेताओं की कलई इस प्रकार खोलता है—

कम्पू में किरिया के
गोली जो लगी थी
उसका कारण पंडितजी का शागिद है
रामदास को कांग्रेसमैन बनाने वाला
जो मिल का मालिक है।
यहाँ भी वह जमींदार के बाजू से लगा ही है
कहते हैं इनके रुपए से ये चलते हैं
कभी-कभी लाखों पर हाथ साफ करते हैं।[1]

इस प्रकार महगू जैसे लोग अपढ़ और गंवार हैं सही, लेकिन देश की जटिल राजनीति की राई-रत्ती से अच्छी तरह वाकिफ़ हैं। वर्ग-चेतना ने इनको इतनी सुलझी और साफ़ दृष्टि दी है कि ये वस्तुस्थिति का सही आकलन करते हैं। एक तरफ़ देश में ऐसे लोग हैं और दूसरी ओर सच्चे जन-नेता भी हैं, प्रगतिशील शक्तियाँ भी हैं। उनके बारे में भी महगू को पता है। वह घबराये हुए लकुआ को सान्त्वना देता हुआ कहता है—

एक उड़ी खबर सुनी है
हमारे अपने हैं यहाँ बहुत छिपे हुए लोग
मगर चूँकि अभी ढीली-पोली है देश में
अखबार व्यापारियों की ही सम्पत्ति है
राजनीति कड़ी से भी कड़ी चल रही है
वे सब जन मौन हैं इन्हें देखते हुए[2]

इस प्रकार राजनीति के शैवालजाल के नीचे जो जन-चेतना का स्वच्छ शीतल स्रोत है उससे ये भली भाँति परिचित हैं। इसलिए इनके मन में निराशा नहीं है। ये अवसर की ताक में हैं। जब तक ऐसा नहीं होता ये अपनी जगह कमर कसे डटे हैं। इन्हें फुसलाना, बरगलाना या झाँसा देना आसान नहीं है। वह कहता है—

मैं महगू हूँ
पैरों की धरती आकाश को भी चली जाय
मैं कभी न बदलूंगा इतना महगा हूँगा।[3]

---

१. नये पत्ते (नवीन संस्करण), पृ० १०९।
२. वही, पृ० १०९-१०।
३. वही, पृ० ११०।

निराला और प्रकृति

विश्वम्भर 'मानव'

मनुष्य प्रकृति की गोद में जन्म लेकर उसी की गोद में चिर विश्राम लेता है। वह कहीं भी चला जाय, धरती-आकाश, पर्वत-समुद्र, वन-उपवन, सरिता-निर्झर से अपने को घिरा हुआ पाता है। सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र को वह उदित होते और डूबते देखता है। पुष्प उसके उद्यान में खिलते हैं, लताएँ उसकी दीवारों पर चढ़ी रहती हैं, पक्षी उसकी छत की मुँडेर पर आकर बैठते हैं। प्रति वर्ष वह वर्षा, शीत, वसंत और निदाघ के अविराम चक्र को घूमते देखता है। इतना होने पर भी यह आवश्यक नहीं है कि उससे वह अपना रागात्मक संबंध स्थापित कर ही ले। हिन्दी के कवि प्रकृति के सौंदर्य के प्रति बहुत उदासीन रहे हैं। प्रकृति के प्रेमियों में प्राचीन काल में हम सेनापति का नाम ले सकते हैं, और आधुनिक युग में सुमित्रानन्दन पंत का। संभवतः पंतजी पिछले बारहसौ वर्ष के हिन्दी-काव्य में प्रकृति के सबके बड़े कवि हैं। प्रकृति के प्रति ऐसा रागात्मक संबंध किसी दूसरे कवि का नहीं पाया जाता— प्रसाद, निराला और महादेवी का भी नहीं।

निराला का प्रकृति-वर्णन ऋतुओं, वस्तुओं, प्रतीक-विधान एवं अलंकरण तक सीमित है। यह दूसरी बात है कि इस सीमित परिधि में जो कल्पनाएँ उन्होंने की हैं, वे बड़ी अनूठी और रम्य हैं। निराला का सबसे प्रिय विषय है बादल, सबसे प्रिय ऋतु है वर्षा। 'परिमल' में तो बादल-राग छः कड़ियों में समाप्त हुआ ही है, 'नये पत्ते', 'बेला' और 'आराधना' में भी वर्षा और बादल पर रचनाएँ संगृहीत हैं। वर्षा पर सबसे अधिक रचनाएँ 'गीत गुंज' में हैं—एक दर्जन से भी अधिक। इस प्रकार कोई संकलित करना चाहे तो बादलों पर इनका एक छोटा-सा काव्य-ग्रन्थ ही तैयार हो सकता है।

'बादल-राग' की रचना इन्होंने बहुत मनोयोग से की है। निराला के काव्य और व्यक्तित्व के जो दो पक्ष हैं—कोमल और कठोर—उनकी अभिव्यक्ति इस अकेली रचना से होती है।

प्रथम अंश में ध्वन्यात्मक शब्दों की सहायता से बादलों की रोर की पुनर्सृष्टि की गई है। मेघों का जल सभी कहीं पर भर गया है और नद के समान कवि का

हृदय भी हर्षाकुल है। उसका उत्साह तो यहाँ तक बढ़ गया है कि वह बादलों से अपने देश ले चलने की प्रार्थना करता है।

दूसरे अंश में बादल से प्रभावित होने वाले मूल कारण की व्याख्या कवि करता है। वह उसके निर्बंध स्वभाव पर मुग्ध है। उसके स्वभाव की स्वच्छंदता और उच्छृंखलता उसे प्रिय है। बादल सभी प्रकार की बाधाओं को तुच्छ सिद्ध करता हुआ आकाश में विचरण करता है। वह अनंत अवकाश का सम्राट् है। विद्रोही स्वभाव वाले बादल की असीम शक्ति से कवि यहाँ तक प्रभावित है कि जिस बात को लेकर उसकी प्रशंसा उसे नहीं करनी चाहिए थी, उसकी भी उसने की है। बादल अपनी रोर से कलियों और पत्रों को कंपित करता है, नीड़ों में बैठे पक्षियों को भयभीत करता है; पर कवि ने इन निरीह वस्तुओं और जीवों की स्थिति की चिंता न कर, सृष्टि में व्याप्त आतंक के परिणाम से उदासीन रहने की वृत्ति की प्रशंसा की। आतंक आततायी के विरोध में ही सुन्दर लगता है, कोमल और कमनीय के विरोध में नहीं।

तीसरे अंश में कवि ने बादल की तुलना अर्जुन जैसे वीर से की है। इंद्रधनु ही उसका धनु है, गगन की गड़गड़ाहट उसके रथ का घर्घर रव। यह ठीक है कि उसमें विश्व-विजय करने की शक्ति है; पर उसके स्वभाव के कोमल पक्ष को भी उसने उभारकर रखा है। पहला गुण है उसकी सेवा-परायणता। वह संसार को जल का दान देकर उसकी वास्तविक सेवा करता है। कोमलता की दूसरी व्यंजना व्यक्तिगत है। स्वर्ग के प्रवास-काल की समाप्ति पर आज वह श्यामा के अधरों की प्यास मिटाने आया है।

चौथे अंश में बादल की कल्पना कवि ने प्रकृति के मुक्त आँगन में क्रीड़ा करने वाले एक चंचल बालक से की है। यह शिशु अंधकार में किलकारियाँ भर रहा है, विद्युत् इसके घुँघराले बालों में झलक उत्पन्न कर रही है और किरणें उसके मुख को आलोकित कर जाती हैं। वह एक ऐसा गायक है जो इंद्रधनु के सप्तक पर मुक्त कंठ से किसी राग को छेड़कर वर्षा के झर-झर रव से मधुर प्रपात को विश्व के कानों में उँडेल रहा है।

पाँचवें अंश में बादल को कार्य-कारण से परे उस निराकार ब्रह्म के रूप में देखा गया है जिसकी वंदना सूर्य-चंद्र-तारे करते हैं और जो कवियों का प्रेरणास्रोत है। उसकी श्यामता नयन का वह अंजन है जो ज्ञान का प्रदाता है।

छठे और अंतिम अंश में बादल के दुहरे व्यक्तित्व को चित्रित किया गया है। रचना की सारभूमि इसी में निहित है, इसी से यह सभी अंशों की अपेक्षा प्रभावशाली बन पड़ा है। बादल का घोर गर्जन जहाँ महलों में अपनी प्रियतमाओं के पास लेटे धनिकों के हृदय को भय से भर देता है, वहीं वह कृषकों को पुलकित भी करता है। एक ओर जहाँ वह वज्रपात से शृंगों को तोड़-फोड़कर पर्वतों के शरीर को क्षत-विक्षत कर डालता है, वहीं वह वर्षा के जल से पृथ्वी के भीतर अंकुरों को उगाता है और पौधों को हँसाता है। बादल के विप्लवकारी स्वभाव की एक विशेषता यह है कि उससे अन्यायी आतंकित होते हैं और छोटे विकास का मार्ग पाते हैं। यह

अंश गहरी और सच्ची प्रगतिशील भावना का परिचायक है ।

'बादल-राग' के प्रत्येक अंश पर शीर्षक देकर यद्यपि कवि ने इन्हें अलग-अलग रचना माना है, पर हम इसे एक लंबी कविता भी मान सकते हैं । इसके पहले अंश में कवि बादल का स्वागत करता है, दूसरे में उसके विप्लवी रूप को पहचानता है, तीसरे में उसकी सेवा-वृत्ति को उभारकर रखता है, चौथे में उसकी निर्द्वन्द्वता का परिचय देता है, पाँचवें में उसकी तुलना ब्रह्म से करता है और छठे में उसके महत्त्व का प्रतिपादन है। यों प्रत्येक अंश में किसी विशेष गुण का उल्लेख है; पर ये गुण एक ही वस्तु के हैं। हम चाहें तो उसमें एक तारतम्य भी स्थापित कर सकते हैं । निराला ने उन्हें भिन्न रचनाएँ इसलिए माना है कि वे विभिन्न कालों में लिखी गयी हैं । जैसे—

तिरती है समीर सागर पर (१९२०)
उमड़ सृष्टि के अंतहीन अंबर से (१९२३)

'बादल-राग' निराला की प्रसिद्ध रचनाओं में से है । इनके काव्य की विशेषताओं की जब चर्चा करनी होती है तो 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति-पूजा', 'सरोज स्मृति' और 'कुकुरमुत्ता' के साथ इसका भी उल्लेख होता है । जैसा अभी कह चुके हैं, यह कविता निराला के काव्य और व्यक्तित्व के दो विरोधी पक्षों को समान पटुता से प्रस्तुत करती है । कवि ने कहा ही है—अहो, कुसुम-कोमल कठोर पवि ! इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसका प्रत्येक अंश अपने में एक सम्पूर्ण चित्र है और ये छहों चित्र एक बड़े चित्र की रचना में सहायक होते हैं । तीसरे, यह कवि की प्रगतिशील प्रवृत्ति की परिचायका है । प्रगतिवादी आंदोलन तो बहुत बाद (सन् १९३५) में प्रारंभ हुआ । निराला ने पंद्रह वर्ष पूर्व ही उसकी भूमिका तैयार कर दी ।

'बादल' शीर्षक से इसी काल (१९२२) की एक रचना श्री सुमित्रानन्दन पंत की है । दोनों में से कौन श्रेष्ठतर है, यह कहना कठिन है । दोनों दो दृष्टिकोणों से लिखी गयी हैं । निराला ने बादल के विशिष्ट रूप को देखा है, पंत ने सामान्य को । निराला ने एक ही इन्द्रधनु को बीच में डालकर एक ओर उसे 'त्रिलोकजित' कहा है, दूसरी ओर 'मुक्त गान का गायक' । बादल को 'सिंधु का अश्रु', 'अनंत का शिशु', 'तरु का सुमन' आदि कहना काफ़ी उर्वर कल्पना का द्योतक है । पंतजी का बादल ऐसी रम्य कल्पनाओं का भांडार है । चित्र दोनों के बड़े सजीव हैं । निराला की रचना जहाँ हमारी चेतना को उद्‌बुद्ध करती है, वहाँ पंतजी की आनन्द-मग्न । निराला के वक्तव्य का सार इन पंक्तियों में सिमट आया है—

अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
धनी वज्र-गर्जन से बादल !
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं ।
हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार—
शस्य अपार,

हिल-हिल,
खिल-खिल
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।

'बेला' और 'नये पत्ते' में वर्षा पर जो रचनाएँ हैं उनमें प्रकृति का यथातथ्य चित्रण है। बात एकदम सीधे कह दी गयी है। कल्पना का सहारा नहीं लिया गया। फूलों में बेला, जुही, कमल; वृक्षों में आम, पीपल तथा पशु-पक्षियों में गाय, भैंस, हिरन और मोर का उल्लेख है। कवि की दृष्टि विशेष रूप से गाँवों की ओर गयी है। वहाँ के वातावरण का चित्रण उसने कई प्रकार से किया है। बाहर दृष्टि पड़ती है तो ज्वार, अरहर, मूँग, उड़द, सन और धान के खेत दिखाई पड़ते हैं। कहीं युवक अखाड़े में कुश्तियाँ लड़ रहे हैं, कहीं गाँव की लड़कियाँ बारहमासा गा रही हैं, कहीं लोग देश-प्रेम की चर्चा में लीन हैं, इस सबके ऊपर आँखों को सुखद लगने वाली हरियाली, शरीर को रोमांचित करने वाली पुरवाई और नदी, नालों, सरोवरों को भी कवि विस्मरण नहीं कर पाया है—

(१) **कानों में बातें बेला और जुही करती थीं,**
नाचते मोर, झूमते हुए पीपल देखे।
—बेला

(२) **घने-घने बादल हैं**
एक ओर गड़गड़ाते;
पुरवाई चलती है;
तालों में करँबुए,
कोकनद खिले हुए;
ढोर चरते हुए;
कहीं हिरनों का झुंड;
आम पकते हुए,
नाले बहते हुए,
युवक अखाड़ों में जोर करते हुए।
—नये पत्ते

'गीतगुंज' की रचनाओं में कुछ तो अन्य रचनाओं की अनुगूंज है—वही हरियाली, वही पुरवाई, वे ही पुष्प। लेकिन दृष्टिकोण कुछ बदला हुआ है। अभिव्यक्ति कुछ अधिक काव्यात्मक हो गयी है। रचनाओं में संगीत-तत्त्व का प्राधान्य है। प्रकृति के सौंदर्य की ओर अब कवि की दृष्टि अधिक है। वर्षा को वह एक सुन्दर रमणी के रूप में देखने लगा है। मेघ एवं विद्युत् अब उसे केश और कटाक्ष के रूप में दिखाई देने लगे हैं। वातावरण अधिक संश्लिष्ट और सजीव है। घने अंधकार में बिजली चमकने, बादलों के गरजने, फुहारों के पड़ने और नीम के हिंडोलों में

कजली-मलार के गाए जाने की चर्चा बार-बार हुई है । कवि ने रीति-कालीन परिपाटी का निर्वाह करते हुए विरह में मदन के सताने और अंत में प्रतीक्षा-रत नायिका के पास प्रियतम के लौटने का उल्लेख भी किया है । 'चौमासा' एक ऐसी ही परंपरा-विहित रचना है । इन गीतों में लोक-मंगल की भावना पूरी-पूरी पायी जाती है । कवि केवल ऐसी कामना ही नहीं करता कि वर्षा मंगलदायी हो, वरन् उसने लोक को उत्सव मनाते भी देखा है । इस प्रकार वर्षा का पूरा प्रभाव उसके मानस में रक्षित है—

(१) मालती खिली, कृष्ण मेघ की ।
उग आये अंकुर जीवन,
धान, ज्वार, अरहर औ' सन
बही पुनः गंध से पवन
पके आम की ।

—गीत गुँज

(२) यह गाढ़ तन, आषाढ़ आया, दाह-दमक लगी, जगी री—
रैन चैन नहीं कि बैरिन नयन नीर-नदी बही री ।
फिर लगा सावन, सुमन भावन, झूलने घर-घर पड़े,
सखि चीर सारी की सँवारी झूलती झोंके बड़े ।
फिर भरा भादों, धरा भीगी, नदी उफनाई हुई;
री, पड़ी जी की, प्राण-पी की सुधि न जो आई हुई,
खर क्वार कंत विदेश छाये, कनक ही के वश हुए,
कह कौन सी परतीत जो की शपथ, कर मेरे छुए ?

—आराधना

अन्य ऋतुओं में शरद, शिशिर और वसंत का वर्णन पाया जाता है । ये वर्णन परिचयात्मक अधिक हैं । शरद के लगते ही श्वेत बादल आकाश में तैरने लगे, उजले तारे उदित होने लगे, पुरवाई बंद हो गयी, हरसिंगार के फूल झरने लगे, खंजन इधर-उधर दिखाई देने लगे और खेतों में हल चलने लगे । शिशिर में तुषार-पात हो रहा है, वृक्ष पत्र-हीन हो गये हैं, जल और पवन इतने ठंडे हो गए हैं कि सहन नहीं हो पाते, फिर भी रमणियों का रूप निखर आया है । वसंत के आगमन पर वृक्षों में नयी कोंपलें आ गयी हैं, समीर बह रहा है, आम्र में मौर आ गया है, भौंरे गूँज रहे हैं और तितलियाँ फूल-फूल का रस ले रही हैं ।

इस प्रकार निरालाजी ने यद्यपि सभी ऋतुओं का थोड़ा-बहुत वर्णन किया है; लेकिन वर्षा के जैसे पूर्ण चित्र उनकी रचनाओं में पाये जाते हैं, वैसे अन्य ऋतुओं के नहीं । अन्य ऋतुओं का उल्लेख उत्तरकालीन कृतियों में अधिक है, जहाँ कला की भूमि से उतरकर उनका झुकाव सीधे-सादे वर्णनों की ओर अधिक हो गया था । ये वर्णन हमारे हृदय को गहराई से नहीं छू पाते ।

ऋतु-वर्णन की दृष्टि से इनकी एक ही रचना सफल कही जा सकती है;

लेकिन वह वर्णन उस रचना का लक्ष्य नहीं है, अंग मात्र है। रचना का शीर्षक है—'देवी सरस्वती'। इसमें ऋतु-वर्णन के आधार पर कवि ने भारतीय जीवन—विशेष रूप से ग्रामीण जीवन—की झाँकी दिखाने का प्रयत्न किया है। रचना में प्रत्येक ऋतु में पायी जाने वाली वस्तुओं का हमारे जीवन से संबंध और फिर उस संबंध का हमारे जीवन पर प्रभाव अंकित किया गया है। इस प्रकार प्रकृति और जीवन के सौंदर्य की एकाकारिता इस रचना में सबसे अधिक प्रतिफलित हुई है। पर्व-त्योहार और देवी-देवताओं के पूजन आदि के उल्लेख में कवि की सामाजिक भावना के दर्शन होते हैं। प्रकृति का वैभव ही अंततः जीवन का वैभव है, प्रकृति का आनन्द ही जीवन का आनन्द, ऐसा कवि का संकेत प्रतीत होता है। यों चौमासा-वर्णन की भाँति यह षट्ऋतु-वर्णन भी एक रूढ़ि का पालन मात्र है।

प्राकृतिक तत्त्वों में निरालाजी का जल के प्रति आकर्षण अधिक है। वर्षा का उल्लेख ऊपर हो ही चुका है। तरंग, प्रपात और नदी पर जो रचनाएँ पायी जाती हैं, वे इस आकर्षण की पुष्टि करती हैं। प्रपात गिरि के हृदय से फूटकर बाधाओं को पार करता हुआ निरंतर बढ़ता चला जा रहा है, नदी नाव से खेल रही है, तरंगें अपनी बाँहें उठाकर रह जाती हैं। ये सब न जाने किससे मिलने के लिए आतुर हैं! इस मानवीकरण में कवि ने प्रकृति की वस्तुओं को स्त्री अथवा पुरुष का रूप तो प्रदान किया ही है, उनके अंतर की भावनाओं को भी पहचाना है। इस प्रकार उन्हें सजीवता प्रदान कर छायावादी मनोवृत्ति के अंतर्गत लाकर रख दिया है। साथ ही उन्होंने उन्हें एक विराट् तत्त्व से सम्बद्ध कर दिया है। प्रपात हँसता हुआ अजान की ओर बहता है, तरंगें असीम की ओर जा रही हैं।

यमुना वाली रचना कुछ अधिक लंबी हो गयी है। यह एक संबोधगीति है जिसमें कवि यमुना से अनेक प्रश्न पूछता हुआ पौराणिक काल के एक वैभवमय युग का पुनर्निर्माण करता है। यह वही यमुना है जिसके किनारे कृष्ण छोटे से बड़े हुए थे। राधा-कृष्ण को और किसी ने देखा हो अथवा न देखा हो; पर यमुना ने तो उन्हें अपनी आँखों से देखा ही था। कितना काल व्यतीत हो गया है तब से और कितने परिवर्तन हो गए हैं तब से इस विशाल देश के जीवन पर! वह काल क्या अब लौटाकर लाया जा सकता है? अतीत के प्रति ऐसी ही ललक पंतजी की 'परिवर्तन' शीर्षक रचना में भी पायी जाती है।

इस कविता में राधा-कृष्ण युग के वैभव, सौंदर्य, विलास और संगीत-प्रेम को बार-बार स्मरण किया गया है। कृष्ण का चरित्र तो ऐसा है कि वह कवियों की कल्पना में पंख लगा देता है; फिर भी यह रचना कुछ छोटी होती, तो अधिक प्रभावशालिनी होती, ऐसा हमारा विचार है। 'अतीत' शब्द का प्रयोग इसमें आवश्यकता से अधिक हुआ है। सभी छंद समान रूप से व्यंजक नहीं हैं और कुछ से तो कोई चित्र ही नहीं उठ पाता।

रचना में दुहरी तन्मयता पायी जाती है—पहली यमुना की, दूसरी कवि की। यमुना तो आज भी चंद्रमा में उस मुख को, ज्योत्स्ना में गोपियों के कमनीय गात को,

खंजनों में उन बड़े रसीले चंचल नयनों को, तारों में वक्ष पर हिलते हारों के मोतियों को प्रतिबिंबित पाती है। ऐसी दशा में अतीत की स्मृति से वह कैसे छुटकारा पा सकती है ? कवि इस स्मृति के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। इस प्रकार यह पूरी रचना 'निराला' की अतिशय भावुकता की परिचायक है। कुछ पंक्तियाँ तो बड़ी ही सुचित्रित बन पड़ी हैं जैसे—

बता, कहाँ अब वह वंशीवट,
कहाँ गये नटनागर श्याम ?
चल-चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दाधाम ?

कहाँ छलकते अब वैसे ही
व्रज-नागरियों के गागर ?
कहाँ भीगते अब वैसे ही
बाहु, उरोज, अधर, अम्बर ?

जल-तत्त्व के उपरान्त प्रकृति में दूसरा आकर्षण निरालाजी का फूलों के प्रति है। फूलों से बहुत सीमित-सा परिचय उनका है। पंतजी के समान यूरोपियन फूलों की चर्चा उनके काव्य में कहीं नहीं पायी जाती। कुछ फूलों पर उन्होंने स्वतन्त्र रचनाएँ भी लिखी हैं और वे सभी प्रसिद्ध हैं; जैसे जुही, शेफालिका, बेला, नर्गिस।

'जुही की कली' इनकी पहली रचना है। इसके माध्यम से इन्होंने प्रकृति के तत्त्वों के बीच उन्मुक्त-प्रेम की स्थापना की है। इसमें जुही नारी है, पवन पुरुष। पवन यद्यपि परदेश में है, पर वह दूर खिली जुही के यौवन-सौंदर्य से परिचित है। एक दिन प्रकृति का उद्दीपनकारी प्रभाव अपना मायाजाल फेंकता है और वह उतावला होकर प्रिया के देश लौटता है। आते ही उसे सोते से जगाकर उसके साथ केलि करता है। जुही कुछ कहती नहीं, पर इतना स्पष्ट है कि आनन्द का अनुभव वह भी समान रूप से करती है। एक ओर सुन्दरता, दूसरी ओर उद्दाम भावना, बीच में पृष्ठभूमि की मादकता—भोग के सारे उपकरण एकत्र हैं। पवन अपनी सुकुमार प्रेयसी के साथ कोमलता का व्यवहार नहीं करता। वह झोंके की झड़ियों से उसकी देह को झकझोर डालता है, गोरे कपोलों को मसल देता है। यह निर्दयता आनन्द-प्रदायिनी है। यौवन-काल में सभी तरुणियों को इस परुषता का सामना विवशता से करना पड़ता है। शायद वे इसे पसंद भी करती हैं।

प्रकृति की ओट में मानव-जीवन का यह मधुरतम प्रसंग है। रीति-काल की प्रतिक्रिया में द्विवेदी-युग ने संभोग के वर्णनों का विरोध किया था। उनसे सदाचार-मूलक एवं उपदेशात्मक रचनाओं की वृद्धि तो हुई; पर काव्य में शुष्कता भी बढ़ चली। संभवतः इसी से छायावादी कवियों ने अपने मन की वासना को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का आवरण चुना। 'जुही की कली' इसका उदाहरण है। इसमें से यदि जुही और पवन के नाम हटा दें, तो फिर यह सीधी काम की भूमिका बन जाती है। संभव है यह मलयानिल बंगाल में प्रवासी के रूप में रह रहा हो और जुही की कली डलमऊ

में खिली हो; फिर भी पवन और जुही से तात्पर्य यहाँ सामान्य तरुण-तरुणी का ही लेना चाहिए।

निरालाजी ने इस रचना के सौंदर्य की बारीकियों का प्रशंसात्मक व्याख्या एक स्थान पर की है। किसी ने आपत्ति की होगी कि जुही तो वर्षा का फूल है, फिर उसे वसंत में क्यों खिला दिया? निरालाजी ने इसका समाधान करते हुए लिखा, "कविता बंगाल में लिखी गई है। वहाँ मलय पवन बहता है, यहाँ, युक्त-प्रांत में नहीं। वसंत में जुही युक्त-प्रांत में नहीं खिलती, ग्रीष्म-वर्षा में खिलती है। बंगाल में ऋतु कुछ पहले आती है।" कुछ भी हो, कविता पढ़ते समय पाठक का ध्यान ऋतु-सम्बन्धी दोष की ओर जाता ही नहीं, यद्यपि फूलों के वर्णन में इस बात का ध्यान सदैव रखना चाहिए कि वे किस ऋतु में खिलते हैं। ऐसी भूलें और भी छायावादी कवियों से हुई हैं। दूसरी बात निरालाजी ने इसके संबंध में यह कही है—"उत्कृष्ट कला का एक उदाहरण 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की काव्य में उतारी हुई यह तस्वीर है या नहीं, परीक्षा करें? यहाँ 'सुप्ति' तम और 'प्रिय परिचय' ज्योति है।" हमारा स्पष्ट मत है कि कविता को बार-बार पढ़ने पर भी उससे यह आशय व्यंजित नहीं होता कि जुही के प्रसंग में निद्रा अज्ञान और जगना ज्ञान का प्रतीक है। तरुणियों का सोना और जगना दोनों ही आनन्द के दो रूप हैं। यह ठीक है कि कवि से अधिक उसके काव्य के आशय को दूसरा व्यक्ति नहीं समझता; पर हमारी दृष्टि से निरालाजी का यह अनुबोध मात्र है। इसमें ऊर्ध्वमुखी चेतना की कोई बात प्रतीत नहीं होती, यद्यपि इतना हम भी स्वीकार करेंगे कि उत्कृष्ट कोटि की यह एक ऐसी चित्रमयी रचना है जिसकी एक-एक रेखा सजीव है, एक-एक रंग खिलता हुआ।

'शेफालिका' भी प्रकृति के क्षेत्र में एक वासना-प्रधान रचना है। इसकी प्रेरणा 'जुही की कली' वाली रचना से ही मिली प्रतीत होती है, क्योंकि दोनों में कुछ बातों की समानता है। दोनों ही पत्रांक पर सोती हैं, दोनों ही रस-भोग के योग्य अवस्था वाली हैं, दोनों ही का यौवन उभार पर है—शेफालिका का जुही से कुछ अधिक, क्योंकि उसकी तो चोली के बंद तक खुल-खुल जाते हैं। दोनों के कपोलों पर कवि की दृष्टि है—एक के कपोल मसल दिए जाते हैं, दूसरी के कपोलों पर न जाने कितने मधुर चुंबन अंकित होते हैं। एक का प्रेमी पवन है, दूसरी का गगन। एक के साथ केवल काम-क्रीड़ा का उल्लेख है—यद्यपि उसमें तृप्ति भी सम्मिलित है; दूसरी तृप्त-काम होकर विदा लेती है। यौन-भावना 'जुही' की अपेक्षा 'शेफालिका' वाली रचना में अधिक मुखरित है।

'वन-वेला' एक काव्य-कथा है। इसके प्रारंभ में कवि ने ग्रीष्म के ताप और आँधी का सुन्दर वर्णन किया है। यहाँ आतप के समावेश की दुहरी सार्थकता है—पहली यह कि वह कवि के जीवन से मेल खाता है; जैसे धरती, वैसे ही वह भी दुःख के ताप से विकल है—कवि जीवन के श्रम से आकुल होकर ही नदी किनारे टहलने जाता है; दूसरे, जिस वन-वेला की वह चर्चा करने जा रहा है, वह निदाघ में ही खिलती है। जीवन की असफलता के कारण कवि के मन में हताश-भावना का जन्म

होता है। हताश-भावना निराशा से कुछ भिन्न होती है। वह मनुष्य को दबा देती है। व्यक्ति को वह काल्पनिक तो बना सकती है; पर विद्रोह की ओर नहीं ले जाती। यहाँ भी यही हुआ है। कवि में विद्रोह का भाव नहीं जगता। वह कल्पनाशील हो जाता है। इस कल्पना में उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ उड़ा फिरता है। यदि मैं राजपुत्र होता या मेरे पिता देश की रानीति को प्रभावित करने वाले कोई पूँजीपति ही होते! मेरी शिक्षा यदि विदेश में हुई होती तो वायुयान से भारत-भूमि पर उतरते ही मेरा कितना सम्मान हुआ होता! सब पत्रों में मेरे चित्र प्रकाशित होते और ऐसा क्या था जो देश के पत्रकार मेरी प्रशंसा में न लिखते! हताश-भावना से उत्पन्न कल्पना प्रायः ऐसी ही तुलनाओं की ओर ले जाती है। तुलना इस बात में है कि एक मैं हूँ कवि—जिसने जीवन-भर साधना की और बदले में कुछ भी नहीं पाया और दूसरी ओर ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने अपनी परिस्थिति से लाभ उठाकर सब-कुछ हस्तगत कर लिया है। बहुत स्पष्ट लिखने और 'हिन्दी-सम्मेलन' पर छींटा फेंकने से यह व्यंग्य कुछ व्यक्तिगत हो गया है, यद्यपि नाम इसमें किसी का नहीं लिया गया।

निरालाजी के प्रति न्याय करने के लिए हम इतना अवश्य कहेंगे कि इसमें ईर्ष्या की गंध हमें नहीं दिखाई देती, यद्यपि हम यह भी कहने के लिए विवश हैं कि यह आक्षेप असंगत है। दूसरी ओर की असाधारण सफलता के पीछे जो सत्य निहित है, उसे उन्होंने दबा दिया है जैसा कि व्यंग्य में आक्रमण करते समय प्रायः होता है।

इसके उपरांत कहानी एक नया मोड़ लेती है। वह मोड़ बहुत महत्त्वपूर्ण है। ग्रीष्म के वर्णन के पश्चात् एकदम इस तुलना पर आने के कारण सामान्य पाठक यह सोच ही नहीं पाता कि आगे क्या होगा।

इस चिंतन में तीसरा प्रहर व्यतीत हो जाता है और संध्या की लालिमा चारों ओर फैल जाती है। कवि को लगता है जैसे प्रेयसी की केशराशि से फूटी गंध उसे मुग्ध कर गयी हो। लेकिन वह तो अकेला ही टहलने आया है, फिर यह गंध आयी तो कहाँ से आयी? ठीक इसी समय वह चकित होकर देखता है—पास में वन-वेला खिली हुई है—वेला जो ग्रीष्म में सिर उठाकर खड़ी रहती है और मुरझाने के स्थान पर आसपास सुषमा बिखेरती है। वह उससे प्रश्न करता है: जहाँ किसी की दृष्टि न पड़ सके, ऐसे वन में खिलने से क्या लाभ है, वेला? भला, यहाँ गंध विकीर्ण करने से जीवन की कौन-सी सार्थकता सिद्ध होती है? सहसा कोयल कूकती है, पपीहा पुकारता है, तारे निकल आते हैं। वेला बहुत सीधा-सा उत्तर देती है: तुम अब तक लौकिक वैभव की दृष्टि से सोचते रहे हो, आत्मा के आनंद की दृष्टि से नहीं। भौतिक सुख और आत्मिक सुख का विरोध है। बाहर की वस्तुओं की चमक के प्रति व्यक्ति का आकर्षण ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों आत्मा की आभा मलिन पड़ने लगती है। जो कलाकार है, उसे संसार से अधिक आत्मा को महत्त्व देना चाहिए। जीवन में झूठी मान्यताओं को प्रश्रय मिल गया है। सम्मान को मूल्य के रूप में स्वीकार करने पर छोटे-बड़े का अंतर दिखाई देता है; पर ज्ञान की दृष्टि से सब समान हैं। वन में हम सब एक-दूसरे को अपना सुहृद समझते हैं। कवि की समझ में यह बात आ जाती

है और वह शांत मन से अपने निवास-स्थान को लौट जाता है। दूसरे दिन प्रभात-काल में जब वह घर से फिर निकलता है तो देखता है कि एक ब्राह्मण डाल झुका-कर पूजा के लिए उसी फूल को तोड़ रहा है। बेला जैसे कह रही है— देखो, मैं देवता के चरणों पर अर्पित होने जा रही हूँ—पूरी खिलने के उपरांत, संतुष्ट-भाव से। अब बतलाओ, जीवन की सार्थकता वाले तुम्हारे प्रश्न का उत्तर हुआ या नहीं ?

'वन-बेला' अंततः एक उद्बोधन-प्रगीत है जिसमें लौकिक और आत्मिक मूल्यों के तुलनात्मक महत्त्व का प्रश्न उठाया गया है। कवि का अंतिम झुकाव आत्मिक मूल्यों की ओर है। कविता के अंत में उसकी विषाद की वृत्ति मिट जाती है और वह अपने अंतर्द्वन्द्व का उत्तर जैसे पा लेता है। अवसाद की ऐसी मनोवृत्ति और कवियों को भी घेरती है। इस मनोवृत्ति ने पंतजी को 'अतिमा' की 'संदेश' शीर्षक रचना में घेरा है। दोनों ही अपने ढंग की सफल रचनाएँ हैं।

'नर्गिस' शीर्षक रचना भी तुलनात्मक मूल्यों का प्रश्न उठाती है। इसमें धरती की नर्गिस से आकाश की ज्योत्स्ना की तुलना की गयी है। प्रश्न यह है कि जो आकाश से उतरकर धरती पर छा जाए वह अधिक सुन्दर है अथवा जो धरती के अंध-कार को चीरकर अपनी गंध से आकाश को परिपूरित कर दे वह ? नर्गिस वसंत का फूल है और चाँदनी के समान ही श्वेत है। शारीरिक सौन्दर्य की दृष्टि से वह उससे कम नहीं। वह अंधकार से संघर्ष करती हुई गंध का दान देती है—नीचे से ऊपर उठती है। इस दृष्टि में वह चाँदनी की तुलना में अधिक स्वर्गीय है। स्वभावतः कवि नर्गिस के पक्ष में है। यहाँ भी बाह्य सौन्दर्य की तुलना में आंतरिक सौन्दर्य एवं भौतिक मूल्यों की अपेक्षा आत्मिक मूल्यों को अधिक महत्त्व दिया गया है।

जुही, शेफालिका, वन-बेला और नर्गिस चारों रचनाएँ काव्य-कथाएँ हैं, अर्थात् इनमें कहानी का पुट है। प्रमुखता कहानी की नहीं, भाव या संकेत की है। कहानी का सहारा वहीं तक लिया गया है, जहाँ तक वह कवि के किसी आशय को व्यंजित कर सके। फूलों की यों सभी क्रियाएँ सूक्ष्म होती हैं, फिर भी जुही और शेफालिका में शारीरिक सुख व्यंग्य है, बेला और नर्गिस में आत्मिक उल्लास। चारों में ही संध्या अथवा रात के वातावरण का चित्रण है। इससे वे रचनाएँ अधिक कलात्मक हो गयी हैं। वातावरण इन रचनाओं का प्राण है। कवि हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है; अतः मूल रूप में ये रचनाएँ कोमल-भावापन्न हैं। पर पाठक की दृष्टि स्थूल संकेतों पर कुछ-न-कुछ उलझती ही है और वह बीच-बीच में उस लौकिक सुख का भी अनुभव करता है जो रति की विभिन्न भूमिकाओं में स्थूल इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए इन पंक्तियों को लीजिए—

(१) **वर्ष का प्रथम**
पृथ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरुपम।

—वन-बेला

(२) बंद कंचुकी के सब खोल दिए प्यार से
यौवन-उभार ने
पल्लव-पर्यंक पर सोती शेफालि के ।

—शेफालिका

(३) निर्दय उस नायक ने,
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिए गोरे कपोल गोल ।

—जुही की कली

प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से दो रम्य स्थानों—चित्रकूट और कैलाश—का वर्णन निरालाजी ने किया है। दोनों रचनाएँ 'नये पत्ते' में संगृहीत हैं। चित्रकूट वाली रचना का शीर्षक है—स्फटिक शिला।

इस रचना में निरालाजी अपने मित्र रामलाल के साथ चित्रकूट-दर्शन को जाते हैं। रामलाल काल्पनिक नहीं, वास्तविक नाम है। निरालाजी इन्हें अपना मित्र मानते थे और इनके यहाँ कुछ दिन रहे थे। कर्वी से लेकर चित्रकूट तक की यह यात्रा बैलगाड़ी से होती है। गाड़ी में दो बैल हैं। एक का नाम साँवलिया, दूसरे का धौला। धौला गरियार है। बायीं ओर जुता हुआ है। वह बहुत धीरे-धीरे चलता है और गाड़ी को मुख्य मार्ग से लेकर प्रायः बायीं दिशा में मोड़ देता है। वह कभी जुआ उतारकर खड़ा हो जाता है, कभी गाड़ी को दलदल में फँसा देता है, गाँव के बीच से निकलता है तो किसी का कच्चा चबूतरा तोड़ देता है। बैलगाड़ी का ऐसा रोचक वर्णन कविता में शायद ही कहीं पाया जाता हो। सारे रास्ते जैसे गाड़ी के पहिए घूमते दिखाई देते हैं।

इस यात्रा-वर्णन की दूसरी विशेषता यह है कि दर्शनीय स्थानों और ध्यान आकर्षित करने वाली वस्तुओं का उल्लेख भी हो गया है और कहीं ऊब उत्पन्न नहीं होती। क़िलों में पेशवा के क़िले, पहाड़ों में कामदगिरि और पंचकोसी, गाँवों में कर्वी, नयागाँव और सीतापुर, नदियों में पयस्विनी, मंदाकिनी और गुप्त गोदावरी, जलाधारों में जानकीकुंड, भरतकूप और हनुमद्धारा, वनों में प्रमोद वन, आश्रमों में अत्रि-अनुसूया-आश्रम का उल्लेख ऐसा ही है। इसके अतिरिक्त वृक्षों में आम, बबूल, अर्जुन; पशु-पक्षियों में स्यार, मयूर और बंदर; साथ ही झाड़ियों, टीलों, कुटियाओं और गुफ़ाओं आदि की चर्चा कर उस अंचल के वर्णन को प्रामाणिकता प्रदान की गयी है। बघेल-खंड की भयंकर प्रकृति का यह वर्णन देखिए—

साँप बड़े जहरीले, टीलों पर रहते हैं,
बिच्छू, लकड़बग्घे, रीछ, चीते यहाँ रहते हैं;
पेड़ों पर बिचखोपड़।
चिरौंजी, बहेड़ा, हड़
और पेड़ बड़े-बड़े,
जंगल के जंगल खड़े

बड़े बाघ और दूर रहते हैं,
पानी पीने रात को आते हैं, लोग कहते हैं,
या शिकार के लिए,
या कि भूले-भटके।

प्रकृति के इस भयावने दृश्य के उपरांत ही मंदाकिनी के किनारे स्फटिक-शिला की रम्यता का अपना महत्त्व है। स्फटिक-शिला की मनोरमता को एक सद्यःस्नाता के वर्णन से निरालाजी ने चौगुना कर दिया है। वर्णन बहुत खुला हुआ, नुकीला और रसभीना है; अतः मन को मरोड़कर रख देता है। इस वर्णन को उत्तेजक भी कहा जा सकता है; पर कवि ने उस रमणी में सीता की कल्पना कर वासना के डंक को तोड़कर रख दिया है, जैसे विषैले सर्प के हुंकारते फण को किसी ने मंत्र मारकर झुका दिया हो। देखिए—

खड़ा हुआ स्फटिक-शिला मैं देखता ही रहा।
आँख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहाकर,
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्ट तन, दुष्ट मन को मरोड़कर,
आयत दृगों का मुख खुला हुआ छोड़कर।
बदन कहीं से नहीं काँपता।
कुछ भी संकोच नहीं ढाँपता।
वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर।
मेरा मन काँप उठा, याद आई जानकी।
कहा, तुम राम की,
कैसे दिए हैं दर्शन !

स्पष्ट है कि अपनी भावना के कारण ऐसा वर्णन तुलसी और मैथिलीशरण गुप्त नहीं कर सकते थे।

'कैलाश में शरत्' निराला के मानसिक विकार को सिद्ध करने वाली रचना है। यह यात्रा भौगोलिक दृष्टि से ग़लत है। निरालाजी ने इसमें काश्मीर को अफ़ग़ानिस्तान के आगे बतलाया है। लेकिन रचना १९४६ के पूर्व की है और उस समय तक उनमें विक्षिप्तावस्था का कोई चिह्न नहीं पाया जाता। जीवन के अंत तक उनकी और भी किसी रचना से पागलपन की कोई बात सिद्ध नहीं होती; अतः इसके दूसरे कारण की खोज करनी होगी। लगता ऐसा है कि निराला ने जान-बूझकर ऐसी एक रचना अपनी कृतियों में रख दी है। रचना काल्पनिक है और यह उस मानसिक स्थिति की परिचायक है जब मनुष्य को कल्पना की उड़ान में कोई भी बात असंभव नहीं लगती, जब कहीं की चीज़ और कहीं दिखाई देने लगती है, जहाँ कुछ का कुछ प्रतीत होता है। पहली बात यह कि निराला ने इसमें अतीत और वर्तमान

के अंतर को मिटा दिया है। रचना के प्रारम्भ में ही लिखा है कि इस यात्रा में स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहंस की सहधर्मिणी श्रीमती माताजी, स्वामीजी के शिष्य तथा कई राजपुरुष भी उनके साथ थे। यह बात स्पष्टत: असंभव है; लेकिन क्योंकि विवेकानन्द, मिशन के लोग और राजपुरुष निरालाजी की कल्पना में बराबर चक्कर काटते रहते थे; अतः यह उल्लेख अकारण नहीं है। यह यात्रा-दल अफ़ग़ानिस्तान तक घोड़ों पर जाता है; फिर पहाड़ी बकरों पर। तातारी पथ-दर्शक वहाँ रम्य स्थल उन्हें दिखाते हैं। कैलाश की स्थिति उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के आगे मानी है। इसे वहाँ के लोग कैलाश न कहकर केवल 'कैला' कहते हैं। कैला की चोटी निरालाजी की दृष्टि में एवरेस्ट और कंचनजंघा से भी श्रेष्ठतर है। बहुत संभव है कभी किसी ने निरालाजी से कह दिया हो कि अफ़ग़ानिस्तान की दिशा में भी एक कैलाश है और यह बात उनकी स्मृति में रह गयी हो। इस कैलाश की चोटी में दुर्गा का भान होता है। उसके चरणों में एक ताल है—राक्षसताल—जो महिषासुर का प्रतीक है। इसके आगे मानसरोवर है। निरालाजी मेष-मांस का भोजन करके इस सरोवर में नौका-विहार करते हैं। वहाँ गायन-वादन चलता है। निराला मांस और संगीत दोनों के प्रेमी थे ही; अतः अपने साथ बंगाली संन्यासियों को भी मांस खिला दिया है। रचना पूरी काल्पनिक है।

स्थानों का व्यतिक्रम होने पर भी प्रकृति-वर्णन इनका वैसा ही रम्य है, जैसा अन्य रचनाओं का—

> **गिरि के पद-मूल में**
> **कोटि-कोटि फूल खिले**
> **रश्मि के रंगों के**
> **मुख्यत: पीत-नील**
> **अतिशय सौरभ उनमें।**
> **किश्तियाँ डाली गईं**
> **उन पर चढ़कर हम**
> **मानसर पर चले।**
> **इंदीवर करोड़ों,**
> **करोड़ों अन्य कमल, कोकनद, शतदल**
> **ऐसी सुगन्ध की मदिरा न फिर मिली।**
> **उन्मद विहार किया।**

इतना होने पर भी इस रचना की सृजन-प्रक्रिया की खोज मनोविज्ञान का काम है।

निरालाजी बहुत दिनों तक बंगाल में रहे थे; अतः प्रकृति-वर्णन में वहाँ का प्रभाव कहीं-कहीं लक्षित होता है। बंगाल की भूमि का आकर्षण कहीं-कहीं स्पष्ट रूप से भी अंकित है, जैसे 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज' वाली रचना में। स्वामी प्रेमानन्द का स्वागत एक बार महिषादल राज्य के कर्मचारी करते हैं—खुले मैदान में।

उस अभिनन्दन में गाँव की प्रजा भी सम्मिलित होती है। निरालाजी उस वातावरण का चित्रण करते हुए लिखते हैं—

आमों की मंजरी पर
उतर चुका है वसंत
मंजु गुंज भौंरों की
बौरों से आती हुई
शीत वायु ढो रही है।
नारियल फले हुए,
पुष्करिणी के किनारे
दोहरी कतारों में।
खेलती हैं मछलियाँ,
पानी की सतह पर
पूँछ पलटती हुई।
वहीं गंधराज, बकुल
बेला, जुही, हरसिंगार,
केतकी, कनेर, कुंद,
चंपा लगे हुए हैं—
कोनों में बाँसों के झाड़, कहीं-कहीं इमली,
इंगुदी, कपास, नीम
मध्यवित्त गृहों के वासगृहों के पीछे।
दूर-दूर आस-पास गाँव के आवास हैं
ऊँचे भू खंडों पर।
नीची-नीची ज़मीं में
जमता है जहाँ पानी,
धान कट चुके हैं अगहन के, देर हुई,
किंतु वैसी ज़मीं में अभी तक कुछ नमी है।

निराला की कृतियों में प्रकृति के प्रति दुहरा आकर्षण पाया जाता है—एक ऐसा जहाँ प्रकृति के तत्त्व एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हैं जैसे रात दिन के प्रति, जल पृथ्वी के प्रति, किरण लहर के प्रति, लहर कमल के प्रति। अन्य कृतियों से 'अनामिका' में यह प्रवृत्ति अधिक मुखर हो उठी है। कहीं-कहीं इस आकर्षण में ऐन्द्रियता का भी पुट पाया जाता है, जैसे चन्द्रमा और धरती के इस मिलन में—

वक्ष पर धरा के जब
तिमिर का भार गुरु
पीड़ित करता है प्राण,
आते शशांक तब हृदय पर आप ही,
चुम्बन-मधु ज्योति का, अन्धकार हर लेता।

दूसरा आकर्षण है व्यक्ति का प्रकृति के प्रति। सृष्टि के आदि-काल से व्यक्ति व्यापक प्रकृति के सम्पर्क में रहा है; अतः यह आकर्षण कभी निःशेष हो जायेगा, ऐसी तो कल्पना करना ही व्यर्थ है। वह झोंपड़ी से लेकर प्रसाद तक में रह चुका है, फिर भी वह फूलों को प्यार करना नहीं भूला है। जीवन की व्यस्तता में भी वह सूर्योदय और सूर्यास्त के लिए तरसता है। पर्वत और समुद्र के निकट वह अब भी दौड़कर पहुँचना चाहता है। कला, शिल्प और संस्कृति के विकास के साथ जीवन के सारे बंधन उसे कभी-कभी बहुत अखरते हैं और वह विराट् प्रकृति को उसी ललकभरी दृष्टि से देखता है जैसे कोई किसी रमणी को देखता हो। गीत को इन पंक्तियों में निराला की स्वतन्त्र आत्मा की छटपटाहट देखिये—

मैं रहूँगा न गृह के भीतर,
जीवन में रे मृत्यु के विवर,
पृथ्वी का लहराता सुन्दर
दुकूल सस्वर आकर्षण भर···

यह समझना भूल की बात होगी कि प्रकृति और व्यक्तियों के सीधे एवं यथा-तथ्य वर्णन प्रभावशाली नहीं होते। रचनाओं की सरलता ही कभी-कभी उनकी सबसे बड़ी शक्ति होती है। वर्णन की प्रभविष्णुता कल्पना एवं अलंकरण पर इतनी निर्भर नहीं करती, जितनी राग-तत्त्व पर। इन पंक्तियों को देखिए जिनमें मानव-जीवन के चित्र प्रकृति के चित्रों के साथ ऐसे गुंथे हुए हैं कि मानव को प्रकृति से पृथक् किया ही नहीं जा सकता—

(१)
बहुत दिनों बाद खुला आसमान,—
निकली है धूप, हुआ खुश जहान।
दिखीं दिशाएँ, झलके पेड़,
चरने को चले ढोर—गाय, भैंस-भेड़,
खेलने लगे लड़के छेड़-छेड़—
लड़कियाँ घरों को कर भासमान।

—अनामिका

(२)
पीपल की डाल पर
कूक रही है कोयल, माल पर
बैलगाड़ी चली ही जा रही है।
नीम फली है, खुशबू आ रही है,
डालों से छन-छन कर राह पर
किरनें पड़ रही हैं, बाह पर
बाह किये जा रहा है खेत में
दाहिनी तरफ किसान, रेत में
बाईं तरफ चिड़ियाँ कुछ बैठी हैं,
खुली जड़ें सिरसे की ऐंठी हैं।

—अणिमा

अपने दो काव्य-ग्रंथों में निरालाजी ने प्रकृति के विशिष्ट रूपों को प्रस्तुत किया है। प्रकृति वहाँ एक उच्चतर उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रयुक्त हुई है। इनमें पहला ग्रंथ हैं 'तुलसीदास', दूसरा 'कुकुरमुत्ता'।

'तुलसीदास' एक सांस्कृतिक रचना है। इसमें हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति के टकराव की चर्चा है। कवि ने मुस्लिम संस्कृति को विदेशी और हिन्दू संस्कृति को भारतीय मानकर, राष्ट्रीय संस्कृति को मुक्त करने का प्रयत्न किया है। मुक्ति के दूत हैं तुलसीदास। उनके अंतर्द्वन्द्व को व्यक्त करने के लिए कवि ने अनेक रूपकों की सृष्टि की है।

पहला रूपक है मुस्लिम-संस्कृति द्वारा हिन्दू-संस्कृति के ग्रसित होने का। मुग़लों का वैभव उन्नति के सोपानों पर चढ़ता चला जा रहा है। स्वभावतः हिन्दू-गौरव का सांध्य-काल उपस्थित हो गया है। कवि ने इस रूपक को काफ़ी दूर तक निभाया है। इसमें भारतवर्ष आकाश के समान हैं, हिन्दू-संस्कृति संध्याकालीन निष्प्रभ सूर्य के समान, मुस्लिम सभ्यता उगते चंद्रमा जैसी। मुग़लों के दल बादलों के समान घिरकर दुःख के वज्र गिरा रहे हैं। अंधकार को घिरा देखकर हिन्दू-जाति के जीवन के जल में प्राणों के शतदल मुँद गए हैं। एक दूसरे स्थान पर इन संस्कृतियों की तुलना सूर्य और राहु के रूप में भी की गयी है।

बाह्य दृष्टि से मुग़लों के शासन-काल में शांति स्थापित थी। इसका आभास देने के लिए कवि ने केवल चंद्रमा को अलग लेकर दूसरा रूपक खड़ा किया है। वहाँ गगन में चाँदनी के फैलने, समीर के बहने, कुमुदों के खिलने और शीतलता के व्याप्त होने के साथ नदी के जल पर ज्योत्स्ना का प्रभाव अंकित किया गया है। यह दूसरी बात है कि नदी की एक ही ध्वनि किसी को 'कल-कल' के रूप में सुनायी पड़ती है किसी को 'छल-छल' के रूप में।

एक दिन तुलसीदास चित्रकूट-यात्रा को जाते हैं। वहाँ प्रकृति इस वस्तु-स्थिति का आभास उन्हें देती है। उन्हें लगता है सूर्य केवल जलाता है, वर्षा केवल कीच उत्पन्न करती है, आँधी केवल धूल बिछा जाती है। इसके अतिरिक्त जिधर देखिए, उधर झाड़ियाँ हैं, काँटे हैं।

बाहर और भीतर के इस अंधकार को देखकर वे अपनी आँखें मींच लेते हैं। सौभाग्य से इस तम में एक तारिका उदित होती है। वह कवि की पत्नी रत्नावली है। रत्नावली एक प्रतीक है—प्रकृति का। वस्तुओं का बदलना उसका वस्त्र बदलना है, नील नभ उसकी अलकें हैं, चंद्रमा उसका आनन, गिरिवर उसके उरोज, सरिताएँ दुग्ध की धाराएँ।

तुलसीदास जब घर की ओर लौटते हैं या यह कहिए कि उनकी अंतर्मुखी चेतना जब बाह्यमुखी होती है तो सारी सृष्टि ही उन्हें परिवर्तित प्रतीत होती है। प्रकृति का संदेश अपनी पत्नी के माध्यम से उन्हें मिल चुका है। किसी को संदेह न रह जाय, इसी से निरालाजी ने इस रचना के अंत में कवि की पत्नी की उपमा एक साथ सरस्वती और लक्ष्मी से दी है। ये दोनों विद्या और वैभव की देवियाँ हैं।

कृति का प्रारंभ संध्या के घिरते अंधकार से हुआ है और अन्त प्रभात के आलोक के साथ। यह मानो पार्थिव ऐश्वर्य पर दैवी भाव की विजय है। निराला कृत 'तुलसीदास' में प्रकृति के कल्याणकारी रूप की तुलना हम पंतजी की 'ज्योत्स्ना' नाटिका की प्रकृति से कर सकते हैं। दोनों की सांस्कृतिक दृष्टि अत्यंत आलोक-मयी है।

प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से 'कुकुरमुत्ता' एक साधारण रचना है। इसमें कुकुर-मुत्ता की तुलना में गुलाब को हेय सिद्ध किया गया है। सौंदर्य के प्रति ऐसा ही दृष्टिकोण एक दिन पंतजी का भी हो गया था। 'ताज' शीर्षक रचना इसका प्रमाण है।

नवाब के उद्यान का वर्णन बहुत चलताऊ ढंग का है। वहाँ केवल फूलों और फलों के नाम गिनाए गए हैं। इस प्रवृत्ति की तुलना पंतजी की ग्राम्या में रक्षित 'सौंदर्य कला' शीर्षक रचना से की जा सकती है। वहाँ उन्होंने भी इसी प्रकार फूलों के नाम गिनाए हैं। निरालाजी का वर्णन देखिए—

फलों के पौधे वहाँ—
लगे कैसे खुशनुमा;
बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी,
जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी,
चंपा, गुलमेंहदी, गुलखैरू, गुलअब्बास,
गेंदा, गुलदाउदी, निवाड़ी, गंधराज,—
फलों के पेड़ थे—
आम, लीची, फालसे, संतरे के।

कुकुरमुत्ते के लिए जो उपमान ढूँढ़े गए हैं, वे बड़े 'क्रूड' हैं। कुकुरमुत्ता उन्हें एक साथ तराजू का पल्ला, मथानी, छाता, धनुष, सुदर्शन-चक्र, हल, नाव का तला, पैराशूट और पिरेमिड दिखाई देता है। यह बहुत संभव है कि निरालाजी ने जान-बूझकर ये अप्रस्तुत जुटाए हों। प्रकृति के प्रति इस अपरिष्कृत रुचि के दो कारण हैं। पहला तो यह कि कुकुरमुत्ता एक व्यंग्य-परक रचना है, दूसरे यह कविता प्रगतिशील दृष्टि-कोण से लिखी गयी है। यही कारण है कि अंत में कवि ने कुकुरमुत्ते का कबाब तैयार कर नवाब की लड़की को खिला दिया है।

प्रकृति के सौंदर्य के प्रति निराला की यह स्थायी वृत्ति नहीं है। एक हवा कहीं से उड़ती हुई आयी थी जो उन्हें छूकर न जाने किस दिशा को बह गयी।

निराला का गीतिकाव्य

रामखेलावन पाण्डेय

गीतिकाव्य की अनिवार्य प्रकृति का सम्बन्ध कवि की अन्तर्वृत्ति, आकांक्षा और रागात्मक आवेश की चेतनागत अन्विति से है। कवि अपनी रागात्मक अनुभूति एवं कल्पना के द्वारा वस्तु को भावात्मक बना देता है। वस्तु की निरपेक्ष स्थिति अथवा अपेक्षा जीवन में महत्त्वपूर्ण नहीं; उसका महत्त्व आवश्यकता-पूर्ति की साकांक्ष संभावना में है। अनुभूत भावना का सौन्दर्यगत संगीतात्मक विधान काव्य का उद्देश्य है। गीति-काव्य में भावना, सौंदर्य और संगीत के संतुलित समन्वय की सहज अभिव्यक्ति अपेक्षित है। इस दृष्टिकोण से गीति-काव्य अधिक काव्यात्मक है। गीति-काव्य का कवि विषय से अनुभूति की ओर नहीं बल्कि अनुभूति से विषय की ओर आता है। सम्पूर्ण सृष्टि में अनेकानेक विषय बिखरे पड़े हैं, प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में अनेक मनोरम चित्र फैले हैं, अन्तर्लोक में विचारों और भावनाओं की ज्योति जागरित है, कवि उनकी ओर आकृष्ट होता है, चेतना के क्षणों में वे एक नूतन रूप धारण कर लेते हैं। इस विस्तृत पटभूमि के किसी विशिष्ट उपकरण पर उसकी दृष्टि अटक जाती है और उसकी अन्तर्वृत्ति को अभिव्यक्ति का माध्यम मिल जाता है। कवि विषय-विशेष की ओर आकृष्ट इसलिए नहीं हुआ है कि उसमें आकृष्ट करने की शक्ति है—उसमें वस्तुगत स्थिति, सौंदर्य और आकर्षण संभव है—बल्कि संवेगपूर्ण अन्तर्वृत्ति की अभिव्यक्ति के अनुकूल वह विषय है। इस विचार से गीतिकाव्य पूर्णतया आत्मनिष्ठ है जिसमें बाह्य उत्तेजना, प्रेरणा और संक्षोभ अन्तर्वृत्ति के साथ एकाकार हो जाते हैं। गीतिकाव्य की सफलता इस एकात्मक अन्विति और इकाई में है।

गीतिकाव्य आवेश के क्षणों की सक्षम वाणी है—ऐसा आवेश जो जीवन को सप्राणता देता है, जो इस जड़त्व से बचाता है। अभ्यासगत जीवनों में ऐसे ही क्षणों का मोल है, किन्तु ऐसे क्षणों की विवेचना कवि के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और उसके विकास की विवेचना है, वैसे व्यक्तित्व की, जिसकी गीति-काव्य में अभिव्यक्ति है। जीवन की घटनाओं की भूमिका में ही व्यक्तित्व के विकास की लड़ी प्राप्त होती है। सरिता उपलों से टकराती, इतराती-उछलती, कहीं सिमटती दूबों से उलझती, किनारों को चूमती आगे बढ़ती है, कहीं पार्वत्य भूमि की कठोरता के कारण आकुल-विह्वल तीव्र

राग का वेग है, कहीं सम-भूमि का सम-स्वर है। जीवन भी कुछ इसी प्रकार उलझता-सुलझता आगे बढ़ता है, संचरण करता है, सरकता है, पर जीवन की घटनाओं के घात-प्रतिघात से उत्पन्न होने वाली क्रिया-प्रतिक्रिया उसके प्रतिबिम्ब हैं। व्यक्तित्व और चेतना के विकास का अध्ययन, परिस्थिति और संस्कार, देश और काल व्यक्तित्व को स्पष्ट रेखाएँ और सीमाएँ देते हैं। व्यक्तित्व के विकास के लिए चेतना और प्रेरणा का मूल स्रोत देखना होगा। गीति-काव्य व्यक्तित्व-प्रधान, आत्मनिष्ठ काव्य है, इस रूप में गीतिकार निराला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व और चेतना की छानबीन होनी चाहिए। ऐसे विस्तृत और पूर्ण अध्ययन का यहाँ अवसर नहीं, अतः केवल इनकी ओर संकेत मात्र से ही संतोष करना पड़ेगा।

निराला निश्चित रूप में एक विशिष्ट मनोवैज्ञानिक 'टाइप' हैं। यह सत्य है कि व्यक्तित्व की स्पष्टता इसी विशिष्टता में है; यह भी सत्य है कि प्रत्येक कवि शब्द को सार्थक करने वाले व्यक्ति में यह वैशिष्ट्य किसी-न-किसी मात्रा में रहता है, किन्तु निराला का यह वैशिष्ट्य निजीपन के साथ है और समसामयिक प्रवाह से अनेक अंशों में विच्छिन्न और विभिन्न है। निराला की चेतना वस्तुनिष्ठता का मात्र स्पर्श भर करती है, वह उससे आविल नहीं होती। निराला की प्रतिभा 'कुकुरमुत्ता' की भाँति अपने-आप जगी जिसे 'गुलाब' जैसी सावधानी, खातिरदारी नहीं मिली। कहा जाता है 'कठिनाइयाँ मनुष्य को बनाती या बिगाड़ती हैं, (Hardships make or break people), किन्तु परिस्थितिगत विशेषताएँ इस प्रातिभ ज्योति को मलिन न कर सकीं। जीवन की कठोर वास्तविकता, कठिन संघर्ष ने उदग्र कर्मठता दी और वेदान्त-ज्ञान ने निस्संगता और निर्लिप्तता, किन्तु यह निर्लेप-भावना वैसी नहीं जो आत्म-हनन से आत्म-हत्या की ओर बढ़ती है। इस प्रकार की परिस्थिति-विशेष में पलने वाला व्यक्ति अन्तर्मुख (introvert) हो उठता है। वेदान्त 'जगन्मिथ्या' की शिक्षा देता है, किन्तु 'एकमेवाद्वितीयम्' द्वारा सृष्टि की मूलसत्ता की ओर संकेत करता है। इस प्रकार 'जगन्मिथ्या' के कारण उत्पन्न निराशा के लिए सारभूत मूल सत्ता की इकाई द्वारा विश्वास और आशा का सन्देश भी। वेदान्त के अध्ययन ने जगत् और जीवन की विषमता के प्रति निस्संगता और असंलग्नता निराला को दी। निराला जीवन-संघर्ष से भागते नहीं, मात्र उससे अनाविल और असंलग्न हैं—

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ, आज जो नहीं कही!

अन्तर्मुख अपने-आपमें ही अपना संसार बना लेता है—वह एक प्रकार से उस घोंघे की भाँति है जो पीठ पर ही अपना संसार ढोता चलता है। निराला में अपने व्यक्तित्व का मोह है, निजीपन की रक्षा की आकांक्षा है, अपनी प्रतिभा पर विश्वास है और अपनी रचना पर आस्था, इस प्रकार आत्म-केन्द्रित चेतना का आग्रह। महादेवी का करुण माधुर्य इतना व्यापक और गहन है कि जीवन अथवा वस्तु उसमें विलीन हो जाते हैं, उनका अपना विभिन्न अस्तित्व नहीं रह जाता, यहाँ तक कि उनका प्रिय भी सूक्ष्म, अमूर्त्त और भावगत हो उठता है। पंत में बालसुलभ औत्सुक्य और चापल्य

है । विज्ञानवेत्ता की भाँति वस्तु का विश्लेषण पंत नहीं करते, महादेवी की भाँति उसे आत्मसात् भी नहीं कर लेते, किन्तु उससे आकृष्ट अवश्य हैं, फलस्वरूप उत्सुकतापूर्ण आकर्षण के कारण निस्संगता नहीं आ पाती । निराला के लिए वस्तु अथवा विषय में आकर्षण है, कारण, अन्तर्वृत्ति से सम्बद्ध होकर वह काव्य में अभिव्यक्त होता है, किन्तु पंत जैसी चपल उत्सुकता नहीं, बल्कि संवेगपूर्ण निस्संगता है । व्यक्तित्व की इस विभिन्नता के कारण गीति-काव्य के स्वरूप में अन्तर आया है । महादेवी के गीत में करुण माधुर्य है, पंत के गीतों में सुकुमार लालित्य है और निराला में ओजस्वी लावण्य है । निराला ने पंत को एक पत्र में लिखा था—"हिन्दी में अपनी कल्पना-शक्ति के लिए ही आप बेजोड़ समझे जाते हैं और अपनी अपराजिता भाषा के लिए; इसी मौलिक सागर की ओर हिन्दी के नवयुवकों के हृदय के नदी-नद बहे हैं; वे आपसे कुछ हताश हो गये हैं; उन्हें इसी ओजस्विनी वाणी का कल्पनामृत पिलाइये ।" इन पंक्तियों में निराला ने ओजस्विता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । इस ओजस्विता का मूल कारण परिस्थितियों और रूढ़िगत संस्कार से विद्रोह है—

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदंगेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ।।

—शब्दक

किन्तु निराला का यह मूर्त्ति-तोड़क (iconoclast) विद्रोह-भावना नहीं, उसमें इतनी निस्संगता कहाँ ? बल्कि उदग्र कर्मठ का जीवन-दर्शन है, जिसके लिए पंत ने लिखा है—

छन्द-बंध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वतकारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता-धारा
मुक्त, अबाध, अमन्द, रजत निर्झर-सी निःसृत

[यहाँ निराला की वैयक्तिक आलोचना अभीष्ट नहीं जिसमें आर्थिक पृष्ठभूमि में विकसित मनोवैज्ञानिक विकास की छान-बीन की जाए; यहाँ केवल निराला के व्यक्तित्व का सांकेतिक रूप में निदर्शन ही अभीष्ट है ।]

अतः इस निस्संगता के कारण चित्रों में पूर्णता आ गयी है, क्योंकि ऐसी अवस्था में आत्मनिष्ठा का प्रभाव रहने पर भी वस्तु के देखने का अवसर मिलता है। गीति-काव्य में विषय का इतना ही महत्त्व रहता है कि कवि की जाग्रत भावना की अनुरूपता उसमें है, अतः प्रेरणा के क्षणों की स्पष्टता उसके माध्यम से प्रकट होती है । पल्लव की आलोचना करते हुए निराला ने शब्दों की चित्रमत्ता और चित्र की पूर्णता की ओर ध्यान आकृष्ट किया था । निराला के गीतों में यही चित्रमत्ता और शब्दचित्रों की पूर्णता है । शब्द का साहित्य में अन्यतम स्थान है । नाद ब्रह्मरूप में स्वीकृत है । शब्द के द्वारा ही अर्थ की भावभूमि में प्रवेश पाने का अधिकार मिलता है; अतः शब्दों की सक्षमता में ही कवि की क्षमता है । चाहे इसे साधारणीकरण कहा जाए अथवा निवेदन, अथवा प्रेषण (communication) । व्यक्तित्व की विभिन्नता के कारण प्रसाद, पंत, महादेवी और निराला के चित्रों में बड़ा अन्तर आ

गया है। महादेवी की करुण मधुर व्यापक भावना इतनी विशद है कि विषय आत्मसात् हो जाते हैं। अतः उनके चित्र विशद पटभूमि पर अंकित होते हैं और रेखाएँ सुस्पष्ट न रहकर पृष्ठभूमि में घुल-मिल जाती हैं। पंत की चपल उत्सुकता, चित्रों की रंगीनी और भी मोहक रूप से अधिक आविष्ट होती है। प्रसाद की भावना ही चित्र का रूप धरती है, अतः उसमें भी अस्पष्टता की झलक आ जाती है, किन्तु निराला के अंकित चित्रों में विशिष्ट वस्तुनिष्ठता है जो उन्हें चित्रमत्ता देती है। इस प्रकार निराला के गीतों में आत्मनिष्ठता वस्तुनिष्ठता के संयोग से अधिक सक्षम हो सकी है। इस वक्तव्य को स्पष्ट करने के लिए आधुनिक कवियों की चित्रशाला में चलना होगा—

महादेवी ने 'वसन्त-रजनी' का चित्र आँका है।

मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि
अलिगुञ्जित पद्मों की किंकिणि
भर पदगति में अलस तरंगिणि
तरल रजत की धार बहा दे,
मृदु स्मित से सजनी।
बिहँसती आ वसन्त-रजनी।

महादेवी ने अपने इस चित्र के लिए विशद भूमिका का आश्रय लिया है। पल्लवों का मर्मर संगीत वसन्त-रजनी की नूपुर ध्वनि है और सरसी के खिले पद्मों के गुञ्जरित भौंरों की रागिनी किंकिणि है। गति के कारण होने वाली झंकार में शरद्कालीन सरिता की शिथिल-तन्द्रिल झंकार है। नूपुर, किंकिणि और पदगति, केवल इनके चित्रण में महादेवी ने वनप्रान्त, सरसी में अलिगुञ्जरित पद्मवन और सरिता की मंथर गति का चित्र उपस्थित किया है। पाठक की दृष्टि एक चित्र पर जम नहीं पाती कि दूसरा चित्र उपस्थित हो जाता है। चित्र अपने-आपमें पूर्ण हैं, किन्तु इनका पारस्परिक सम्बन्ध दूरान्वित है। महादेवी के गीतों में अस्पष्टता अनेक अंशों में इसी कारण है। पंत-अंकित चित्र है—

खैंच ऐंचीला भ्रू-सुरचाप,
शैल की सुधि यों बारम्बार;
हिला हरियाली को सुदुकूल,
झुला झरनों का झलमल हार।
जलद पट से दिखला मुखचन्द्र
पलक पल-पल चपला के मार;
भग्न उर पर भूधर-सा हाय!
सुमुखि धर देता है साकार।

महादेवी के अंकित चित्र की विशदता यहाँ नहीं है, यद्यपि चित्र को विस्तार देने का प्रयास है, किन्तु हरियाली के चित्रों में एकात्मकता नहीं है। सुदुकूल, झरनों के झलमल हार, जलज-पटल से दीखने वाले मुखचन्द्र के लिए भोलापन लिये औत्सुक्य

है। चित्रमत्ता में मुखचन्द्र दिखलाना और झलमल हार झुलाना अधिक सौंदर्य अथवा सरसता नहीं देता। चित्रों में स्पष्ट रेखाएँ हैं, महादेवी की-सी अस्पष्टता नहीं—

केवल स्मितिमय चाँदनी रात,
तारा-किरनों से पुलक गात,
मधुपों मुकुलों के चले घात,
आता है चुपके मलय वात,
सपनों के बादल का दुलार।
तब दे जाता है बूँद चार।

—प्रसाद

प्रसाद के इस गीत में 'वासन्ती रजनी' का चित्र है। महादेवी की 'मर्मर नूपुर ध्वनि' नहीं है और न है 'अलि-गुञ्जित पद्मों की किंकिणि' बल्कि 'स्मितिमय चाँदनी रात' में 'मधुप और मुकुल' के चलनेवाले 'घात' हैं। जीवन के सपने—आकांक्षाएँ आँखों में ओस की बूँदें ढलका जाती हैं। जीवन के सपने कवि की अन्तर्वृत्ति के परिचायक हैं जिसका चित्र वह प्रकृति के प्रांगण में देखता है—

सखि, वसन्त आया
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय वसना नव वय लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
मधुप-वृन्द बन्दी
पिक-स्वर नभ सरसाया
लता-मुकुल-हार-गन्ध-भार भर
वही पवन मन्द-मन्द मन्दतर
जागी नयनों में बन
यौवन की माया।
आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे
स्वर्ण - शस्य - अञ्चल
पृथ्वी पर लहराया।

महादेवी में रूपकातिशयोक्ति का जो मोह है वैसा यहाँ नहीं। चित्र के उपकरण इस प्रकार संतुलित और गुम्फित हैं कि एकात्मता उनमें अन्विति और प्रभाव देती है। सरसिज, अलि, पिक, लतिका, पवन आदि वसन्त के सारे उपकरण एक लड़ी में पिरोये दीख पड़ते हैं।

गीतिकाव्य भावात्मक है और विषय का सम्यक् चित्र भावना को उभरने नहीं देता। फलस्वरूप गीतिकाव्यात्मकता अपने निखरे रूप में नहीं आती। निराला के काव्य-चित्रों में जो पूर्णता है उसका कारण निस्संगता ही है। भावुकता को अति-

भावुकता की सीमा में खींच ले जाने वाले के लिए इन गीतों में सरसता नहीं दीख पड़ेगी, किन्तु अतिभावुकता बुद्धि को कुंठित कर देती है। जीवन के ऊहापोह और हलचल से दो क्षणों के लिए शान्ति भले मिल जाय, जीवन की चेतना उसमें नहीं उभरती। प्रसाद की 'वासन्ती रजनी' उन सपनों की याद दिला आँखों में आँसुओं की बूंदें झलका देती है, महादेवी की इस अपरूप 'वसन्त-रजनी' में 'सुन प्रिय की पदचाप हो गयी पुलकित यह अवनी !' और यहाँ 'स्वर्ण-शस्य-अंचल पृथ्वी पर लहराया,' दोनों में पुलक है, हर्षोत्कर्ष है और संकेतात्मकता द्वारा निराला अपनी अन्तर्वृत्ति की अभिव्यक्ति करते हैं।

इस निस्संगता ने जहाँ वस्तुगत स्थिति को स्पष्ट रूप से प्रकट किया, वहाँ दृश्य के प्रति असंलग्नता दी। फलस्वरूप कवि सांसारिक नहीं, संसार का नहीं। व्यावहारिकता उसे स्पर्श नहीं कर सकती, वह बाह्य परिस्थितियों से समझौता कर घुल-मिलकर चल नहीं पाता, वह मात्र स्वप्नद्रष्टा नहीं है, वास्तविकता की कठोर भूमि पर टिकी कवि की भावना में निजत्व है, ओज है, शक्ति है। उसकी चेतना मात्र वस्तुगत नहीं रह जाती। अतः निराला विशिष्ट मनोवैज्ञानिक 'टाइप' के हैं जिनमें वस्तुनिष्ठता और आत्मनिष्ठता का नूतन समन्वय होता है, किन्तु वस्तुनिष्ठता आत्मनिष्ठता की पूरक मात्र है जो उनके जीवन को नयी चेतना और नयी प्रेरणा देती है। निराला की प्रतिभा सदा प्रयोग करती रही है। छन्द, भाव, भाषा तकनीक और माध्यम के सम्बन्ध का प्रयोग उनका सदा चलता रहा है और किसी एक क्षेत्र में वे जमकर नहीं रह सके। मूलतया निराला में मानसिक संघर्ष है, किन्तु उनका यह व्यक्तित्व जीवन की सम्पूर्णता और अन्विति के लिए प्रयोगशील है, फलस्वरूप वेदान्त की बौद्धिक चेतना से प्रबुद्ध व्यक्तित्व सौन्दर्य और प्रेम की कल्पना और चित्रण में संलग्न रहता है। कारण है 'मानवता का विकास'। मानवीय मापदण्ड से ही ब्रजभाषा की श्रृंगारिकता का प्रतिपादन निराला ने किया जिसमें विश्ववाद, चेतनवाद, वेदान्तवाद, अनन्तवाद की चेतना है। निराला के सौन्दर्य और श्रृंगारपरक गीतों में वही भावुकता और जीवन की पूर्णता के दर्शन होंगे—

नयनों के डोरे लाल गुलाल-भरे, खेली होली !
जागी रात सेज प्रिय पति-संग रति सनेह-रंग घोली
दीपित दीप-प्रकाश, कञ्ज-छवि मंजु-मंजु हँस खोली
मली मुख चुम्बन-रोली
प्रिय-कर-कठिन उरोज परस कस कसक-मसक गयी चोली,
एक वसन रह गयी मंद हँस अधर-दशन अनबोली
कली-सी काँटे की तोली
मधु-ऋतु-रात मधुर अधरों की पी मधु सुध-बुध खो ली
खुले अलक, मुँद गये पलक दल, श्रम-सुख की हद हो ली
बनी रति की छवि भोली
बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली

उठी सँभाल बाल, मुख-लट, पट, दीप बुझा हँस बोली,
रही यह एक ठिठोली।

यह सौन्दर्यपूर्ण श्रृंगारिक चित्रण सम्पूर्ण रूप में मानवीय है। 'गोपी-पीन-पयोधर-मर्दन-चंचल-कर-युगशाली' और 'प्रिय कर-कठिन-उरोज-परस कस कसक-मसक गयी चोली' में साम्य रहते हुए भी पूर्ण चित्र में एक नूतनता और विभिन्नता है। विद्यापति की सुन्दरी नायिका कामासक्त नायक की मधुर भर्त्सना करती है—

हे हरि! हे हरि! सुनिये सुवन भरि
अबन बिलास क बेरा।
गगन नखत छल से अवेकत भेल,
कोकिल करइछ फेरा॥
चकवा मोर सोर कए चुप भेल
उठिए मलिन भेल चंदा।
नगर क धेनु डगर कए संचर
कुमुदिनि बस मकरंदा।
मुख केर पान से हो रे मलिन भेल,
अवसर भल नहि मंदा।
'विद्यापति' मन ए हो न निक थिक,
जग भर करइछ निन्दा॥

इसमें असंयमित वासना का वर्णन है और निराला के उपर्युक्त गीत में श्रृंगार की अभिव्यक्ति मात्र, इसके साथ ही विद्यापति के गीत में नैतिकता के आग्रह की झलक दीख पड़ती है, जिसका अभाव निराला में है। निराला का यह सौन्दर्य-गीत पूर्णतया श्रृंगारिक होते हुए भी उसकी अतिकामुकता से मुक्त है। निराला के सौन्दर्य-पूर्ण गीतों को रवि बाबू के श्रृंगारिक गीतों की भूमिका में रखकर देखना चाहिए। रवि बाबू के गीतों में जहाँ स्त्रैण माधुर्य की कोमलता है, वहाँ निराला के गीतों में पुरुषोचित ओजमय प्रवाह। निराला ने 'पंत और पल्लव' में लिखा था—"हिन्दी की मधुरता के साथ इस समय विशेष ओज की भी ज़रूरत है।" रविबाबू के गीतों में जो पूर्णता है वही निराला में भी है। पंत में जहाँ इकाईपन, एकात्मता का अभाव है, वहाँ निराला के गीतों का प्रभाव उसकी पूर्ण अन्विति के साथ है, निराला के गीतों की श्रृंगारिकता में 'झीन वसन मँह झलकत काया' की भाँति दार्शनिकता और रहस्यमयता की अभिव्यञ्जना होती है। निराला के सौन्दर्य गीतों की विशेषता अमूर्त्त को मूर्त्त आधार से अभिव्यक्त करने में ही नहीं, बल्कि मूर्त्त से अमूर्त्त की व्यंजना में है।

सौन्दर्य के गीतों में प्रेम का उन्मेष है। 'वह रूप जगाकर उर में' की परिणति 'प्यार करती हूँ अलि' में है, 'इसलिए मुझे भी करते हैं वे प्यार' की संभावना जग सकी है। इस प्रेम-वासना में सौन्दर्य का आकर्षण है, किन्तु वासना का उच्छृङ्खल, उन्मत्त विलास नहीं। इस प्रेम-वर्णन में तुलसी-जैसा संयम है, उसमें 'घर तजौं, वन

तजौं, कहैया औ सुनैया तजौं, बातु अरु भैया तजौं पै कन्हैया नहिं तजिहौं' का उन्माद न होकर भी त्याग और संयम की भावना है—

रुके नहीं धनि, चरण घाट पर
देखा मैंने मरण बाट पर
टूट गये सब आट-ठाट घर

छायावादी युग ने सौन्दर्य को स्थूलता के घेरे से मुक्त कर छायात्मकता, भावात्मकता दी। सौन्दर्य की यह भावात्मक प्रतिक्रिया अनेक अंशों में अतिवाद के क्षेत्र में प्रवेश करने लगी। महादेवी के रूपचित्रों में जो अस्पष्टता दीख पड़ती है, वह अनेक अंशों में इसी कारण है। शब्द-झंकार और लय-रूप द्वारा छायावादी पंत के शब्दचित्रों में नूतन स्फूर्ति मिलती है। पंत पर उन फ्रांसीसी कवियों का प्रभाव दीख पड़ता है, जो शब्द-झंकार से ही भाव-मूर्ति उपस्थित करना चाहते हैं। शब्द-झंकार का अपना महत्त्व गीति-काव्य में है, किन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए कि शब्द-झंकार में पाठक अथवा कवि उलझकर बिम्ब-मूर्ति से दूर जा पड़े अथवा उसे एकदम भूल जाय। कवि की कलाकारिता उसके शब्द-चयन में ही है। कवि कलाकार इसलिए नहीं कि उसमें भावनाएँ, विचार, अनुभूति और अतृप्त वासनाएँ हैं और अभिव्यक्त करने की आकांक्षा एवं अभिव्यंजना की क्षमता है बल्कि इसलिए कि वह शब्द-शिल्पी है। काव्य श्रेष्ठ कला इसलिए है कि इसका माध्यम सुकोमल, ललित और अनेक तल-स्पर्शी है। आज के हिन्दी-कवि शब्द और शब्द-शक्ति का महत्त्व स्वीकार नहीं करते, फलस्वरूप अध-कचरे और अनर्थक साहित्य की सृष्टि होती जा रही है। शब्द अर्थ के माध्यम हैं। सौन्दर्य की कल्पना और चेतना के वाहक भी मानसिक मूर्त्त बिम्बों का साक्षात्कार कराने के साधन हैं और संवेदनशीलता के आधार, इनके साथ ही संगीत के स्वर हैं और झंकार के प्राण, इसलिए भावना की प्रबल जागृति के साथ सहज अभिव्यक्ति और स्वच्छन्दता का सरल सौन्दर्यिक प्रवाह काव्यगत चेतना की आधार-शिला है। शब्द-चित्र पूर्ण हों, उनमें सौन्दर्यगत चेतना और पूर्णता हो किन्तु नक्काशीपन नहीं हो अन्यथा कविता फूहड़ स्त्री की भाँति विरसता ही उत्पन्न करती है। डॉ० ब्रिजेज के अनुसार यह "भाषा के समस्त दूरगामी साधनों के एक बिन्दु-विशेष पर केन्द्रीकरण की शक्ति है।"[१]

कवि की सफलता और समता शब्द और अर्थ की संतुलित अभिव्यक्ति में है। अर्थाभिव्यक्ति में अक्षम शब्द अनुपयोगी है और शब्दहीन अर्थ अरूप शब्द अर्थ की

---

1. "The power of concentrating all for reaching resources of language on one point, so that a single and apparently effortless expression rejoices the asthetic imagination at the moment when it is most expectient exacting, and at the same time astonishes the intellect with a new aspect of truth."—Dr. Bridges

सीमा है और विस्तार भी। निराला के गीतों में शब्द और अर्थ का यह संतुलन है। रविबाबू के गीतों में सरस कोमलता है, महादेवी में अतिकरुण माधुर्य है, पंत की शब्द-झंकार में अपनी मधुरता है, किन्तु निराला के गीतों में कुछ ऐसा नहीं मिलता और संभवतः ऐसे सौन्दर्य और माधुर्य के आकांक्षी पाठक को निराशा ही हाथ लगेगी; किन्तु इसके स्थान में प्रौढ़ ओज और सशक्तता है। निराला ने 'पंत और पल्लव' में लिखा था—"हिन्दी की मधुरता के साथ इस समय विशेष ओज की भी ज़रूरत है," और निराला के सौन्दर्य-चित्रों और रूप-गीतों में भी यह प्रौढ़ ओजस्विता है—

मौन रही हार
प्रिय पथ पर चलता,
सब कहते श्रृंगार
कण-कण पर कंकण, प्रिय
किण्-किण् रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रंकिणी;
और मुखर पायल-स्वर करें बार-बार,—
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते श्रृंगार।

पंत के शब्द घिस-घिसाकर शालिग्राम बनकर निकलते हैं। इनके नाद सौन्दर्य में शरत्कालीन गंगा की शान्त स्नेहतरल स्निग्ध धारा है जिसमें श्रान्त-क्लान्त निश्चल-सी गति है; निराला में 'निर्बन्ध अन्धतम अगम अनर्गल बादल की रोर है', 'बाधाहीन, विराट्, विप्लव के प्लावन' की क्षिप्रगति है। शब्द आपस में टकराते बढ़ते हैं, इस टक्कर के कारण जहाँ उनकी गति में अवरोध दीख पड़ता है वहाँ प्राणवान सशक्त व्यक्तित्व का संकेत है। निराला की भाषा प्राणवन्त, सतेज और प्रबल प्रवाहमय है। निराला के नाद-सौन्दर्य और शब्द-झंकार प्रयासकृत नहीं बल्कि अचेतन मानस की रचनात्मक सृष्टि हैं।

गीतिकाव्य में रागात्मिका अनुभूति की इकाई और समत्व अपेक्षित है अन्यथा उसमें न तो संवेदनशीलता रहती है और न उससे उत्तेजना प्राप्त होती है। संध्या की धूमिल लाली, उषा की सहास मधुरिमा, अमावस्या का शिथिल अन्धकार, उगती शशिकला की चन्द्रिम मुस्कान, जीवन के हास-अश्रु कवि-चेतन को उद्वेलित करते रहते हैं और अप्रयास चेतना शब्दों की जाली बुन जाती है, गीत मुखर हो उठते हैं, वाणी स्वयं फूट पड़ती है। प्रबन्ध-काव्य में रस के विभिन्न तत्त्वों की वर्णना और व्यञ्जना, शब्द की पूर्ण शक्ति के साथ होती है। गीतिकाव्य केवल कुछ रेखाओं द्वारा चित्रों का संकेत करता है, अतः उसमें केवल एक भावना, अनुभूति अथवा मूड की व्यञ्जना हो सकती है। रस-विरोध की अर्थव्याप्ति को कुछ अधिक विस्तार देकर, यह मानना पड़ेगा कि गीतिकाव्य में यह दोष अक्षम्य है। अनुभूति और चेतना के विकास में आर्थिक, सामाजिक, वैयक्तिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक परिवेश का प्रभाव पड़ता है। साधन और अवसर की समानता के कारण प्रकृत-शक्ति-सम्पन्न

व्यक्ति भी पूर्णतया विकसित नहीं हो पाता । आर्थिक समस्याओं की पेचीदगी में पड़कर मनुष्य पिस रहा है, मानवता कराह रही है, उसकी मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध है, उसके बन्धन दिन-दिन जकड़ते जा रहे हैं । मानव-जीवन उत्पीड़ित, आक्रान्त और त्रस्त है । ऐसी विषम परिस्थिति और वातावरण मनुष्य के सहज और मुक्त विकास में बाधक हैं । कवि-चेतना पर इनका अलक्ष्य प्रभाव है । निराला के व्यक्तित्व का विकास इस भूमिका में देखना होगा । आलोचक चेतना और व्यक्तित्व के विकास की आलोचना नहीं कर सकता, कारण वह अन्यथा हो नहीं सकता । केवल इसकी जाँच ही संभव है कि उसका पूर्ण व्यक्तित्व उसमें उभर सका है अथवा नहीं ? जीवन के क्षण और उनसे उत्पन्न अनुभूति और विचार तथा तज्जनित भावनाओं की क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप में चेतना और व्यक्तित्व का विकास है ।

गीतिकाव्य में अंत:जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव के एक पहलू का सौन्दर्यपूर्ण कलात्मक चित्र होता है । गीतिकाव्य अन्तर्वृत्ति-व्यंजक और अनुभूति-प्रधान है । सूर्य की किरणें जिस प्रकार रंगीन शीशे से झाँककर उसी का रंग झलकाती हैं, उसी प्रकार कवि की अन्तर्वृत्ति नूतन संस्पर्श और भावभूमि लेकर उपस्थित होती है और व्यक्तित्व की छाप लेकर अभिव्यक्त होती है । निराला के व्यक्तित्व में तटस्थता और निस्संगता के साथ ही बौद्धिक चेतना और वेदान्त-ज्ञान की अन्विति देखी गयी है । फलस्वरूप निराला के गीत मात्र सौन्दर्य-बिम्ब और रूप-विधान ही नहीं देते, केवल भावना का मूर्त्त-अमूर्त्त-विधान ही खड़ा नहीं करते बल्कि उसके साथ बौद्धिक चेतना का समन्वय भी करते हैं । इस प्रकार निराला के गीतों में बौद्धिक चेतना और भावना का संतुलन सौन्दर्य और कला-विधान के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है । महादेवी के गीतों में यह सम्मिश्रण अपने क्षम्य रूप में अभिव्यक्त हुआ है, किन्तु बौद्धिक चेतना अनुभूति के आश्रित है, उसका अंग और आधार है और निराला में दोनों का सम्यक् सन्तुलन है; यह दूसरी बात है कि कुछ गीतों में बौद्धिकता का प्रौढ़ और प्रबल आग्रह गीति-काव्य की आत्मा के विरुद्ध पड़ता है । निराला कीट्स की भाँति 'सौन्दर्य सत्य है और सत्य सौन्दर्य' नहीं स्वीकार करते, किन्तु अनुभूति और विचार को सौन्दर्य की भूमिका में अभिव्यक्त करते हैं जिसमें सहज स्वच्छंद प्रवाह है और स्वतन्त्र बौद्धिक चेतना से सजग एवं दृढ़ व्यक्तित्व की छाप जिसके नाद-सौन्दर्य और रूपचित्र पर है । इस रूप में निराला के गीत पूर्णतया मौलिक हैं जिन पर किसी बाह्य उत्तेजना का प्रभाव नहीं । वह कवि की अन्तर्चेतना, बौद्धिकता और भावना का फल है जो उसकी विशिष्ट बुद्धि और स्वतन्त्र संवेदना का फल है । निराला के गीतों की बौद्धिकता क्या प्रयासकृत है ? चिंतन की गहराई जिस सहज रूप में अभिव्यक्त हुई है, वह सहज (intutive) दीख पड़ती है; विचारों की सूक्ष्मता वेदान्त-ग्रंथ खोलकर उसकी उक्तियों को काव्य के चौखटे में बैठाने की चेष्टा जैसी नहीं है । विचारों की सूक्ष्मता जो नितान्त अरूप नहीं, जिसकी अमूर्त्तता में मूर्त्त भावना का स्वरूप है, जिसकी उत्तेजना संस्पर्श कर झंकार उत्पन्न करती है, जिसमें सहज प्रकाशन की यह प्रवृत्ति है, उसकी चेतना अलंकार है, व्यर्थ नहीं ।

निराला की प्रकृत शक्ति उलझी और मिश्रित अनुभूति की उसकी पूरी सीमा और क्षेत्र में, साधारण उथले भावों से लेकर गंभीर आध्यात्मिक और सौन्दर्य की वासनात्मक-चित्रण-पूर्ण-भावना और सौन्दर्यात्मक कल्पना की संतुलित अभिव्यक्ति में है। चिन्तन, भावना और कल्पना का ऐसा सुन्दर संगम दुर्लभ ही होता है। निराला के प्रौढ़ गीतों में विचार ही अनुभूति हैं।

अतीत का वर्तमान के साथ गहरा सम्बन्ध है, बल्कि अतीत के आधार पर ही वर्तमान का निर्माण होता है और वर्तमान भविष्य की आधारशिला है। इतिहास की चेतनापूर्ण गति है, घटनाओं का क्रम मानवीय मापदण्ड का फल है और चेतना का विकास घटनाओं और व्यक्तियों के जीवन में प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। मानव दिक् और काल की सीमाओं से आवृत्त है। कला मनुष्य की इस मुक्ति-आकांक्षा का मूर्त्त रूप है, कलाकार 'निरवधि काल' और 'विपुला पृथ्वी' की सीमाओं के बन्धन से मुक्ति चाहता है। इस प्रकार परम्परा का विरोध क्रान्तदर्शी कवियों द्वारा होता है। युग की स्पष्ट प्रवृत्तियों की ओर कवि की दृष्टि जाती है, किन्तु उसकी पैनी दृष्टि केवल इन्हें ही नहीं देखती बल्कि अन्तर्हित मानवीय चेतना के क्षीण स्पन्दन के दर्शन करती है, कवि उस चेतना का अग्रदूत है। निराला के सहज व्यक्तित्व में अतीत और परम्परा का विद्रोह, काव्यक्षेत्र मात्र में ही नहीं, बल्कि जीवन के क्षेत्र में भी है। एक ओर छन्द-बन्धन की ललकार है, शृंगार में ओजस्विता है, भावना में बौद्धिक चेतना, शब्द में अर्थ-संयुक्त झंकार, शृंगार की छायात्मकता में रेखा-पूर्णता है और दूसरी ओर मानवता के प्रति करुणा का अजस्र प्रवाह और स्वच्छंद हृदय का निर्बाध भाव-प्रवाह। इस प्रकार सौन्दर्य-चित्रों के विश्ववाद और चेतनावाद को आत्मसात् कर कवि ने नवीन मानववाद को वाणी दी। परम्परा और रूढ़ि का तिरस्कार कर भी अतीत की अन्तश्चेतना से जाग्रत कवि अतीत को नवीन संस्पर्श देता है। धर्म, रूढ़ि, औप-चारिकता का तिरस्कार कर आत्मिक स्वतन्त्रता की वाणी से निराला के गीत मुखरित हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र का मानववाद बुद्ध और गांधी की करुणा-मिश्रित भावना का फल है, वह मानवता को दिया गया दान है, मानवता का अधिकार नहीं; वह भिखारी को दी गई भीख है, त्याग का जिसमें आग्रह है। प्रगतिशील पंत का मानववाद बुद्धि-जनित है, उस पर मार्क्स के दर्शन का प्रभाव है, आत्मा का सहज प्रकाश नहीं। निराला के गीतों में वही 'मानवता का सुस्थिर और अवसादपूर्ण संगीत' का स्वर है। निराला के गीतों में मानवोचित सहृदयता और आवेग जो बाहर से आरोपित नहीं; बल्कि जो स्वतः प्रकाशमान और उद्भासित है, अनुभूति और चिन्तन में सजग है। यह चेतन सजगता निराला के गीतों में मुखरित है।

निराला के गीतों में दार्शनिक अनुबन्ध की चर्चा होती आ रही है; उनकी ज्ञान-गरिमा से अनेक पाठक सशंक और अनेकानेक आलोचक चिन्तित दीख पड़ते हैं। काव्य के क्षेत्र से दार्शनिकता आज तिरस्कृत-सी लगती है, आज का आलोचक जीवन की रट लगा रहा है यद्यपि जीवन केवल इसी शब्द की सीमा में संकुचित नहीं रह सकता। दार्शनिक और कवि समानदर्शी और अनेक अंशों में समानधर्मी हैं। किन्तु

दोनों की शैली भिन्न है। दार्शनिक अनुबन्ध चिन्तन का फल है और काव्यात्मकता भावना और अनुभूति का; किन्तु चिन्तन और भावना अथवा कल्पना एक ही मानस की क्रियाएँ हैं। अनेक काल से यह भ्रम लाया जा रहा है कि कविता हृदय का विषय है और ज्ञान-विज्ञान मस्तिष्क का। फलस्वरूप ज्ञान-विज्ञान विषय की चर्चा देख पाठक उसे अकाव्यात्मक अथवा दार्शनिक अथवा बुद्धिजन्य कह अपनी झिझक प्रकट करता है। हृदय में भावनाएँ नहीं उत्पन्न होतीं, हृदय रक्त-संचालन-क्रिया का यंत्र-विशेष मात्र है; अतः कविता को हृदय का विषय कहने में उसके भावनात्मक पक्ष की प्रतिष्ठा मात्र समझनी चाहिए। चिन्तन की प्रौढ़ता भावना और कल्पना को ओजस्विता देती है, भावात्मकता चिन्तन को काव्यात्मकता। काव्यात्मक काव्य (poetical poetry) के सिद्धान्त की चर्चा इधर अधिक चल पड़ी है जिसमें भारतीय रसवादियों की शैली का आग्रह भी आ मिला है। रसानुभूति मात्र उपकरणों में संकुचित नहीं। दार्शनिक और कवि में अन्तर है कि दार्शनिक का ज्ञान चिन्तन और प्रौढ़ विचार की तार्कित पद्धति का फल है। कवि की दार्शनिकता भावात्मक चिन्तन है, उसके विचार अनुभूत हैं। काव्य तर्क-सम्मत और तार्किक अनुबन्ध का अनुयायी नहीं। दार्शनिक विचार करता है किन्तु अनुभूति का बहिष्कार उसकी प्रणाली से है, संभव सत्य की उपलब्धि के बाद उसमें भावात्मक आवेश जागरित होता है किन्तु कवि का चिन्तन भावना के रूप से अभिव्यक्त होता है। कबीर के अधिक पदों में लालित्य, माधुर्य और कला-चातुर्य का अभाव देखकर ही लोग उसे अकाव्यात्मक कहते हैं। कुछ पदों का अर्थ-गांभीर्य दार्शनिक अनुबन्ध के कारण नहीं। चिन्तन जहाँ भावात्मक है उन पदों में काव्यात्मकता चमक उठी है। निराला के गीतों में चिन्तन की चेतना है, और उनकी दार्शनिकता का रहस्य है। और कवियों की अपेक्षा जीवन को स्पष्ट रूप में देख सकने और अनुभव करने की शक्ति निराला में है। अतः निराला की दार्शनिकता में जीवन-दर्शन का स्पष्ट प्रभाव है।

गीतिकाव्य संगीतात्मक है, ऐसे तो छन्द-बन्धन संगीत का आधार लेकर गतिशील है। संगीत का शास्त्रीय निर्वाह कला के क्षेत्र से निकलकर कलाबाज़ी के क्षेत्र में प्रवेश पा चुका है। उल्लास-विषाद में फूट पड़ने वाले संगीत और भिन्न-भिन्न रागरागिनियों में बँधे, अदायगी वाले संगीत में अन्तर है। पहले में जनकंठ में बसनेवाला संगीत है और दूसरे में दरबारीपन की गन्ध। गीतिकाव्य का विकास जनगीतों से हुआ है। अंग्रेजी के प्रगीत-गीत अथवा गीतिकाव्य संगीतात्मक हैं और कबीर, सूर, मीरा आदि के पद संगीत-प्रधान। पदशैली और गीतिकाव्य का मौलिक भेद विषय और वर्णन-शैली में है, अधिकांश पद गीतिकाव्य (lyric) की श्रेणी में नहीं रखे जा सकते। संगीत और काव्य का चिर सम्बन्ध रहा है किन्तु दोनों के क्षेत्र में अन्तर भी कम नहीं रहा है। काव्य के लिए संगीत मात्र सहायक रहा और संगीत के लिए शब्द आधार मात्र। अर्थ की उसे चिन्ता नहीं रही, भावना की अभिव्यक्ति अर्थ के कारण नहीं बल्कि संगीतात्मक अभिव्यक्ति के कारण रही। काव्य में भावना और अर्थ की प्रधानता थी, संगीत की गौणता और संगीत में शास्त्र की रक्षा और अर्थ की गौणता। निराला के गीतों में काव्य और संगीत का सन्तुलन है। संगीत निर्वाह की रक्षा के

लिए काव्यत्व की हत्या नहीं हुई है और न काव्य के लिए संगीत का मान-मर्दन। शुद्ध प्रगीत काव्य में भावाभिव्यक्ति के लिए संगीतात्मक शब्द-झंकार और स्वर-मैत्री का संधान है। 'गीतिका' की भूमिका में निराला ने लिखा है—"प्राचीन गवैयों की शब्दावली, संगीत की संगति की रक्षा के लिए, किसी तरह जोड़ दी जाती थी; इसलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है। ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्त्ती गवैये शब्दकारों पर जो लांछन लगता है, उससे भी बचने का प्रयास किया है। दो-एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्दशास्त्र की अनुवर्त्तिता की है। ......जो संगीत कोमल, मधुर और उच्चभाव है, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है।" इस प्रकार निराला के गीतों में संगीतात्मकता अपनेपन के साथ है।

निराला के गीतों में चिन्तन-जाग्रत और प्रबुद्ध भावना एवं भावात्मक चिन्तन के साथ कल्पनागत सौन्दर्य के सूक्ष्म किन्तु स्पष्ट रेखाओं से पुष्ट चित्र हैं जिनमें संयम और निस्संगता का आग्रह है। संगीत की वह धारा है जो मात्र शब्द-अलंकार तक ही सीमित नहीं और न जो कलाबाज़ी ही बन सकी है। संतुलित चिन्तन, अनुभूति और कल्पना के साथ संगीत और सौन्दर्य का समन्वय है जिसमें अतीत की अन्तश्चेतना और वर्तमान की जागरूकता है; मानवता का संस्पर्श है, आत्मा का उल्लास है। जीवन के हास-अश्रुओं में नूतन सौन्दर्य है, सौंदर्य में स्वच्छन्द ओजस्विता है, लावण्य है।

निराला की कवि-दृष्टि सौन्दर्य को एकान्त, सीमित तथा आबद्ध नहीं देखती। सौन्दर्य-भावना निरपेक्ष नहीं। राग-द्वेषात्मक अनुभूति के अतिरिक्त सौन्दर्य-बोध की सहज प्रवृत्ति के सम्बन्ध में मतभेद भले हो किन्तु सौन्दर्य के प्रति आकर्षण एवं सौन्दर्य का स्वतन्त्र बोध अवश्य है। कलाकार सौन्दर्य को सत्य और शिव में देखता है।

उषा की स्वर्णिम मधुरिमा, ज्योत्स्ना के रजत विलास, निर्झर के उन्मुक्त संगीत और रूपसी के विह्वल अंग-विलास और भ्रू-भंगिमा के सौन्दर्य से निराला के गीत मुखरित हैं। सौन्दर्य के उन्मुक्त स्वरूप के निराला पुजारी हैं, किन्तु निराला के सौंदर्य चित्रों में विरसतापूर्ण बीभत्स नग्नता नहीं। उन्माद यौवना-विलास में भी संयम और निस्संगता है, तटस्थता है।

निराला और भारतीय संगीत

विश्वनाथ शुक्ल

महाकवि निराला के सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व का एक बहुत ही भास्वर पक्ष उनका एक 'संगीत-मर्मज्ञ' एवं 'संगीतकार' का रूप है। यहाँ ये दोनों शब्द विशेष आशय से प्रयुक्त किये गये हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य का सम्भवतः कोई अन्य साहित्यस्रष्टा उपर्युक्त दोनों विशेषणों को उतना सार्थक नहीं करता जितना महाकवि निराला। उच्चतम कोटि की विविधरूपा वाङ्मयी सृष्टि के सर्व-तंत्रस्वतंत्र विधाता इस महान् ऋतम्भरा प्रज्ञाशाली, महामानव की हृत्तंत्री वीणापाणि की वल्लकी (वीणा) से एक स्वर में झंकृत होती थी। साहित्य के साथ उच्चतम कोटि की संगीतप्रतिभा के धनी महाकवि निराला के संगीतकार की ओर जब दृष्टि जाती है तो एक विस्मयपूर्ण आह्लाद हुए बिना नहीं रहता। वे एक 'संगीतमर्मज्ञ' थे। संगीत की सार्वजनीन और सार्वभौम परिकल्पना जो उनके रोम-रोम में समाई थी, उसी के साथ भारतवर्ष के शास्त्रीय संगीत की विविध शैलियों, उनके ऐतिहासिक विकासक्रम, गुण-दोषों, संगीत की पारिभाषिक शब्दावली और शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त विभिन्न तालों आदि का उन्हें जो क्रियात्मक ज्ञान था, वह एक ऐसे उच्च संगीतज्ञ का ज्ञान था, जो केवल संगीत-क्षेत्र में कार्य करने वाले क्रिया-कुशल कलाकार का होता है। वे एक 'संगीतकार' (कम्पोज़र) थे। उन्होंने परम्परा से चले आते हुए ब्रजभाषा के ख़याल के बोलों के स्थान पर खड़ीबोली के स्वरचित सरस-गीतों से भारतीय संगीत की एक ऐसी मौलिक एवं अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति की है, जिसका अनुभव वर्तमान पीढ़ी का सुरुचि-सम्पन्न एवं बुद्धिवादी साहित्य-संगीत-प्रेमी बड़ी आकुलता से कर रहा था। निराला ने अनुभव किया था कि प्राचीन कवियों की व्रजभाषा की रचनाएँ उत्कृष्ट और रसमयी होते हुए भी आज के खड़ीबोली के युग में (जब खड़ीबोली की अभिव्यंजना-शक्ति अपने पूर्ण विकास-स्तर पर पहुँच चुकी है) आधुनिकतम प्रवृत्ति एवं विचारधारा वाले व्यक्ति को तुष्ट नहीं करतीं और वह 'ख्याल', 'धम्मार' आदि के पिष्टपेषित बोलों के स्थान पर एक नवीनता, जिसमें प्राचीन भावुकता अक्षुण्ण रहे, देखना चाहता है। महाकवि निराला ने न केवल एक शब्दकार के रूप में सुन्दरतम, आधु-निकतम मौलिक गीत दिये, अपितु उन्हें शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त अनेक प्रमुख तालों

में भी आबद्ध किया जो एक प्रखर प्रतिभाशाली संगीतज्ञ ही कर सकता है।

सब प्रकार की रूढ़ियों, शृंखलाओं, बन्धनों और जीर्णताओं को तोड़ फेंकने और अपने निराले और दुर्धर्ष व्यक्तित्व से साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने जो अपना सर्वथा मौलिक और नवीन पथ प्रशस्त किया, वही संगीत-क्षेत्र में भी प्रकट हुआ। 'गीतिका' में उनका यही रूप सर्वतोपरि है। अनुबन्धवाक्य के रूप में वीणा-वादिनी का जो स्तवन उन्होंने किया है, मानो उसमें वे संगीत के प्रति अपने नवीन और मौलिक दृष्टिकोण का उद्‌घोष करते हुए दिखाई देते हैं। भारतीय संगीत का भविष्य-रूप कैसा हो, माँ वीणा-वादिनी से वे यही कामना करते हैं—

'वर दे, वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत मंत्र नव।
भारत में भर दे।
नव गति नव लय ताल छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद मन्द्र रव,
नव नभ के नव विहग वृन्द को,
नव पर, नव स्वर दे।'

संगीत की अधिष्ठात्री, धृत-वल्लकी वाग्देवी से वे एक ऐसी संगीत-सृष्टि का वर माँग रहे हैं जिसमें विश्व का आद्यसंगीत प्राचीन साम उद्‌गीथ—'अमृत मंत्र', वर्तमान के संदर्भ में स्वतंत्र और नव कलेवर लेकर अनुरणित हो, जिसकी गति, लय, ताल, छन्द सब-कुछ नया हो, उसको व्यक्त करने वाला कण्ठ, शब्द और स्वर सब-कुछ नवीन हो। उक्त गीत में प्रयुक्त लय, ताल, जलद, मन्द्र आदि समस्त शब्द शास्त्रीय संगीत के पारिभाषिक शब्द हैं, और कवि के संगीत-विषयक दृष्टिकोण एवं ज्ञान का द्योतन करते हैं।

संगीत के उद्‌भव के विषय में निराला ने पुरातन भारतीय दृष्टिकोण का सर्वथा समर्थन किया है। मानव के जन्म से ही गीत-सृष्टि को शाश्वत मानते हुए उन्होंने समस्त शब्दों का मूल कारण ध्वनिमय ओंकार ही स्वीकार किया है। उनके मत में अनाहत नाद या अशब्द संगीत से ही स्वर सप्तकों की सृष्टि हुई है। "समस्त विश्व स्वर का ही पुंजीभूत रूप है, अलग-अलग व्यष्टि में स्वर-विशेष—व्यक्त या मौन।" संगीत का उद्देश्य—एकमात्र उद्देश्य—अक्षय एवं दिव्य आनन्द की सृष्टि है। संगीत के प्रयोजन पर प्रकाश डालते हुए महाकवि ने गीतिका की भूमिका में लिखा है—

"स्वर संगीत स्वयं आनन्द है। आनन्द ही इसकी उत्पत्ति, स्थिति और परि-समाप्ति है। जहाँ आनन्द को लोकोत्तर कहकर विज्ञों ने निर्विषयत्व की व्यंजना की है—संसार से बाहर ऊँचे रहने वाले किसी की ओर इंगित किया है—आनन्द की अमिश्र सत्ता प्रतिपादित की है, वहाँ संगीत का यथार्थ रूप अच्छी तरह समझ में आ जाता है।" संगीत और आनन्द में अभेद स्थापित करते समय महाकवि के मन में अवश्य ही उपनिषद् की यह श्रुति गूँजती रही है—'आनन्दाध्येव खल्विमानि भूतानि

जायन्ते, ग्रानन्देन जातानि जीवन्ति, ग्रानन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति', इति । इस प्रकार ग्राध्यात्मिक भारतीय दृष्टिकोरग से संगीत को देखते हुए वे संगीत को ऐन्द्रिय सुखोपभोग का साधन न मानकर ग्रतीन्द्रिय ग्रौर दिव्य ग्रात्मानन्द का समकक्ष मानते हैं। भारत में संगीत को उच्चतम ग्रध्यात्म-साधन स्वीकार किया भी गया है—

पूजा कोटिगुणं ध्यानं, ध्यानात् कोटिगुणं जपः ।
जपात् कोटिगुणं गानं, गानात् परतरं नहि ।।

(पूजा से करोड़ गुना बलशाली ध्यान है । ध्यान से करोड़ गुना जप ग्रौर जप से करोड़ गुना बलवत्तर ग्रौर श्रेष्ठ गायन है । गान से परे कुछ नहीं ।) सामवेद ग्रौर वेदमाता गायत्री तो संगीत के ही सूचक हो रहे । इस प्रकार ग्रार्यों का ग्राद्यसाहित्य संगीत से ही ग्रारंभ हुग्रा । भारतवर्ष के विभिन्न ऐतिहासिक युगों में संगीत वैदिक काल से ग्राज तक किस प्रकार विकसित, परिवर्तित, परिवर्द्धित या ग्रधःपतित होता रहा इस बात का बहुत युक्तिसंगत, संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित विवेचन निराला ने किया है । उन्होंने भारतीय संगीत के चार युगों की ग्रोर संकेत किया है—१. वैदिक काल, २. लौकिक संस्कृत काल, ३. मुस्लिम शासनकाल ग्रौर ४. ग्राधुनिक काल । वर्तमान काल में प्रचलित भारतीय संगीत का मूलाधार उन्होंने संस्कृतकाल को ही माना है, मुस्लिम शासनकाल में मुस्लिम गायकों पर संस्कृतकाल (जिसके सबसे प्राचीन ग्रौर प्रमुख ग्राचार्य भरतमुनि हैं) के संगीत-ग्रंथों का ही प्रभाव है। कालान्तर में संगीत का स्वर-प्रधान, सहज मधुर उन्मुक्त स्वरूप तानों से किस प्रकार बोझिल होता गया ग्रौर ग्रपार्थिव दिव्य सत्ता की उपासना का साधन न रहकर पार्थिव (राजा, नवाब) पूजा का उपकररग बन गया इस संबंध में महाकवि ने बड़ी मार्मिकता से ग्रपना मत प्रकट किया है—"यह सब कला के विकास के लिए ही किया गया है, पर ग्रधिक ग्रस्त्र-शस्त्र बाँधने से शस्त्र-संचालन की ग्रसली शक्ति जिस तरह काम नहीं करती—सिपाही बोझ से दब जाता है—दूसरे पर विजय करने की जगह उसी के प्रारग संकट में पड़ते हैं, वैसे ही तानों के भार से संगीत के क्षीरग-वृन्त पर खुला पुष्प-शरीर झुकता गया । क्रमशः ऋषि कण्ठ से गायक-गायिका कंठ में ग्राकर विश्व देवता को वन्दित करने की जगह, राजा को ग्रानन्दित करता हुग्रा, गिर गया, लोक से उसका सहयोग ग्रधिक, लोकोत्तरता से कम पड़ता गया, इसलिए ग्रानन्द की श्रेष्ठता कहाँ तक रही, यह सहज ग्रनुमेय है।" (गीतिका, भूमिका, पृ० २) इस कथन में पहला तथ्य तो निराला ने यह स्पष्ट कर दिया है कि संगीत स्वर-प्रधान है, स्वर-माधुर्य ही उसका प्रारगभूत तत्त्व है । यदि तानों की कप्तानी उसके मूल स्वरूप पर ही ग्राघात पहुँचाती है, तो यह ग्राह्य नहीं । वास्तव में तानों का संगीत में वही स्थान ग्रौर महत्त्व है जो काव्य में ग्रलंकार का है । शोभाकर होना दोनों के लिए ग्रनिवार्य शर्त है । दूसरी बात महाकवि ने काल गति से भारतीय संगीत की दिव्यता के ह्रास को लक्ष्य में रखकर कही है । लोक शब्द से यहाँ उनका तात्पर्य जनसाधाररग से नहीं, ग्रपितु सांसारिक भोगप्रवरग, सामन्त-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करनेवाले मुट्ठीभर राजा-नवाबों से है । संगीत तो लोक की सहज संपत्ति ही है ग्रौर लोक को ग्रलौकिक

की ओर उन्मुख करने वाली अमोघशक्ति । उसी का अध:पतन देखकर निराला ने यहाँ अपनी वेदना व्यक्त की है । वे संगीत को जनसाधारण और उससे भी आगे बढ़कर प्रबुद्ध और सुरुचिसम्पन्न भारतीय मात्र की थाती मानते हैं, और ताल, लय-बद्ध भावपूर्ण गीतों के माध्यम से शुद्ध संगीत को उन तक पहुँचाने का उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया है ।

उत्तर-भारतीय संगीत में जो गीत रागों और तालों में आबद्ध करके गाए जाते हैं, उनमें प्राचीन हिन्दी के गीतों का ही प्राधान्य है । इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गीत कबीर के हैं । भावों की उच्चता और गहराई एवं भाषा की ओजस्विता की दृष्टि से यद्यपि ये गीत सुन्दर हैं, तथापि भाषा की परिमार्जितता एवं संगीत की दृष्टि से ये गीत आदर्श गीत नहीं हैं । सूर और तुलसी के गीत सगुण भक्तिभाव एवं काव्य-सौन्दर्य लिये हुए हैं । मीरा के गीतों में तीव्रतम भगवद्विरह व्यक्त हुआ है । इसीसे इन सभी भक्तों के गीत भारतीय जनता की अमूल्य निधि हैं । किन्तु यह सब होते हुए भी निराला ने खड़ीबोली में गीतों को लिखकर उन्हें राग और ताल-बद्ध करके संगीत-प्रेमियों को जो एक नवीन सामग्री दी उसका कारण कवि ने यह बताया है—"कबीर निर्गुण ब्रह्म की उपासना में आधुनिक-से-आधुनिक के मनोनुकूल होते हुए भी भाषा-साहित्य-संस्कृति में जैसे अमार्जित हैं, वैसे ही सूर, तुलसी आदि भाषा-संस्कार रखते हुए भी कृष्ण और राम की सगुण उपासना के कारण आधुनिकों की रुचि के अनुकूल नहीं रहे । यह सत्य है कि राम और कृष्ण का ब्रह्म रूप अब अनेक आधुनिक समझते हैं और इन अवतारपुरुषों और इन पर लिखी गई पदावली से उन्हें हार्दिक प्रेम है, वह फिर भी इनकी लीलाओं के पुनः-पुनः मनन, कीर्तन और उल्लेख से उन्हें तृप्ति नहीं होती । फिर खड़ीबोली केवल बोली में ही नहीं खड़ी हुई, कुछ भाव भी उसने व्रजभाषा-संस्कृति से भिन्न, अपने कहकर खड़े किए हैं, यद्यपि वे बहिर्विश्व की भावना से संश्लिष्ट हैं । (गीतिका, भूमिका, पृ० ३) इस कथन से कवि ने शास्त्रीय संगीत को कलेवर प्रदान करने वाले अपने गीतों के सर्जन का उद्देश्य स्पष्ट कर दिया है ।

निराला ने संगीत के क्षेत्र में जो पदार्पण किया, या अधिक सही कहना चाहें तो कहना चाहिए कि उन्हें पदार्पण करना पड़ा तो उसका कारण संगीत में प्रयुक्त परम्परागत एकांगी शब्दावली और उसकी दोषयुक्त शैली से उनका असन्तोष था । पाश्चात्य संगीत की भाव-प्रेषिणी शैली, जिसका प्रभाव बंगाल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर और द्विजेन्द्रलाल राय पर पड़ा था, निराला को भी आकृष्ट कर सकी थी । कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में वे इस प्रकार के आदान-प्रदान के समर्थक थे भी। संगीत के क्षेत्र में पाश्चात्य संगीत ने भारतीय संगीत को वास्तव में शैली (संगीत की पारिभाषिक शब्दावली में अदायगी) की दृष्टि से ही प्रभावित किया है । स्वर-संगति अथवा स्वर-मैत्री की दृष्टि से बहुत कम । इसका कारण है कि भारतीय संगीतबोध के अनुसार स्वर-मैत्री जिन स्वरों के परस्पर-मिलन से सिद्ध होती है, पाश्चात्य संगीतबोध के अनुसार वे स्वर उसके प्रतिकूल बैठते हैं । अतः बंगाल में सर्वप्रथम भारतीय स्वर-मैत्री के साथ पाश्चात्य शैली अपनाई गई । निराला ने अपनी संगीत

परिकल्पना में इस तथ्य की ओर ध्यान दिया है। शब्दावली और शैली के संबंध में उन्होंने लिखा है—"इन संस्कारों के फलस्वरूप हिन्दी-संगीत की शब्दावली और गाने का ढँग दोनों मुझे खटकते रहे। न तो प्राचीन "ऐसो सिय रघुबीर भरोसो" शब्दावली अच्छी लगती थी, यद्यपि इसमें भक्तिभाव की कमी न थी, न उस समय की आधुनिक शब्दावली, "तीर तोपें सब धरी रह जायँगी मगरूर सुन", यद्यपि इसमें वैराग्य की मात्रा यथेष्ट थी। हिन्दी गवैयों का सम पर आना मुझे ऐसा लगता था जैसे मज़दूर लकड़ी का बोझ मुक़ाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चिन्त हुआ। मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि खड़ीबोली की संस्कृति जब तक संसार की अच्छी सौन्दर्य-भावनाओं से युक्त न होगी वह समर्थ न होगी।" वास्तव में हिन्दी के जो पुराने 'ख्याल' प्रचलित हैं उनमें ऐसी अनगढ़ भाषा और एकांगी श्रृंगार आदि के भाव हैं कि बड़े हास्यास्पद लगते हैं। फिर अपढ़ संगीतज्ञ उनके अर्थ को न समझकर और कुछ स्वर-ताल के तक़ाज़े से उनका उच्चारण ऐसा करता है कि सब-कुछ विचित्र लगने लगता है। शिव का विशेषण 'पन्नगभूषण' 'पौंनग भूखन' और 'दुखभंजन' शब्द 'दुखभौजन' हो जाता है। आज के व्यावसायिक संगीतज्ञ अपनी अनगढ़ पदावली बनाकर संगीत-संगति की रक्षा के लिए प्राचीन प्रतिभाशाली संगीतज्ञों की शब्दावली के अन्त में जोड़ देते हैं। ऐसी स्थिति में महाकवि निराला ने संगीत की शब्दावली को काव्य के स्वर से मुखरित करके कितना महान् कार्य किया है यह सहज अनुमेय है।

निराला ने अपने गीतों को प्रचलित तालों में भी आबद्ध किया है। वास्तव में यह कार्य संगीत-रचना की कठिन कला के अन्तर्गत आता है। ये गीत, भैरव, केदार, मालकौंस, कल्याण, भैरवी, झिंझौटी आदि किसी भी राग-रागिनी में गाए जा सकते हैं। उनकी मुख्य तालें हैं—धम्मार, रूपक, झपताल, चौताल, त्रिताल, दादरा आदि। यहाँ हम उक्त तालों में से दो-एक के विवरण सहित कवि के गीतों की प्रथम पंक्तियों को उनमें आबद्ध करके उद्धृत कर रहे हैं, आगे की पंक्तियाँ भी इसी प्रकार गाई जा सकती हैं।

रूपक—यह एक सात मात्रा की ताल है, जिसके तीन भाग होते हैं। इसकी चौथी और छठी मात्रा पर ताली तथा पहली मात्रा पर ही ख़ाली और सम होती है। बोलों के साथ ताल का लिखित स्वरूप इस प्रकार होगा। निराला के एक गीत को भी साथ आबद्ध किया गया है—× चिह्न सम का और ० चिह्न खाली का है। अवग्रह (ऽ) चिह्न अक्षर को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त है।

ती	ती	ना	धी	ना	धी	ना
१ ×	२	३	४	५	६	७
ए	ऽ	क	दे	ऽ	खा	ऽ
[illegible]	[illegible]	र	ज	ग	का	ऽ

(देखिये गीतिका, गीत सं० २२)

झपताल—यह दस मात्राओं की एक ताल है, जिसके चार भाग होते हैं। पहली, तीसरी और आठवीं मात्रा पर ताली और छठी मात्रा पर खाली होती है। पहली मात्रा पर सम होती है।

धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
×					०				
अ	न	गि	नि	त	आ	ऽ	ग	ये	ऽ
श	र	ण	में	ऽ	ज	न	ज	न	नि

(देखिये गीतिका, गीत सं० १८)

दादरा—यह छै मात्राओं की एक ताल है, जिसके दो भाग होते हैं। पहली मात्रा पर ताली और चौथी मात्रा पर खाली होती है। सम पहली मात्रा पर होती है।

धा	गी	ना	धा	ती	ना
१	२	३	४	५	६
×			०		
स	खि	व	स		त
आ	ऽ	ऽ	या	ऽ	ऽ

(देखिये गीतिका, गीत सं० ३)

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा कि निराला ने किस प्रकार हमारे संगीत को एक सुरुचिपूर्ण गीतावली दी है और एक मर्मज्ञ संगीतज्ञ की भाँति उनको विभिन्न तालों में गाने के लिए मात्रा-विभाजन किया है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि मूल संगीत की पंक्तियों में शब्द-संख्या कम रहने पर ताल के अनुसार स्वर-विस्तार कैसे किया जाता है। संगीत का क्रियात्मक ज्ञान रखने वाला कुशल गायक यह बात तत्काल समझ लेगा—उदाहरणार्थ चौदह मात्राओं की धम्मार ताल में निबद्ध उनका यह गीत देखिए—

२ १ १ १ २ १ १ १ १ १ २
१— प्राण धन को स्मरण करते=१४ मात्राएँ
२— नयन झरते नयन झरते !
३— स्नेह ओत प्रोत।
४— सिन्धुदूर, शशि प्रभा दृग
५— अश्रु ज्योत्स्ना स्त्रोत ॥

इस गीत की उद्धृत पंक्तियों में तीसरी और पाँचवीं पंक्तियों में चौदह-चौदह

मात्राएँ नहीं हैं, जबकि शेष सभी पंक्तियों में हैं । उन दोनों पंक्तियों में स्वर-विस्तार के द्वारा मात्राएं पूरी की जायँगी । इस प्रकार की रचना एक कुशल संगीतज्ञ ही कर सकता है । महाकवि निराला की बहुमुखी प्रतिभा में उनका संगीतज्ञ एक विशेष मधुर आकर्षण उत्पन्न कर रहा है । महाकवि जयशंकर प्रसाद ने कहाकवि निराला के संबंध में यथार्थ ही कहा है—"निरालाजी हिन्दी कविता की नवीन धारा के कवि हैं, और साथ ही भारतीमंदिर के गायक भी हैं । उनमें केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, कनेरी की-सी एक ही मीठी तान नहीं, अपितु उनकी गीतिका में सब स्वरों का समारोह है । उनकी स्वर-साधना हृदय के ग्रामों को झंकृत कर सकती है कि नहीं, यह तो कवि के स्वरों के साथ तन्मय होने पर ही जाना जा सकता है ।"

प्रगति और प्रयोग

धनञ्जय वर्मा

सन् '४२ भारत के राष्ट्रीय जीवन में ऐतिहासिक वर्ष है। इस वर्ष बंगाल का अकाल पड़ा और भारत के राजनीतिक जीवन में एक दिग्भ्रम आया। इस दिग्भ्रम और अस्त-व्यस्त स्थिति ने साहित्य को भी प्रभावित किया। जागरूक साहित्यकार होने के नाते बंगाल के अकाल का प्रभाव निराला पर कम नहीं पड़ा। संस्मरणों से उनकी प्रभावित मानसिक स्थिति का पता चलता है। निरन्तर व्यक्तिगत आर्थिक विषमताओं से उनमें एक वितृष्णा का भाव आ गया था और सामाजिक क्षेत्र में भी यही सब देखकर कवि-चेतना पर जो प्रभाव पड़ा वह उनके व्यंग्य-प्रधान होने का कारण हो सकता है। समाज के पीड़ित और शोषित वर्गों के प्रति निराला की भावात्मक सहानुभूति सदैव रही है और क्रियात्मक सहानुभूति का प्रकाशन भी उनके जीवन की अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं से होता है। यहाँ आकर निराला ने काव्य को सामाजिक व्याख्या और व्यंग्य का आधार बनाया। प्रगति और प्रयोग से हमारा तात्पर्य उनके इसी काल के काव्य से है। इस व्यंग्य-काव्य में भी निराला ने जीवन के सामान्य मूल्यों और मानववादी दृष्टिकोण को ही अपना प्रस्थान-बिन्दु बनाया। व्यंग्य और दुखान्त काव्य में अन्तर है। समानता से अधिक उनमें अन्तर की रेखाएँ स्पष्ट हैं। दुखान्त काव्य की अबौद्धिकता और भावात्मक पृष्ठभूमि के स्थान पर व्यंग्य-काव्य में जीवन का एक बौद्धिक और समीक्षात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जाता है। दुखान्त काव्य जहाँ भावी और अदृष्ट शक्तियों से परिचालित होता है वहाँ व्यंग्य काव्य जीवन के नैतिक मूल्यों का यथार्थवादी आकलन करता है। व्यंग्य-काव्य में किसी भी यथार्थ को संस्कृत तत्त्वों से आवृत करने का मोह नहीं होता। वह जीवन को उसके अनावृत रूप में ही देखता है—जैसा है वैसा ही चित्रित करता है। यह कला का यथार्थवादी दृष्टिकोण है। प्राचीन युग में होरेस ने व्यंग्य-काव्य को व्यष्टिगत और समष्टिगत दोषों के परिमार्जन के लिए सफल बताया था। जहाँ, और विवाद एवं प्रयोग सफल नहीं हो पाते, वहाँ व्यंग्य सफल होता है। इसमें बात को संक्षिप्त और संकेत से कहने की शैली अपनाई जाती है। यह अपने लक्ष्य पर सीधी चोट करती है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यंग्य-काव्य के पीछे एक मौलिक और क्रान्तिदर्शी प्रतिभा

वाले व्यक्तित्व का बल होता है। जो जीवन के प्रारम्भ से ही संघर्षों में पलते हैं और समाज का अधिक निकटता से अवलोकन करते हैं, उसके वैषम्य से परिचित होते हैं, वे ही सफल व्यंग्यकार हो सकते हैं। व्यंग्य की पृष्ठभूमि में एक हीन-भाव की प्रेरणा भी मानी गई है, लेकिन हम उसे हर कहीं प्रयोजनीय नहीं मानते। व्यंग्य जब व्यक्ति तक ही सीमित हो, तब कदाचित ऐसा होता हो, लेकिन जो व्यंग्य सामाजिक लक्ष्य और जीवन के विस्तृत भूमि पर दोषों के परिहार के लिए कल्याण-भावना से लिखा जाता है, ऐसा नहीं होता। निराला के व्यंग्य उनकी स्वाभाविक स्वच्छन्दता और रूढ़ि-विद्रोह व्यक्तित्व के ही प्रकाश हैं। सफल व्यंग्यकार के लिए अपने विषय में तादात्म्य स्थापित करने की प्राथमिक आवश्यकता है, क्योंकि वह केवल कल्पना की वस्तु नहीं है। वह जीवन के क्षेत्र में प्रभावों की सृष्टि है। अतः व्यंग्य-काव्य को जीवन के अधिक समीप कहा जाए तो कदाचित अत्युक्ति न होगी। वह साहित्य का यथार्थवादी, प्रगतिशील दृष्टिकोण है। निराला के व्यक्तित्व की यह मूलभूत विशेषता रही है कि वे साधारण और सामान्य-जीवन से इतने घुले-मिले कि लगभग एकरस हो गये। यह उनके व्यंग्य के हित में भला ही हुआ है। इससे वे समाज की अशक्तियों, सीमाओं से अधिक निकट का परिचय रख सके, उन्हें अनावृत कर सके। इसलिए उनके जैसा "शिष्ट व्यंग्य, सच्ची अन्तर्व्यथा से निकला हुआ, जो पढ़ते ही सहृदय को प्रभावित भी कर सके, साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है।"[1] इस प्रगति और व्यंग्य-प्रधान काव्य में निराला की सामाजिक और यथार्थ दृष्टि अधिक प्रकाश में आई है। छन्द और भाव तथा भाषा की स्वच्छन्दतावादी क्रान्ति के बाद यह दूसरी क्रान्ति निराला ने की जो हिन्दी-काव्य में सामाजिक चेतना और यथार्थवादी दृष्टिकोण तथा प्रगतिशील मानदण्डों को लेकर चली। यहाँ आकर उनके काव्य में एक नया सौन्दर्य-बोध, एक नयी अभिव्यंजना-प्रणाली और काव्यभूमि मिलती है। यह निराला के संवेदनशील व्यक्तित्व का एक नया पार्श्व है जहाँ मानवता के प्रति आत्मीयता के द्वारा एक नये समाज की रचना की प्रेरणा कार्य करती है। आधुनिक साहित्य के सम्बन्ध में प्रगति और प्रयोग का इतिहास कुकुरमुत्ता और नये पत्ते से ही आरम्भ हुआ।

कुकुरमुत्ता

कुकुरमुत्ता निराला की इसी सामाजिक चेतना, यथार्थ-दृष्टि, प्रगतिशील विचारधारा और व्यंग्य-वृत्ति का परिणाम है, जिसमें जीवन के विविध पार्श्वों पर व्यंग्य किया गया है। इतना तो निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि कुकुरमुत्ता के पीछे कोई साधारण काव्यात्मा कार्य नहीं करती। जितना तीव्र और मर्मभेदी उसका व्यंग्य है उतनी ही व्यापक उसकी दृष्टि है। उसके व्यंग्य का लक्ष्य एक नहीं, अनेकोन्मुख है। "लोगों में इस बात पर मतभेद रहा कि निरालाजी इसमें किस पर व्यंग्य

---

१. डॉ० रामविलास शर्मा, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ० १२५।

चाहते हैं। इस मतभेद का कारण कविता की अस्पष्टता है जो युद्धकाल में उनके विश्वासों के डिग जाने से पैदा हुई है—कुकुरमुत्ता का व्यंग्य जहाँ गुलाब को मारता है वहाँ खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है।"[1] कुछ लोगों का विचार है कि "प्रतिक्रिया की झोंक में कहीं-कहीं अनर्गल बहुत-कुछ कहा गया है। और कुकुरमुत्ता में न तो व्यंग्य ही निखर पाया है न उसका कोई स्तर ही है, प्रयोग नवीन अवश्य है परन्तु अवांछनीय नवीनता, ग्राह्य प्राचीनता से भी हानिकर हो जाती है। ऐसा लगता है कि निराला विरोधों के बीच से गुज़रकर प्रत्येक वस्तु का उपहास करता हुआ अपने प्रति किए गए अत्याचारों का बदला लेना चाहता है।"[2]

मैं समझता हूँ कि यह 'कुकुरमुत्ता' सरीखे साधारण शैली में लिखे गए चुभते व्यंग्य के प्रति और उनके व्यक्तित्व के प्रति अन्याय हैं। मेरी दृष्टि में कुकुरमुत्ता का व्यंग्य विविध-क्षेत्रीय, तीव्र है। जो भी वर्ग कुकुरमुत्ता के प्रति मोह दिखाकर उसे अपना प्रतीक मानेगा, वही व्यंग्य का शिकार होगा। इसीलिए मैंने कहा है कि इस रचना के पीछे कोई असाधारण प्रतिभा और लक्ष्य कार्य कर रहा है। कुकुरमुत्ता की कथा सीधी और सरल है और उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं। मूलतः उसके उद्देश्य—व्यंग्य—के विषय में ही भ्रम फैला हुआ है, अतः उसे ही स्पष्ट किया जाए।

कुकुरमुत्ता का पहला व्यंग्य तो उस समाज पर है जहाँ उच्च वर्गों का आधिपत्य होता है और निम्न वर्ग उपेक्षित रहता है। कुकुरमुत्ता यहाँ निम्न वर्ग का प्रतीक है और गुलाब उच्च वर्ग का। गुलाब की बाढ़ में मालियों, नौकरों का पसीना, घाम से त्रस्त होना, उच्च वर्ग की (पूँजीपतियों की कहिए!) उस शोषण-वृत्ति को उभारता है, जो श्रमिक तथा सर्वहारा की पूँजी पर विलास और सुख मनाता है। गोली और बहार की मित्रता को मानववाद पर आधारित बताया गया हैं।[3] (पर यह ठीक नहीं।) यह वर्ग-संघर्ष के स्थान पर वर्ग-सामंजस्य की भावी समाज-रचना का स्वप्न है जहाँ उच्च और निम्न वर्ग में कोई भेद न होगा। दोनों में सहानुभूतिपूर्वक और एक-दूसरे का समादर होगा। मुझे यह कल्पना क्लिष्ट लगती है और व्यंग्य की तीव्रता पूरी नहीं उभरती। इसके स्पष्टीकरण के पहले कुकुरमुत्ता के व्यंग्य का दूसरा लक्ष्य देख लेना चाहिए जिससे भी यह स्पष्ट हो जाएगा। यह कुकुरमुत्ता उन साम्यवादी नेताओं का प्रतीक भी है जो अपने समर्थन में वेदों से लेकर आज तक की ज्ञान-राशि को अपने चश्मे से देखते हैं।

कुकुरमुत्ते की बहक में कही गई बातें अनर्गल नहीं, उनका व्यंग्य उन तथाकथित साम्यवादी नेताओं पर है, उन कुत्सित बुद्धिवादियों पर है, जिनको विश्व की हर वस्तु में अपना प्रपंच दिखाई देता है और जो असम्बद्ध प्रलाप के पश्चात् शून्य में ही तिरते

---

१. डॉ० रामविलास शर्मा, निराला, पृ० १८८-१८९।

२. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय कवि, निराला काव्य-कला और कृतियाँ, पृ० २१६, २१९।

३. बच्चनसिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ०१२५।

रहते हैं। गोली और बहार का मेल भी कुछ-कुछ युद्ध के प्रथम वर्षों में हुए जर्मनी और रूस का मेल है।[1] नवाब साहब का कुकुरमुत्ता के प्रति आकस्मिक प्रेम उस उच्च वर्ग के बौद्धिक विलास का प्रतीक है जो हवा के साथ रुख बदलने का अवसरवादी दृष्टिकोण रखते हैं। जब नवाब ने देखा कि गोली (उच्च वर्ग का एक प्रतीक) कुकुरमुत्ता (सर्वहारा जन) की प्रशंसा करती है और उसका प्रभाव बढ़ रहा है तब वह भी कुकुरमुत्ता उगाने का (सर्वहारा वर्ग से मिल जाने का) विचार करते हैं। दुनिया से गुलाब मिटा दिये जाएँ और उनकी जगह कबाब बनाने के लिए कुकुरमुत्ते ही रह जाएँ। यह रूपक भी चुस्त नहीं बैठता, कहा गया है।[2] लेकिन मुझे लगता है कि यह रूपक उपरोक्त दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए ही आया है। नवाब साहब का रुख, प्रदर्शनप्रिय साम्यवादियों के प्रति है जो सर्वहारा का पक्ष, केवल अपने स्वार्थ के लिए केवल प्रदर्शन की प्रेरणा से लेते हैं। लेकिन 'कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता' से फिर समस्या खड़ी होती है। इसका संकेत यों हो सकता है कि जिस सर्वहारा अथवा निम्न वर्ग का वह प्रतीक है उसकी कोई परम्परागत संस्कृति या जड़ नहीं होती।[3] यदि यह आक्षेप्य भी हो तो उसका संकेत यों होगा कि साम्यवादी विचारधारा और सर्वहारा की भावी सांस्कृतिक रचना एक नैसर्गिक आधार लेकर चले। कुकुरमुत्ता स्वयं उगे, उगाए न उगे—नवाब की फ़ैशनपरस्ती का शिकार वह न हो।

कुकुरमुत्ता में व्यंग्य तत्कालीन हिन्दी कविता में तथाकथित प्रगतिवादी और प्रयोगवादी धाराओं की अव्यवस्था और अराजकता के प्रति भी है। तत्कालीन प्रगतिवादी लेखकों में जो अनावश्यक जोश और एक-दूसरे के प्रति कुत्सा का भाव आया था, जो अनर्गल जोश में ऊँचे कुलावे बाँधते थे—उनके प्रति भी यह व्यंग्य है—

> **जैसे प्रोग्रेसीव का लेखनी लेते**
> **नहीं रोका रुकता जोश का पारा**
> **यहीं से यह सब हुआ**
> **जैसे अम्भा सेबु आ।**[4]

इसी प्रोग्रेसीव जोश में यह सब हुआ जो कुकुरमुत्ता की अनर्गल बातें कही गई हैं और टी० एस० इलियटवादियों पर यह व्यंग्य—

> **कहीं का रोड़ा, कहीं का लिया पत्थर,**
> **टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा**
> **पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर,**
> **कहा, "कैसा लिख दिया संसार सारा,**[5]

---

१. प्रो० कामेश्वर शर्मा, नई धारा, फरवरी १९५३।
२. डा० रामविलास शर्मा, निराला, पृ० १८९।
३. पर यह अधिक तर्क-संगत नहीं।
४. कुकुरमुत्ता, पृ०१०।
५. वही।

यह उन प्रयोगवादियों पर व्यंग्य है जो इलियट का अनुकरण कर ही अपने तथाकथित प्रयोगों को संसार की नव्यतम वस्तु मानते हैं और कुकुरमुत्ता ऐसा "नया-कवि" है, जिसकी कलम नहीं लगती, जो अपनी परम्परा से विच्छिन्न ही उगता है। बिना मूल, जड़ के। और वैसे आधुनिक पोइट तो यह हैं ही—

> **आगे चली गोली जैसे डिक्टेटर**
> **उसके पीछे बाहर जैसे भुक्कड़ फालोअर**
> **उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर**
> **आधुनिक पोएट (Poet)**[1]

इस रूप में कुकुरमुत्ता का व्यंग्य सीमित या एकोन्मुख नहीं है—अनेकोन्मुख है और उसकी चपेट में अव्यवस्थित, असम्बद्ध जितने हैं, सब आ जाते हैं। उसकी शैली भी निराला के पिछले काव्य की तुलना में साधारण है, क्योंकि "युग के अनुकूल इसकी रूपरेखा है।"[2] उसका व्यंग्य भी युग पर है और इस कथन में कुछ-न-कुछ सत्य अवश्य है कि "निराला ने इस कविता में सारे विश्व को बाँधने और उसके विकास का पथ खोजने की चेष्टा की है।"[3] जहाँ तक विकास-पथ खोजने की चेष्टा की बात है, वह आरोपित प्रशंसा है—वैसे व्यंग्य का लक्ष्य विस्तृत तो है ही।

नए पत्ते

नये पत्ते की कविताओं का धरातल वही है जो कुकुरमुत्ता का है। इसमें कुकुरमुत्ता में प्रकाशित सात रचनाओं को भी गृहीत कर लिया गया है। जीवन की यथार्थ भूमियों का आकलन नए प्रतीकों और प्रतिमानों से हुआ है और जनवादी काव्य का नया परिवेश यहाँ मिलता है। जिस प्रकार विद्रोह साहित्यकार वाल्टेयर इतिहास की सबसे बड़ी बौद्धिक शक्ति थे, उसी प्रकार निराला हिन्दी-काव्य के इतिहास की सबसे बड़ी बौद्धिक शक्ति हैं। नये पत्ते में निराला की चेतना सामाजिक है, बाह्योन्मुखी है और समाजशास्त्रीय है। जो कला 'विट' पर आधारित होकर व्यंग्य-सृष्टि करती है वही नये पत्ते की है। यहाँ निराला की कला में, कविता में विरोधाभास, विलक्षण प्रयोग, स्वतन्त्र भाव-संयोग की स्थितियाँ मिलेंगी जिन्हें अति यथार्थवादी कला से सम्बद्ध किया गया है। नये पत्ते में 'ठूँठ'[4] की वह अंतिम पंक्ति कदाचित काव्य-रूप लेती है जिसमें एक वृद्ध विहंग ठूँठ पर बैठा कुछ याद करता है। उसकी आँखों के सामने यथार्थ जीवन की तीव्रता है, उसकी विषण्ण विद्रूपता है। नये पत्ते में सामान्य और निम्न वर्ग के प्रति निराला की सहानुभूति उसके वास्तविक जीवन-चित्रों, संघर्षों को चित्रित करने के माध्यम से व्यक्त हुई है। नये पत्त में नये प्रयोग हैं, नयी काव्य-

---

१. पृ० २१-२२।
२. एक बात।
३. महाप्राण निराला, गंगाप्रसाद पांडेय, पृ० २००।
४. अनामिका, पृ० १३९।

भूमियों की शोध है। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रयोगवाद का आरम्भ कदाचित इसीलिए नये पत्ते से माना जाता है।

इसकी 'रानी और कानी'[१] एक यथार्थवादी रचना है, जिसमें मातृ-हृदय के मनोविज्ञान का यथार्थ पहलू ज्ञापित हुआ है। अपनी, कानी, काली नकचिपटी, गंजे सिर और चेचक के दागवाली लड़की को भी रानी कहना मातृ-हृदय की कोमल वृत्ति है। रानी के परिश्रमी और गृह-काज-कुशल होने पर भी माँ को उसके विवाह की चिन्ता लगी रहती है और केवल कुरूप होने पर उसका विवाह नहीं हो पाता। इस पर रानी की वेदना आँसू बनकर बहती है। रानी का यह रुदन समाज की उस व्यवस्था पर व्यंग्य है जिसमें विवाह के लिए रूप-पूजा प्रमुख होती है, अन्य गुण नहीं। व्यंग्य में तीव्रता से अधिक रचना की मर्मभेदी ध्वनि है जो एक कातरता और सेन्द्रिय वेदना बहाती है। 'खजोहरा'[२] को रवीन्द्र की 'विजयिनी' की परिवृत्ति पैरोडी कहा गया है।[३] यह घोर यथार्थवादी (कदाचित अतियथार्थवादी नहीं !) और सीमा तक भदेस चित्र भी है। जहाँ तक गाँव के सामान्य जीवन के चित्र का प्रश्न है वह सफल चित्रांकन है। बादलों का जहाँ चाहिए वहाँ न बरसना और उनसे हाईकोर्ट के वकीलों की तुलना करना हल्के हास्य की सृष्टि करता है। इसके बाद का ग्रामीण चित्र निराला के ग्रामीण जीवन के निकट परिचय का प्रमाण है।[४] रचना में किसी व्यंग्य की स्थिति नहीं है, केवल हल्का-सा हास्य ही है। यदि कल्पना कर यह मान भी लिया जाए कि वह सामाजिक दृष्टि से भारतीय समाज-व्यवस्था के एक अरूप पक्ष पर व्यंग्य है तो वह एक ही पंक्ति में व्यक्त होकर प्रायः अव्यक्त-सा है। ग्रामीण चित्रों के लिए अवश्य यह रचना महत्त्वपूर्ण है और कवि के निकट परिचय को प्रमाणित करती है। 'मास्को डायलाग्स'[५] में आधुनिक समाजवादी उन नेताओं पर तीखा व्यंग्य है जो रूस की दुहाई दिए बिना बात करना प्रतिष्ठा के बाहर समझते हैं। एक ओर तो वे 'मास्को डायलाग्स'[६] का उल्लेख करते हैं, दूसरी ओर बड़े भाई के बँगलों की देखभाल। समाज के बड़े आदमियों को फँसाकर गिडवानी जैसे समाज-नेता अपनी स्वार्थ-सिद्धि करते हैं। ये समाजवादी नेता राजनीति के साथ साहित्य में भी अनधिकृत प्रवेश पाना चाहते हैं। सिद्धान्त और व्यवहार की यह खाई समसामयिक लोक-नेतृत्व की बड़ी स्पष्टप्रवृत्ति है। गिडवानीजी एक साथ समाजवादी नेता, समाजवादी-साहित्यिक (तथाकथित सब) के प्रतीक हैं। 'थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा'[६] युद्धकालीन बढ़ते हुए पूँजीवादी के प्रभाव, साम्राज्यवाद और आर्थिक शोषण का चित्र

१. नये पत्ते : पृ० ९।
२. वही, पृ० ११।
३. बच्चनसिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० १२९।
४. नये पत्ते, पृ० १२।
५. वही, पृ० १८।
६. वही, पृ० २२।

है । गुफा मानव से लेकर आज की वैज्ञानिक प्रगति तक के विकास की पृष्ठभूमि में यह आज के कल-कारखाने वाले 'राम राज्य (!) पर व्यंग्य है, जहाँ 'वाणिज्य के राज्य' ने लक्ष्मी को हर लिया है, और टापू में कैद किया है । ईस्ट इंडिया कम्पनी से विकसित होकर, साम्राज्यवादी ब्रिटिश राज्य की पूँजीवादी नीति पर यह व्यंग्य प्रतीत होता है । 'राजे ने रखवाली की'[1] में सामन्ती व्यवस्था और सभ्यता पर व्यंग्य है, जहाँ ज्ञानी, ब्राह्मण, कवि, लेखक, इतिहासकार और नाट्यकार सब राजाओं (आजकल के नेताओं) की प्रशंसा में ही अपनी कर्त्तव्य-इति समझते थे (हैं) । मार्क्स के द्वारा दिए गए सामवन्ती व्यवस्था के रूप का यह काव्य में आया व्याख्यान है । धर्म जहाँ अफीम और 'एक धोखे से भरा हुआ बढ़ावा रहा' है । इस थोथे धर्म के नाम पर युद्ध होते हैं, जनता का सर्वनाश होता है । सब स्वरक्षा के नाम पर । 'खुशखबरी'[2] आधुनिक चल-चित्रों के प्रभाव पर व्यंग्य है । इस प्रभाव से समाज के जीवन की धुरी सिने-तारिकाओं पर जा टिकी और जीवन-सत्य भी नाच रहा है—सिने-नर्तकियों सा । 'कैद पासपोर्ट···' में कदाचित रहे-सहे सामाजिक नैतिक मूल्यों की व्यंजना है जिनके अभाव में देश हालीवुड हो गया होता, देविकारानी और उदयशंकर के पीछे लगे लोग पाश्चात्य सभ्यता का पूर्ण अनुकरण कर गए होते । 'दगा'[3] में भी आधुनिक सभ्यता पर व्यंग्य है जिसके प्रभाव-स्वरूप व्यक्तित्व की विघटनकारी शक्तियाँ काम कर रही हैं और मन तथा शरीर की क्षीणता का यह वरदान (!) इस नयी सभ्यता का है । मूल्यों की विपन्नता भी उसी की देन है । मनुष्य का ज्ञान और विद्या केवल शुष्क तर्कों तक ('एक को तीन कहने' अथवा तीन को एक कहने तक) ही शेष हो जाती है । सभ्यता के विकास के बाद की यह अव्यवस्था भी उसकी एक प्रवंचनामयी उपलब्धि है । 'चर्खा चला'[4] ऐतिहासिक चेतना के पार्श्व पर मानव जीवन के विकास का चित्र है जिसकी परिणति सामाजिक चेतना में होती है । निर्देश यह है कि अभी दुनिया उस सामाजीकरण को प्राप्त नहीं कर पाई है जो महाभारत काल में था, जहाँ कृष्ण ने इन्द्र की जगह गोर्वधन की पूजा प्रारम्भ करवाई थी और धरती का महत्त्व समझाया था । मानव को, गाय और बैलों को मान दिया था । कृषि के देव बलदेव ने हल को अस्त्र माना था । वेदों से चली आती हुई मानव-विकास की इस कथा में सामाजिक बोध का आग्रह है, साथ ही काव्य के नित्य नूतन परिवर्तन का निर्देश भी । वेदों की परम्परा से सर्वप्रथम वाल्मीकि ने विद्रोह किया और धरती की प्यारी लड़की सीता के गीत गाये थे । कविता में सामाजिक चेतना और समाज-बोध जाग्रत हुआ था । कविता का दृष्टिकोण प्रगतिशील ही है और महाभारत काल एवं वाल्मीकि का उल्लेख, आशंका है प्रतिक्रियावादी न समझ लिया जाए, अतः यह

---

१. नये पत्ते पृ० २४ ।
२. वही, पृ० २६ ।
३. वही, पृ० २८ ।
४. वही, पृ० ३० ।

स्पष्टीकरण 'पांचक'[१] हंस में प्रकाशित हुआ था जिसकी पृष्ठभूमि में बंगाल के अकाल पर निराला की भावात्मक (क्रियात्मक भी) सहानुभूति कार्य कर रही है। यह तात्कालीन स्थिति का चित्र है। दृष्टि-संकोच परतन्त्रता का ही प्रतीक है। सन् '४२ का अकाल भी बौद्धिक वर्ग में क्रान्ति का सूत्रपात नहीं कर पाया। सेंधों का ढेला शकरपाला ही बना रह गया, जीवन की कटुता और तीखापन किसी मधुरता से ही फीका पड़ता गया। तीव्र विषण्ण और विद्रूप सामाजिक स्थिति के खारे-कड़वे अनुभव भी आत्मतोष देते रहे। सभी नेता अपनी राह चले गये और हाथ की मुहर भी छदाम होकर रह गई। जन-शक्ति भी अहेतुक प्रमाणित हुई। आदमी की पराजय तभी होती है तब वह परतन्त्र रहा है, (दूसरे के हाथ जब वह उतारा गया है)। यह स्थिति लगभग वैसी ही थी जैसी कि लड़ने को उद्यत व्यक्ति कुश्ती के साधारण नियम से भी अनभिज्ञ हो। '४२ की स्थिति भी स्वतन्त्रता के लिए कृत-संकल्प, युद्धाय-कृत-निश्चय की थी, लेकिन दिग्भ्रम भी व्याप्त था। 'तारे गिनते रहे'[२] भी उसी गत्यवरोध का चित्र है। आकाश पर चाँद अनिवार्यतः आता है, कलाओं का क्षय होता है और पृथ्वी का उल्लास डूबता जाता है। जमींदार भी करों के लिए अनिवार्यतः आते रहे और जन-शक्ति क्षीण होती गई। वैधानिक, न जाने, कितने तरीके निषफल चले गये। कितना विहार किया (कानूनी पानी पर) और आकाश के तारे गिनने की-सी किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था देश में विराजती रही। यह तत्कालीन भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन के दिग्भ्रम की स्थिति का चित्रण है। यह भी निराला की राष्ट्रीयता, प्रगतिशीलता का एक पहलू है जिसमें न तो प्रचार की पैंफ़लेटियरिंग है न राजनीतिक नारेबाज़ी। 'गर्म पकौड़ी'[३] यद्यपि रोमांस विरोधी रचना कही गई है,[४] तथापि व्यंग्य-प्रधान वह भी है। एक वाक्य में कंजूस पर तो व्यंग्य है ही, परन्तु यदि गर्म पकौड़ी को तथाकथित नये-विचार और नई अवस्था के आभासित बड़े-बड़े शब्द मान लिया जाए तो रचना का व्यंग्य अधिक निखरता है। ये नये विचार उसी तरह आकर्षित करते हैं जिस तरह गर्म पकौड़ी पहले दिल लेकर आकर्षित करती है। तथाकथित नये विचारों में दिल (भावनाओं) को प्रभावित करने की ही शक्ति होती है और बौद्धिकता (यह पूर्व ज्ञान कि गर्म पकौड़ी को तत्काल ग्रहण करने से जीभ भी जल सकती है) का अभाव। एक भावनात्मक जोश ही उनमें होता है और प्रभावित व्यक्ति उन्हें ग्रहण भी कर लेता है, लेकिन स्थिति वही होती है जो 'गर्म पकौड़ी' को दाढ़ तले दबाने से होती है। फिर ऐसे व्यक्ति उनसे चिपटे भी रहते हैं। कंजूस (बौद्धिक विपन्न) की तरह कौड़ी छोड़ते नहीं। इसके लिए शाश्वत और स्थायी मूल्यों (बम्हन की पकाई घी की कचौड़ी) को भी त्याग दिया जाता है। वस्तुतः न तो गर्म-पकौड़ी

१. पृ० ३२ (हंस का बंगाल अङ्क)।
२. वही, पृ० ३३।
३. पृ० ३६।
४. बच्चनसिंह, क्रान्तिकारी कवि निराला, पृ० १२७।

का कोई दोष है, न नये विचारों का। स्थिति ग्राहक-सापेक्ष्य ही है। यह वर्ग-प्रियता और वर्ग-संघर्ष की भावनाओं के प्रति भी संकेत हो सकता है।[१] 'प्रेम संगीत'[२] वस्तुतः रोमांस-विरोधी और उसकी प्रतिक्रिया ही है। प्रेम का 'भदेस' रूप ही इसमें आया है और प्रेम के परम्परित सुन्दर उपादान का विरोध। 'बाम्हन' का लड़का घर की पनिहारिन जात की कहारिन और कुरूप स्त्री से प्रेम करता है, यह आज की सामाजिक स्थिति है (बुरा क्या है ?)। 'कुत्ता भौंकने लगा'[३] किसानों की कातर दयनीय स्थिति का चित्र है। शीत के पाले से खेती नष्ट हो चुकी है और किसान परेशान हैं, लेकिन कारिन्दों का अत्याचार यथावत् और यथेच्छ है। डिप्टी साहब चन्दा लगाने से नहीं चूकते। इस स्थिति पर कुत्ते का भौंकना व्यंग्य को तीव्र करता है। कुत्ता तक प्रति-रोध कर सका, किसानों के प्रति सहानुभूति दिखा सका, लेकिन मनुष्य में उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। भारतीय ग्रामीणों की यह कातर स्थिति है। 'झींगुर डटकर बोला'[४] में भी ज़मींदारों और शासन के अत्याचार का एक पहलू है। तत्कालीन गांधी-वादी नेता भी इस व्यंग्य के शिकार हैं। 'छलाँग मारता गया'[५] में मेंढक को केन्द्र बनाकर किसानों की असहायता और जमींदारों के अत्याचार की व्यंजना हुई है। 'डिप्टी साहब'[६] इसी प्रकार सामाजिक कटु यथार्थ और कृषक दयनीयता की व्यंजना करता है। सरकारी कारिन्दों का व्यंग्यपूर्ण अनावरण भी तीखा है। देश के ग्रामों का यह आज का वास्तविक चित्र है। 'वर्षा'[७] में गाम की प्रकृति का वर्षाकालीन एक स्वाभाविक और कवि की ग्रामीण सहानुभूति से रंगा चित्र है। अनामिका के 'सहज' और 'खुला' आसमान की तरह यह नैसर्गिक प्रकृति का चित्र है जिसकी अंतिम पक्तियों में बँधता हुआ व्यंग्य है। 'मँहगू मँहगा रहा'[८] राष्ट्रीय नेता और गांधीवादी नीति पर तीव्र व्यंग्य की बौछार है, साथ ही निम्न वर्ग के जीवन-गत सुख-दुख का निकट से परिचय। यह आधुनिक कांग्रेसी नेताओं का अनावरण है और युग के न्यायालय में उनको उपस्थित कर निर्णय की राह देखी गई है। व्यंग्य अपने प्रखर आवेग में ग्रामीण क्षेत्रों में की गई बलात् सभाओं को, उनकी अव्यवस्था को, केवल जेल हो आने के प्रमाण-पत्र-प्राप्त नेताओं को, जनता पर गोली चलाने वाली सरकार को, पूँजीपतियों द्वारा पालित-पोषित कांग्रेसियों को और व्यापारियों द्वारा अभिभावित पत्रों को भी समेटता चला है। ज़मींदारों के वाहन, अल्प मूल्य पाए श्रमिक, महाजनों के कर्जे से

---

१. गंगाप्रसाद पाण्डेय, महाप्राण निराला, पृ० १४४।
२. नये पत्ते, पृ० ३६।
३. वही, पृ० ५४।
४. पृ० ५६।
५. पृ० ८५।
६. पृ० ८६।
७. पृ० ८६।
८. पृ० ६६।

दबे किसानों के प्रति यह काव्यात्मक सहानुभूति है। भारत की राजनीतिक चेतना का विद्रूप इन पंक्तियों में उभरता है और इतना शिष्ट व्यंग्य हिन्दी साहित्य में अकेला है। इसमें पंडितजी का रेखाचित्र वनबेला से समता रखता है और पंडितजी का निर्देश स्पष्ट है। मँहगू के वक्तव्य में भूमिगत क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति और समाज का कटुतम यथार्थ एक साथ व्यक्त है। 'खून की होली जो खेली' भावांजलि है—सन् '४६ के आइ० ए० एस० से सम्बन्धित विद्यार्थियों पर किये गये गोलीकांड पर। तिलाञ्जलि भी श्रद्धांजलि है ओर 'रामकृष्णदेव के प्रति' निराला की रामकृष्ण-मिशन से सम्बद्ध पवित्र भावना का मूर्त रूप।[१]

नये पत्ते की विशिष्ट रचना 'देवी सरस्वती' है।[२] इसमें भी निराला की ग्रामीण जीवन से सहानुभूति व्यक्त हुई है और 'भारत माता ग्रामवासिनी'[३] की तरह देवी-सरस्वती ग्रामवासिनी है। मेरा अपना विचार है कि पूरी 'ग्राम्या' के समस्त चित्रों और 'देवी सरस्वती' के छः ऋतुओं के छः ग्राम-चित्रों की तुलना में निराला की श्रेष्ठता और विशेषता प्रमाणित हो जाएगी। निराला के ये चित्र पंत की ग्राम्या से कहीं अधिक यथार्थवादी हैं, कहीं अधिक सहानुभूतिपूर्ण, कहीं अधिक स्वाभाविक। पंत 'ग्राम्या' की ओर एक आकर्षणवश गए हैं अवश्य, (प्रेरणा उन्हें नहीं ले गई है) लेकिन उस जीवन से वे एकरस नहीं हो सके, तादात्म्य नहीं बिठा सके। वे दूर ही से देखे गए चित्र हैं। केवल बौद्धिक सहानुभूति ही वहाँ मिलती है।[४] इसके विपरीत निराला के व्यक्तित्व में ग्रामीण जीवन से एकरस हो जाने की मूल-भूत विशेषता रही है। यही कारण है कि उनके चित्र इतने स्वच्छ, निर्मल, नैसर्गिक और प्रभविष्णु हैं—आत्मानुभूति से रंगे हैं। 'देवी सरस्वती' में भारतीय ग्रामों का वर्ष-भर का जीवन आकलित हो जाता है और कुल मिलाकर उसे ग्राम्या से अधिक महत्त्व मिलना चाहिए। ग्राम्या के धोबियों, चमारों, कहारों के नृत्य और ग्राम-श्री भी नैसर्गिकता में इतने प्रभविष्णु नहीं हैं जितने 'देवी सरस्वती' के विभिन्न ऋतुओं के आमोद-प्रमोद के लघु-लघु चित्र-खंड। इसकी पद्धति 'मिल्टानिक' है और मिल्टन के 'ललैग्रो' के निकट इसे माना गया है,[५] जो अत्युक्ति नहीं है। आरम्भ में कविता की कला और कल्पना उसी कोटि की है, लेकिन वह भी लोक में विचरती है और कला, यथार्थ से भास्वर है। बीच-बीच में व्यंग्य के छींटे, सरस्वती का स्तवन रचना को कोरमकोर यथार्थवादी भी नही बनाता। छायावादी और यथार्थवादी काव्य-शैली का यह समन्वय है। यह रचना निराला की कृषक सहानुभूति को व्यक्त करती है और जिस परम्परा का यह प्रारम्भ

---

१. नये पत्ते, पृ० ७४ ७६, ६७,।

२. पृ० ५८।

३. 'पंत'।

४. ग्राम्या का निवेदन।

५. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, महाकवि निराला—काव्य कला और कृतियाँ, पृ० २२४-२२५।

है उसका अगला विकास नागार्जुन में मिलता है। कोई इन कविताओं के आधार पर निराला को किसान-कवि कहना चाहे तो कह सकता है।

नये पत्ते की कुछ रचनाएँ अस्पष्ट और असम्बद्ध-सी हैं जिनके अर्थों का कोई भी सूत्र नहीं मिलता। स्फटिक शिला[1] को एक अश्लील कुत्सित चित्र और प्रतिक्रिया-कहा गया है।[2] डॉ० रामविलास शर्मा इसे मानवीय भावनाओं द्वारा उनके आध्यात्म-वाद को दी गई झकझोर समझते हैं।[3] कुछ लोगों ने इसे भावना की उठान और आकस्मिक मोड़ के कारण रस और मनोविज्ञान की द्वन्द्वात्मक भूमि पर खड़ी अकेली कृति माना है।[4] कुछ अन्य समीक्षकों के लिए यह अतियथार्थवादी कला का उदाहरण है जिसमें उत्तान-शृंगार और अनन्य भक्ति का, रति और विरति का विचित्र मिश्रण है।[5] इस तरह यह रचना विवाद-ग्रस्त है। निराला का यह विश्रांन्ति-काल है और उसकी विवाद-ग्रस्त अवस्था भी इसके पहिले ही प्रारम्भ हो जाती है। उनके असम्बद्ध वार्तालापों का, कहते हैं, कोई सूत्र नहीं मिलता। यदि ऐसी अवस्था में लिखी गई कविता की कला अतियथार्थवादी होती है तो यह भी अतियथार्थवादी है। एज़रा पाउण्ड की कविताएँ भी उनकी ऐसी ही अवस्था का सृजन बताई जाती हैं। 'स्फटिक शिला' चित्रकूट यात्रा का वर्णनात्मक उल्लेख है। स्वतन्त्र भाव-संयोग (Free Association) की कई पंक्तियाँ इसमें मिलती हैं।[6] लेकिन इस रचना में भी कुछ संकेत स्पष्ट किए जा सकते हैं। गाड़ी की टक्कर से चबूतरे की कोर टूटने पर काली नारी के निकलने और उसके रोष प्रकट करने पर यह उक्ति—

> **मैंने देखा, बड़ा मैला**
> **मन उसका समाज से**
> **चोट खाई वह रामजी के राज से**
> **शूद्रों को मिला नहीं**
> **जिनसे कुछ भी नहीं (पृ० ४८)**

यहाँ भी शूद्रों, दलितों के प्रति निराला की सहानुभूति देखी जा सकती है। पयस्विनी यहाँ भी 'नर्गिस' की गंगा की ओर 'परिमल' की यमुना की तरह त्रेता की बात कहती है। निराला की अन्तश्चेतना मुक्त होकर प्रवाहित है—वह किसी भी नैतिक प्रज्ञा या चेतना स्तरों का नियमन नहीं मानती। कविता के अन्त में घोर शृंगार (जो एक हद तक वासनात्मक भी है) के बाद पुनः भावों के स्वतन्त्र संयोग

---

१. नये पत्ते, पृ० ४१।
२. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, वही, पृ० २१८-२१९। तथा बच्चनसिंह, क्रांतिकारी कवि निराला, पृ० १३१।
३. निराला, पृ० १९१।
४. जानकी वल्लभ शास्त्री, अवन्तिका, अगस्त १९५४।
५. प्रभाकर माचवे, साहित्य (त्रैमासिक), जनवरी, ५१।
६. नये पत्ते, पृ० ४२।

की स्थिति में युवती के दर्शन पर जानकी का स्मरण हो जाता है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मानसिक शैथिल्य के ही अनुरूप कला और काव्य शैथिल्य भी रचना में है। वह आदि से अन्त तक अस्पष्ट ही रही आती है। कविता, भागों में ही महत्त्वपूर्ण है जहाँ प्रकृति का, लड़की की बाल-सुलभ वाणी एवं क्रिया का चित्रण हुआ है। 'कैलाश में शरत'[1] भी इसी तरह की रचना है। यहाँ भी असम्बद्ध कल्पनाएँ हैं, निरर्थक तथ्यों और दूरान्वित सत्यों का प्रकटीकरण। अन्तश्चेतना का स्वतन्त्र प्रवाह यहाँ भी है। स्वामी विवेकानन्द के साथ कवि की यात्रा, जिसमें अफगानिस्तान के शासक पथ-प्रदर्शक हैं, निराला के असम्बद्ध प्रलाप मात्र लगते हैं। तातारी वीर उन्हें अफ़गान संस्कृति की याद दिलाते हैं। कैलाश की कल्पना वस्तुतः भव्य है। अधिक-से-अधिक यह रचना कवि का स्वप्न-मात्र लगती है और भविष्यवादी (फ्यूचरिस्ट) चित्रकारों की तरह इसमें भविष्य की कल्पना हुई है जहाँ काल और देश की सीमाओं का अवसान हो जाता है। 'खेल'[2] में भी किसी सम्बद्ध सूत्र की अवस्थिति नहीं है। यह रचना भी अस्पष्टता से बोझिल है। अति यथार्थवादी कला से सम्बद्ध करते हुए इसे शिशु-मनोविज्ञान पर आधारित रचना बताया जाता है और ऑडेन की पंक्तियों की तुलना भी[3] इससे की जाती है।

इन रचनाओं को छोड़कर निराला के काव्य में नये पत्ते का निश्चित ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें उनकी प्रगतिशीलता और सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि अभिव्यक्ति अधिक प्रकाश में आयी है। नई कविता की यही भावभूमि सफल है। जहाँ मँहगू मँहगा रहा-सी राष्ट्रीय चेतना से, सामाजिक पीड़ा से उद्बुद्ध कविताएँ हैं वहाँ तीव्रतम व्यंग्य-प्रधान रचनाएँ भी। 'देवी सरस्वती' का-सा ग्राम-काव्य और नहीं देखा गया। रानी और कानी, खजोहरा, गर्म पकौड़ी, डिप्टी साहब आदि का व्यंग्य प्रखर है और संयत भी, लेकिन कुछ समीक्षकों को इनमें यथार्थ का नग्न रूप मिलता है[4] एवं प्रतिक्रियावाद और कुत्सित अश्लीलता भी। मेरा विश्वास है कि व्यंग्य की तीखी चोट हमेशा अनावृत्त होती है, आवृत्त रहे तो वह सतेज न होगी। जब तक उनके आक्षेप सीधे न होंगे तब तक वे कुंठित ही रहेंगे। सफल व्यंग्य में सीधी चोट, तिलमिला देने वाला प्रहार, भर्त्सना और हल्का तिरस्कार तो होगा ही। यदि यह आक्षेप्य है तो व्यंग्य का दूसरा रूप भी नहीं है। नये-पत्ते की पूरी रचनाओं का परिशीलन हमें निराला को प्रतिक्रियावादी नहीं कहने देता—हम उन्हें प्रगतिशील ही कहना चाहेंगे ऐसा और प्रगतिशील जिसने स्वयं उस धारा का नेतृत्व किया है।

---

१. नयेपत्ते, पृ० ६१।

२. वही, पृ० ३५।

३. The Silly fool, the silly fool, was sillier in the school : Auden।

४. आलोचना, १२, गिरिजाकुमार माथुर।

बेला

गीतिका का प्रणयन काव्य और संगीत के समन्वय की उदात्त भूमि लेकर हुआ था और उसके गीत श्रेष्ठ काव्य एवं श्रेष्ठ संगीत के उदाहरण हैं, जो लोक प्रिय नहीं हो सके। बेला के प्रयोगों में यह आशंसा प्रच्छन्न दीखती है। उच्च भाव भी साधारण भाषा-शैली में प्रेषित किये जा सकते हैं, इन नये गीतों की सफलता यह प्रमाणित करेगी। यहाँ फारसी छन्द-शास्त्र के निर्वाह पर अलग-अलग बहरों[1] की ग़ज़लें हैं और उर्दू की शैली भी अपनाई गई है। यहाँ निराला का उद्देश्य नया बोध देने का है। वे कहते हैं, "यों आज भी ब्रज-भाषा के प्रभाव के कारण अधिकांश तुतलाते हैं, खड़ीबोली के गीत खुलकर नहीं आ पाते।"[2] प्रायः यह कहा और सुना जाता है कि हिन्दी कविता में उर्दू शायरी की सी लज्ज़त और सीधे प्रभाव करने की विदग्धता नहीं है। (कुछ अंशों तक हिन्दी की जातीय गम्भीरता भी इसका कारण है।) उर्दू शायरी के अधिक प्रचलन का शायद यही कारण हो। उर्दू अपने जन्म से ही अधिक प्रचलित और सामान्य रही है। हिन्दी को संस्कृति का दायित्व सम्हालना पड़ा है। वह लोकप्रियता के लिए अपनी गम्भीरता नहीं खोना चाहती। उर्दू में कहने का, प्रभावित करने का लहज़ा दिलकश है, लेकिन उर्दू-शायरी के विषय में भी हर समय ऐसा नहीं कहा जा सकता। गालिब की शायरी इतनी आसान नहीं है जितनी सामान्य उर्दू कविता समझी जाती है और इकबाल में भी दार्शनिक रंगों का आग्रह है। फिर भी उर्दू शायरी में बड़ी-से-बड़ी बात को छोटे-से-छोटे रूप में अधिकाधिक प्रभाव से कहने की कला का आग्रह है। मोमिन के एक शेर[3] पर ग़ालिब का अपने दीवान को

---

१. "बहर उन खास अल्फ़ाज़ को कहते हैं जिन पर शेर को तोला और जाँचा जाता है कि शेर का वजन ठीक है या नहीं। बहर को वज़न भी कहते हैं।"

—अल्लामा अखलाक़ देहलवी, फ़न्ने शायरी, पृ० २६, १९५४।

ग़ज़ल—वह नज्म (कविता) है, जिसका हर शेर बजाय खुद मुकम्मल और दूसरों से बेनियाज (स्वतंत्र) हो। ग़ज़ल के पहले शेर के दोनों मिसरे हमकाफ़िया होते हैं, यह 'शेर-मतला' कहलाता है। बाद के शेरों में दूसरे मिसरे आपस में हमकाफ़िया होते हैं। ग़ज़ल के आखिरी शेर को 'मक़ता' कहते हैं जिनमें शायर अपना शायराना मुख्तसर नाम यानी तखल्लुस लाता है। बाज दफ़ा एक ग़ज़ल में दो या इससे ज्यादा मतले भी होते हैं। दूसरे मतला को 'हुस्ने मतला' कहते हैं। ग़ज़ल का मजमून कभी कभी मुसलसल (क्रम-बद्ध) भी होता है। ऐसी ग़ज़ल 'ग़ज़ले मुसलसल' कहलाती है। ग़ज़ल में अशआर की तादाद पाँच से बारह तक होती है लेकिन अब उसकी पाबन्दी नहीं की जाती।— मुमताजु-र-रशीद, असनाफ़े-सुखन, पृ १०-११।

२. बेला का आवेदन।

३. तुम मेरे पास होते हो गोया।
जब कोई दूसरा नहीं होता—मोमिन।

न्यौछावर करने का उल्लेख मिलता है, जिसकी प्रशंसा में निराला ने[1] उसे ईश्वर-प्रेम का व्यंजक कहा है।

शेर[2] के विषय में कहा जाता है कि उम्दा और आलापाए का शेर वह है जो शायर की ज़ुबाँ से निकला और दिल की गहराइयों में पैठ गया। मेरी समझ में संस्कृत के वक्रोक्ति सम्प्रदाय को जितना अधिक प्रश्रय (कदाचित बिना परिचय के ही) उर्दू में मिला है, उतना वर्तमान हिन्दी में नहीं। वैसे बिहारी की वाग्विदग्धता भी प्रसिद्ध है। एक ही बात को भिन्न-भिन्न ढंग से कहने की उर्दू शायरों में होड़-सी लगी होती है। उर्दू-शायरी में इस उक्ति का महत्त्व ही अधिक होता है। निराला ने हिन्दी के विषय में उर्दू की शिकायत को दूर करने का प्रयत्न 'बेला' में किया है, जिसकी सफलता के प्रमाण बेला की ग़ज़लें हैं।

बेला में भी कतिपय गीत, गीतिका की परम्परा के हैं जिनके विषय में कहा गया है कि वहाँ रहस्यानुभूति दुरूह हो गई है।[3] ग़ज़लों की शैली पर लिखे गए बेला के अधिकांश गीतों में निराला की कला का एक सहज बोधगम्य, निखरा और परिष्कृत रूप मिलता है। इसके साथ ही व्यंग्य और उक्ति की मार्मिकता में यह कुकुरमुत्ता की कला का परिष्कार है। जहाँ कुकुरमुत्ता में एक अनगढ़पन मिल जाएगा वहाँ बेला में सहज नैसर्गिक प्रांजलता है। वहाँ व्यंग्य भी अधिक कलात्मक अर्थ-सत्ता वाला और स्पष्ट है। अवश्य इन गीतों का उपयोगितावादी दृष्टिकोण है—प्रयोग के रूप में। इन गीतों की मार्मिकता के आधार पर निराला की कथित विक्षिप्तता पर भी सहसा विश्वास नहीं होता। इन गीतों में हिन्दी जन-गीतों की सीधी-सरल अभिव्यक्तियाँ और सहज सम्प्रेषण की कला है। इसके आधार पर निराला हिन्दी के सफल जन-गीतकार माने जा सकते हैं। उर्दू-शायरी का प्रभाव भी इन गीतों पर परवर्ती

---

१. प्रबन्ध पद्म : पृ० ४४

२. जब कोई 'ग़ैर मामूली' पेश आता है तो इंसान उससे मुतस्सिर वाक्या (प्रभावित) होता है। दर्दनाक कैफ़ियत इसके लिए सदमे का बाइस (कारण) होती है। अच्छी चीज़ से वह सुरूर हासिल करता है। उसे एहसास या Fealing कहते हैं। यह एहसास जब अल्फ़ाज़ का लिबास पहन लेता है तो शेर बन जाता है। आम लोग 'कलामे मोज़ूँ' (जिस कलाम-कथन में वज़न हो) को शेर कहते हैं, लेकिन मुहक़्क़ीन (शोधकर्ता) की यह राय नहीं। वे वजन को शेर का ज़रूरी जुज़ (भाग) समझते हैं। फिर भी उनके नजदीक शेर वज़न के वग़ैर भी हो सकता है। इस तरह जब बात आम इबारत में कही जाती है तो उसे शेरे मन्सूर (Prose Poetry) कहते हैं और जब लफ़्ज़ों को घटा-बढ़ा करके ऐसी बात में सुर भी पैदा कर दिया जाता है तो उसे शेरे मन्ज़ूम (Rhythmatic Pcetry) कहते हैं। आम तौर पर दूसरी शक्ल को शेर कहते हैं—मुमताज़ु-र-रशीद, असनाफ़े सुखन, पृ० ३।

३. जानकीवल्लभ शास्त्री

उर्दू-शायरी का पड़ा है। वहाँ भी इस बीच एक नया उत्थान आया है जो उसकी पुरानी नज़ाकती शायरी और शमा-परवाना वाली पद्धति से विद्रोह है। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ और अली सरदार जाफ़री आदि इसी नये उत्थान से सम्बद्ध हैं। उर्दू का यह प्रभाव भी हिन्दी में आत्मसात् होकर ही आया है। उक्ति-वैदग्ध्य के साथ ही भाव-प्रवाह की अप्रतिहतता का भी विशेष ध्यान रखा गया है। यह हिन्दी और उर्दू कविता की सम्मिलित भूमि का अच्छा उदाहरण है और जिस प्रकार निराला हिन्दी-बंगला मैत्री के प्रतीक समझे जाते हैं उसी प्रकार वे यहाँ हिन्दी-उर्दू मैत्री के अग्रगण्य माने जायेंगे।

बेला का प्रथम गीत ही प्रकृति का चित्र है। चित्र प्रातःकाल का है और रवि किरण गीत गाता है। कमल प्रस्फुटित हो गये हैं, पक्षी कलरव कर रहे हैं। किरणों की तन-पालक मालिका पड़ चुकी है और समधीत समीर बहता है। ग्यारहवाँ, चौदहवाँ और बाईसवाँ गीत भी इसी तरह प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन है। पच्चीसवें गीत में कैसे-कैसे प्रातः आयाम की क्रमिक गति निरूपित हुई है और एक विशेष अर्थ में इसे प्रातः का गति-चित्र कह सकते हैं। प्रकृति के इन चित्रों की मात्र-एक विशेषता है—उनका स्वतन्त्र होना। न तो वे मानवीय व्यापार के संकेत और द्रष्टा-भाव-रंजित हैं, न उन पर आध्यात्म का आवरण चढ़ा है। वे मुक्त, स्वच्छन्द प्रकृति को रेखाओं में बाँध भर देते हैं। फिर भी ये गीत गीतिका की तुलना में साधारण ही ठहरते हैं, कला भी सामान्य और वर्णनात्मक है। चित्रों में रंगों की वह प्रगाढ़ता नहीं मिलती जो परिमल, गीतिका और पूर्ववर्ती चित्रों में मिलती है। क्या यह निराला की कला की निगति मानी जाए? वस्तुतः इस कला का रूप अधिक वस्तून्मुखी होकर आया है और उसे प्रगति या निगति न कहकर केवल एक पृथक् रूप कहा जाए।

नवें गीत में एक शृंगारिक भाव आया है। नायिका सारी रात वार्तालाप करती रही, प्रातः भी उसकी आँख नहीं खुली। कोमल शरीर कम्पित है और पुरवाई चलती है—लगता है किसी माया का जीवन-छल है, जहाँ प्रत्येक राग-रंजित है और पारस का सामीप्य है। एक अजाने लोक में विचरण करने और एक अजाने पाठ सीखने के लिए यौवन की बरसात बढ़ती है। उद्दाम-शृंगार की प्रवाहिनी भी तरंग संकुल होकर रह गयी है और इसी में सम्भवतः उसकी महिमा है। यह निराला के कवि-व्यक्तित्व की विशेषता रही है। शृंगार-भावनाओं को प्रकृति के उपादान उद्दीप्त करते हैं।[1] प्रेम की अलौकिक व्यंजनाएँ भी यहाँ विरल नहीं हैं। देह, माया की ज्योति है और वचन, अमूल्य मोती। उदित वसन्त की छटा की तरह क्षण-प्रतिक्षण उसका रूप विकसित होता है। वह जीवन का आधार, हृदय का प्यार है। दोपहर में घनी छाँह-सा सुख मिलता है। गीत के अप्रत्यक्ष संकेत स्पष्ट हैं।[2] और कई गीतों में तो आध्यात्म-व्यंजना स्पष्ट आधार लेकर चलती है। जब पारलौकिक और आध्यात्म

---

१. बेला, गीत ८।

२. वही, गीत १०।

सत्ता की प्रतीति हो जाती है तब विश्व के फैले विस्तार में कुछ भी उसके तुल्य नहीं लगता। असंख्य तारादल, समीर के चंचल पलक, गहन रात्रि में फूलों की गंध से भरे वन-कुन्तल, भोर को सागर के तट पर उगते रवि और संध्या को पर्वत की ओट में डूबते सूरज की छवि भी उनके आगे कुछ नहीं है। उस अरुण के रूप की सहस्रों उपमाएँ निष्फल हैं।[1] पाँचवें गीत में गीतांजलि के उस गीत-सा भाव है जिसमें कि वह अरूप प्राणों की बंसी में साँस फूँकता है और प्राण बज उटता है। वह साँस आती है, जाती है, और प्राण सध्वनित हैं। यहाँ भी उस सत्ता के गान से स्वरों के बादल छा जाते हैं। वह भी प्राणों में आता है, जाता है, लेकिन कैसे यह होता है, यह जिज्ञासा शेष रह जाती है। मूक जिज्ञासा का यह भाव रहस्यवाद की प्रथम सीढ़ी माना गया है जिसके एकाधिक भाव-चित्र गीतांजलि में मिलते हैं। यहाँ निराला की जिज्ञासा भी उसी मूक-शैशव-प्रश्न की तरह है। यह प्रश्न सदैव ही मौन उत्तर लेकर आता है और लोग अपने में अपना सब-कुछ पाते हैं। लेकिन जो सही मार्ग अपनाता है उसे ही वह सम्बल मिल पाता है। रहस्य की जिज्ञासा के साथ भक्ति का भाव यहाँ सम्मिलित होकर आया है। कोरमकोर दार्शनिकता में माधुर्य-चर्या भी सम्मिलित है। छठवाँ गीत लगभग इसी भाव की पुनरावृत्ति है। अनन्य भक्ति की यह भावना वैष्णव-कवियों की निकटता करती है। इसके साथ ही भक्ति के अवान्तर भेदों का भाव भी इन गीतों में आ गया है। माधुर्य पर आधारित, दार्शनिक जिज्ञासा पर आधारित, अद्वैतवादी व्याख्याएँ, इन गीतों में हैं।[2] इन प्रेम और आध्यात्मिक गीतों में सूफ़ियाना रंग मिला हुआ है। शमा और परवाना वाला भाव झलक मार-मार जाता है और प्रकृति के उपयोग से जिस सत्ता का भाव आता है वह उर्दू कविता के आशिक़-माशूक की परम्परा का है, तथापि वह शैली और व्यंजना में पूर्णतः हिन्दी का है। इसी आधार पर हमने बेला की भूमि हिन्दी और उर्दू कविता के सम्मिलन की मानी है। भाव-प्रवाह की अबाधता के बाद हमें यह कहने में संकोच है कि यहाँ रहस्यानुभूति दुरूह हो गयी है। अवश्य यह रहस्यानुभूति पिछले गीतों की भाँति दार्शनिक पूर्णता और आलंकारिक विधान की नहीं है, उसका रूप कुछ सरल शब्दों में व्यक्त किया गया है, वह हिन्दी कविता से कुछ भिन्न उर्दू शायरी के समीप की वस्तु है।

वयस के साथ-साथ व्यक्ति की कामनाएँ भी बढ़ती हैं, पर ये कामनाएँ सांसारिक तृष्णा की नहीं; आध्यात्मिक क्षेत्र की होती हैं, मुक्ति की होती हैं। बेला में ऐसी ही कामनाएँ हैं। इस विस्तृत दृश्यमान रूप की धारा के उस पार जाने की दिव्य कामना, देह की वीणा पर ऐसे गान गाने की कामना कि जिसमें निखिल विश्व बँध जाय—वैर से अंधी दुनिया में मधुवर्षण की कामना।[3] ऐसी कामनाओं में कैथोलिक

---

१. बेला, गीत ३।

२. वही, गीत क्रमशः ७, २६ और ४०।

३. वही, गीत ४२।

भाव का भी प्रभाव है।[1] प्रत्येक जन की सफलता, मानववादी आधार पर जन-जागृति की कामना,[2] इन गीतों में है जिनमें कहने का लहज़ा भी सूफ़ियाना है (ज़मीं रहने दे, जान रहने दे आदि)। कतिपय गीतों में जीवन की विषमता ही ध्वनित होकर रह जाती है। इन विषमताओं का विरोधाभास, निराशा और मायूसी, फूलों का मुरझाना, संसार का क़ैदखाना, दिनों और रातों का मुसीबत में होना, और राहु की घातें, यह सब अभिव्यक्तियों की शैली में हिंदी की परम्परित विशेषताओं से भिन्न पड़ती हैं। इन गीतों की स्पष्टतः दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—एक ओर तो वे गीतांजलि की तरह ही मूक भाव-निवेदन करते हैं और दूसरी ओर उर्दू शायरी के समीप हैं। कहीं-कहीं उसकी ध्वनि भी वही है। प्रश्न है, अभिव्यक्त यह निराशा जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्तियाँ ही हैं क्या? निरन्तर विरोधों के बाद विश्रांति का यह अनुभव एक मानसिक अवस्था-विशेष कही जा सकती है। यह मार्मिक तो है ही, व्यक्तित्व से सम्बद्ध की जाए तो एक अकल्प्य पार्श्व भी प्रकाशित होता है, लेकिन हम उसे समय-विशेष का मानसिक वातावरण ही कहते हैं, अन्यथा संतोष और विश्वास भी वहाँ विरल नहीं है।

यह हम कई बार कह चुके हैं कि निराला की कवि-चेतना सदैव ही साधारण लोक-जीवन से सम्बद्ध रही है। उनके काव्य में सदैव ही उस जीवन के मार्मिक चित्रों की अभिव्यंजना हुई है। बेला में भी यह पक्ष प्रबल है। गंगा-तट पर बैठे हुए साधु-जोगियों के चित्र की यथार्थ दृष्टि में उनके प्रति जनता की असीम श्रद्धा-भक्ति और कवि का हल्का-सा व्यंग्य है।[3] परिमल के भिक्षुक की परम्परा के चित्र में कलाकार, व्यापारी, शिक्षक, कारीगर, महाराज और तरुणी के दृष्टिकोण (भिक्षुक के प्रति) से सामाजिक अनगढ़ता पर व्यंग्य है।[4] कहीं-कहीं स्पष्ट ही जन-क्रान्ति का संकेत है। रूखे वेश, सूखे अधर वाली जनता के बढ़ते हुए दैन्य और विषमता के प्रति सहानुभूति का रूप रक्त की प्यास बुझाने और शक्ति के लौह स्वरों को बजाने में व्यक्त होता है। रुण्ड-मुण्डों से भरे खेत और गोलों से पटे खेत इस रक्त-क्रान्ति की ओर संकेत करते हैं। 'यलगार'[5] करने की-सी भावना भी इन पंक्तियों में है—

> जिन्होंने ठोकरें खाईं गरीबी में पड़े, उनके
> हज़ारों-हा हजारों हाथ के उठते समर देखे।
> गगन की ताकतें सोईं, जहाँ की हसरतें रोईं,
> निकलते प्राण बुलबुल के बगीचे में अगर देखें (पृ० ६३)।

नवीनता का भेरीगान, आँख के आँसुओं से सैलाब लाने की और शोला

---

१. बेला, गीत ४६।
२. वही, गीत ६५।
३. वही, गीत क्रमशः १२, १३, ४३, ५३, ६०
४. वही, गीत ४४।
५. 'हम यलगार करते हैं'—अली सरदार जाफरी।

बरसाने की भावना, पूँजीपतियों का विरोध, सर्वहारा के प्रति सहानुभूति, समाज की व्यवस्था बदलने, इतिहास का नया निर्माण करने, मुक्ति गीत और उद्बोधन के गीत बेला के आकर्षण हैं।[1] इन गीतों में प्रगतिवादी कविता का वह पूर्व रूप मिलता है जो आगे चलकर विकसित भी हुआ, जिसने जोश और क्रान्ति के तराने गाए और समाज का तख्ता पलटने का उद्बोधन किया। कविता की शैली यहाँ मंचीय अधिक है। अमीरों की हवेली को पाठशाला बनाना, सेठों के घर पर किसानों का बैंक खुलवाना, विध्वंसक और प्रचारात्मक राजनीति से सम्बद्ध ये भाव साम्यवादी कवियों में अधिक प्रसिद्ध हुए थे। निराला को क्रान्तिकारी कवि इस रूप में कहा जा सकता है और नाज़िम हिकमत और पाब्लो नेरुदा के अभाव की पूर्ति, निराला हिन्दी में कर सकते हैं। नज़रूल इस्लाम की-सी आतंकवादी और विध्वंसात्मक भावों की ये कविताएँ उन्हें क्रान्ति और विद्रोह का कवि बनाती हैं। निराला यहाँ साहित्यिक गीतकार कम, जन-गीतकार अधिक हैं। इन जोशीली और उद्दाम कविताओं में कहीं-कहीं प्रभावान्विति की रक्षा भी नहीं हो पाती। जैसे—५९वें गीत में विद्रोह और महफिल का राज और शृङ्गार, फिर बिच्छू और बिल केवल जोश में निकली अभिव्यक्तियाँ हैं।

बेला में फारसी छन्द-शास्त्र के निर्वाह पर भी गीत-सृष्टि हुई है। यही नहीं, उर्दू-शायरी का प्रभाव भाव, भाषा, शैली पर भी पड़ा है। इन ग़ज़लों में वही कोमलता, बड़ी बात को थोड़े में कहने की वही शैली और दूर की कौड़ी लाने की वही कल्पना-विलास वृत्ति भी प्रयुक्त हुई है जिसके लिए उर्दू-शायरी प्रसिद्ध रही है। कल्पना की उड़ान, भावों की लताफत और हुस्नो तखय्युल (सौंदर्य-कल्पना) के साथ इसकी मुहावरेदानी, प्रेषण और अभिव्यक्ति में उर्दू कविता के समकक्ष रखी जा सकती हैं। लेकिन कहीं-कहीं उर्दू ग़ज़ल परम्परा के अनुवर्तन में भाव-गाम्भीर्य का वहन नहीं हो सका है—उर्दू की उक्ति-परक शैली के साथ ही हिन्दी-काव्य सौष्ठव की भी रक्षा यहाँ नहीं हो सकी है। ग़ज़ल[2] की एक विशेषता यह भी होती है—किसी एक ही भाव पर अनेक प्रकार की उक्तियाँ वहाँ दी जाती हैं। यह कुछ-कुछ हिन्दी की समस्या-पूर्ति[3] की-सी वस्तु है। (हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन' में बहार के दिनों की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न उपमाओं और कल्पनाओं के माध्यम से हुई है—केशरी की वेशिनी कहती है कि बहार के दिन सुगन्ध भार के होते हैं, तितली कहती है—

---

१. बेला, गीत, क्रमशः ५७, ५८, ५९, ६०, ४१, ४७।

२. 'ग़ज़ले मुसलसल'।

३. शयरों को कभी एक मिसरा दिया जाता है जिसको 'मिसरा तरह' कहते हैं। इस पर शायर तबा आज़माई करते हैं। इस तरह लिखी गई पूरी ग़ज़ल को 'तरही ग़ज़ल' कहते हैं।

सिंगार के होते हैं, आदि) । उर्दू क़िता[1] की शैली पर भी बेला में कुछ कविताएँ हैं । जहाँ शेर को हिन्दी दोहों के निकट कहा जा सकता है वहाँ क़िता रूबाई[2] को चौपदों के निकट कह सकते हैं यद्यपि 'रुबाई' चौपदों के अधिक निकट है । बेला में इनके उदाहरण एकाधिक हैं ।

ग़ज़ल के हर शेर में किसी एक भाव की एक सीमा में पूर्ण अन्विति पर अधिक ज़ोर होता है । क़िता में थोड़े विस्तार का अवसर भी होता है । लेकिन क़िता की यह शैली बेला में पूरी निखर नहीं पाई है । शेर की तरह बेला का एक प्रयोग यह होगा—

निगह तुम्हारी थी, दिल जिससे बेकरार हुआ
मगर मैं ग़ैर से मिलकर निगह के पार हुआ

क़िता की अपेक्षा बेला के शेर अधिक सफल हैं यद्यपि उन्हें भी उर्दू माप-दण्डों पर तोला जाए तो एकाध ही पूरे वज़न पर उतरेंगे ।

लोक-गीतों का वर्ण्य कोई ऐसा विषय होता है, जिसमें जन-संवेदना हो । उसकी अनुभूति भी जन-अनुभूति कही जाएगी । इसका विस्तार दैनन्दिन जीवन के साधारण परिवेश में प्रायः प्रत्येक पक्ष तक होता है । बेला की एक कजली में मँहगाई की वृद्धि, गाँठ की कमाई का छूटना, आदि का सम्बन्ध 'न आए वीर जवाहरलाल' की टेक पर वर्णित है । 'टूटी बाँह जवाहर की, रनजित लट छूटी पण्डित की' भी एक सफल लोक-गीत है, जिसका रूप भोजपुरी और अन्य लोक-भाषाओं में प्रचुरता से मिल जाता है ।

कुल मिलाकर 'बेला' को हम एक प्रयोग ही मानते हैं । गेयता के साथ सहजता का ध्यान भी यहाँ रखा गया है । सहज-बोध और उच्च काव्य की सह-स्थिति कुछ कठिन है । यह सही है कि बेला में विषय और भावों का विस्तार है । व्यापकता भी है, लेकिन गहनता और गाम्भीर्य का समकक्ष दावा भी हम उसके विषय में नहीं कर सकते । काव्य का एक रूप जन-काव्य भी होता है और उसी दृष्टि से बेला का महत्त्व है । उर्दू शैली में हिन्दी काव्य को ढालने का वह प्रयोग मात्र है । प्रारम्भिक प्रयोग की सीमाएँ इसमें अपरिहार्य हैं । एक मिसरा उर्दू की परम्परा का और दूसरा हिन्दी परम्परा का, वह प्रभाव और सौष्ठव नहीं दे पाता । यह मिला-जुला रूप भले दें । जहाँ विशुद्ध उर्दू की शैली अपनाई गई है उसे हिन्दी का भी कठिनता से कहा

---

१. क़िता कम-से-कम दो शेरों का होता है । ज्यादा की कोई हद नहीं । दूसरे मिसरों का हमक़ाफ़िया होना ज़रूरी है । बलिहाज-ए-मतलब तमाम अशआर आपस में मरबूत (संयोजित) होते हैं । इसमें हर तरह का मज़मून आ सकता है ।

२. चार मिसरों वाली नज़्म को रुबाई कहते हैं । इसमें पहला, दूसरा और चौथा मिसरा हमक़ाफ़िया होते हैं । चौथा मिसरा सबसे अच्छा और बरजस्ता (यथातथ्य) होता है । आमतौर पर इन मिसरों से तशबीह (उपमा) का काम लेते हैं ।

जाएगा । कोई आश्चर्य नहीं कि 'बेला' को लोग विशुद्ध हिन्दी में परिगणित न करें। कुछ कविताएँ तो अवश्य निखरी हैं, परिष्कृत कला भी है, लेकिन कई कविताएँ अस्पष्टता और दुरूहता की भी शिकार हैं और यह अस्पष्टता एवं दुरूहता किसी उच्चतम भाव या मौलिकतम विचार के कारण आई हो ऐसी बात भी नहीं। भावों का विशृंखलित रूप और एकान्विति का ह्रास इनमें मिलता है। कदाचित यह विश्रांति-काल का प्रभाव हो।

अणिमा

दूसरे महायुद्ध के दिगन्तव्यापी प्रभाव ने भारत के राष्ट्रीय जीवन में निराशा और पराजय की भावना फैलायी। राष्ट्रीय गतिविधि में स्वतन्त्रता के प्रति जो आत्म-विश्वास था वह अब न रह गया था। लगता था देश की स्वतन्त्रता अकल्प्य है। सन् '४२ में ही बंगाल का अकाल पड़ा जिसने भारत की रही-सही विश्वास-शक्ति को भी झकझोर दिया। जन-जीवन में विद्रूप निराशा और प्रगाढ़ विषाद आ विराजा। साहित्य की गति भी दिशाहीन, दिग्भ्रम-सी थी। ऐसे अवसर पर साहित्य में दो परिणतियाँ होती हैं। या तो दबा हुआ विद्रोह उमड़ता है, विध्वंस करता है, तहस-नहस की प्रवृत्ति आती है अथवा एकमात्र आश्रय और सम्बल के प्रति आकर्षण बढ़ता है। भक्ति-काल की सामाजिक पृष्ठभूमि की व्याख्या इसी आधार पर की जा सकती है। ऐसा ही निराला की 'अणिमा' के साथ हुआ। इस भक्ति और आलोक में प्रश्रय पाने का कारण व्यक्तिगत भी होता है। उनके जीवन में सन् '२९-३० से ही आर्थिक जटिलताएँ भीषण रूप धारण कर चुकी थीं। वे जीवन में एक बेचैनी, वितृष्णा और अभाव का अनुभव भी करते थे। कहीं भी स्थिर न होकर उनका जीवन सुचारु न चल पाता था। निजी आवास छोड़कर परिव्राजक का जीवन वे व्यतीत कर रहे थे। इस जीवन और व्यक्तिगत विपत्तियों के कारण भी वे क्रमशः भ्रमित हो रहे थे। सर्वत्र एक पीड़ा और विरोध का वातावरण था कि सरोज की मृत्यु हुई, जिसका कारण भी उनकी आर्थिक विवशता थी। यह उनकी मानसिक पीड़ा और विषाद को प्रगाढ़ करने के लिए बहुत था। अणिमा के गीतों में यही विषाद रेखांकित है। इसके साथ एक दूसरी परिणति भी लगी है। उनके जीवन और व्यक्तित्व से ही यह सम्बद्ध है। समाज और व्यक्ति की उपरोक्त परिस्थितियाँ साहित्य को एक व्यंग्यात्मक शैली और प्रत्यक्ष जीवन में एक क्रान्ति की प्रेरणा भी देती हैं। 'अणिमा' का यह दूसरा पहलू है। वह इस तरह व्यक्तित्व के द्विविध रूपों को अभिव्यक्त करती है। एक ओर विषाद, निराशा के स्वर हैं; रहस्य, आलोक और भक्ति का प्रश्रय है, तो दूसरी ओर समाज के विद्रूप और विकलांग पर व्यंग्य-प्रहार है। एक ओर अतीत का लेखा-जोखा है, आत्म-परिचय है, तद्रूप संतोष है, साहित्यिक बंधुओं का प्रशस्ति-अंकन है; दूसरी ओर विशृंखलता, असम्बद्धता, अस्पष्टता और भ्रम। इन दूसरी प्रकार की असम्बद्ध विशृंखल रचनाओं के बारे में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। व्यक्तित्व-अध्ययन के अवसर पर उनकी वर्तमान अवस्था पर विचार करते हुए (दे० मेरी पुस्तक का दूसरा परिवर्त) उनकी

संदिग्ध स्थिति पर यथेष्ट वाद-विवाद हैं। न तो वहाँ कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है न यहाँ। यदि इन्हें भविष्यवादी, अतियथार्थवादी कला का रूप मान लिया तो वह भी निरुपाख्य है।

अणिमा की भूमिका में कवि ने गीतों के विषय में गाने की अनुकूलता और स्वर के सौंदर्य के साथ श्रुति-मधुरता का उल्लेख किया है। कई अर्थों में ये गीत गीतिका की ही परम्परा में हैं। इनमें भाव भी प्राय: उसी स्तर और प्रकार के हैं। कला के विषय में भी गीतिका का सन्दर्भ लिया जा सकता है। अपनी प्रकृत दार्शनिकता, उदात्त और विराट कल्पना और आध्यात्मिक सम्मान को वे यहाँ भी व्यक्त करते हैं।[1] भक्ति के स्वर भी प्रकृति के उपादानों को प्रतीक बनाकर व्यक्त हुए हैं जिनमें उनका आत्मनिवेदन है, अपनी साधना का आख्यान है।[2] आत्मसमर्पण और जन से सहानुभूति और भक्ति की आर्तवाणी[3] भी इन गीतों में मिलती है। निरभिमान, निस्संशय, निरामय जीवन की कामना और ईश्वर-कृपा का अनन्य आश्रय इन्हें अर्चना-आराधना की पूर्व भूमि बनाता है।[4] 'तुम्हें चाहता वह भी सुन्दर' में द्वार-द्वार भीख माँगते हुए के प्रति सहानुभूति और प्रभु-निवेदन के साथ समाज की अवस्था के प्रति लक्ष्य भी है, लेकिन भौतिकता से परे एक निर्द्वन्द्व जगत् की कामना कुछ असम्बद्ध-सी इसलिए प्रतीत होती है कि यहाँ यथार्थ को भूलने का-सा उपक्रम है। 'अज्ञता' अपेक्षाकृत अधिक भाव-संगति की रक्षा कर सकी है। जिनके तिनके नहीं जले हैं उनका यह अच्छा नैसर्गिक भाव-चित्र है। 'तुम और मैं' में यद्यपि परिमल के 'तुम और मैं' की भाँति अद्वैतवादी दार्शनिक पृष्ठभूमि नहीं है, फिर भी भाव-औदात्य और ऊँची कल्पना की स्थिति है। यथार्थवादी पुट के साथ सुन्दर उपमाएँ और उच्च कल्पना गुम्फित हैं। जीवन के क्रम का आख्यान रहस्यात्मक संकेतों से परिपूर्ण है और विशुद्ध मुक्ति का स्वरूप व्यंजित हुआ है। 'तुम आए' उसी अरूप सत्ता के सम्मिलन का आनन्द व्यक्त करता है और प्रकृति में उसका आभास। 'तुम चले ही गए प्रियतम' का शृंगार भाव आध्यात्मिक रंगों से रंजित है और अरूप प्रियतम के अभाव में जगत् के आकर्षण को अहेतुक माना है। 'भारत वन्दना' गीतिका की परम्परा की है और 'तुम्हीं हो शक्ति समुदय की' प्रार्थना-परक।

अणिमा में निराशा और विषाद का वातावरण भी प्रगाढ़ है। यह अवसाद और पराजय का भाव कवि का व्यक्तिगत और आत्म-प्रकाश माना गया है। 'स्नेह निर्झर बह गया है' की स्थिति कुछ ऐसी ही है। 'रुखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी' का आशावाद यहाँ नहीं है। यहाँ तो सूखी डाल अपने क्षार हुए जीवन की कथा कहती है, जहाँ कोयल भी नहीं कूकती। जगत् को उसने फल-फूल दिए और अब

---

१. नूपुर के स्वर मंद रहे, जब न चरण स्वच्छन्द रहे।
२. बादल छाए।
३. (१) जन-जन के जीवन के सुन्दर, (२) उन चरणों में मुझे दो शरण।
४. (१) धूलि में तुम मुझे भर दो, (२) मैं बैठा था पथ पर।

वैभव समाप्त हो चला है। केवल निराशा की अमावस्या है। 'गहन यह अन्धकार' में कवि को समस्त जगत् स्वार्थमय लगता है। न दिन का प्रकाश है न चन्द्रमा की ज्योति। पूरे गीत में व्यक्तिगत निराशा के स्थान पर निवृत्ति-मार्गी दार्शनिक चिन्तना का रूप अधिक निखरता है। ज्ञानमार्गी शाखा के साधक का-सा यह भावोच्छ्वास है, पर यह व्यक्ति-संस्पर्श से शून्य भी नहीं है। 'मैं अकेला' में यह विषाद प्रगाढ़ हो जाता है। जीवन के अन्तिम दिन आ गए-से लगते हैं। निराशा की यह अभिव्यक्ति मार्मिक है। और निराला सरीखे पौरुष व्यक्तित्व की यह वाणी सुनकर आश्चर्य होता है—लेकिन आत्मतोष मिटा नहीं है—

जानता हूँ, नदी झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख,
नहीं कोई मेला (पृ० २०)

अणिमा का प्रशस्ति-अंकन और सम्बोधि-गीतों का रूप वर्णनात्मक है। पौरुष-व्यक्तित्व यहाँ श्रद्धानत, विनत भाव से भावांजलि चढ़ाता है। ऐसी भावांजलियाँ चढ़ाने की परम्परा-सी रही है। टेनीसन ने मिल्टन के प्रति कविता सम्बोधित की थी, पन्त ने स्वयं निराला की प्रशस्ति लिखी है। सन्त रविदास, आचार्य शुक्ल, अग्रज प्रसाद, विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति, महादेवी वर्मा के प्रति, स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज आदि कविताएँ शुष्क वर्णनात्मक हैं और इनका परिवेश अकाव्यात्मक भी कहा जा सकता है। एकाध कविता में कुछ अच्छे ग्राम्य-चित्र और हल्की प्रतीक कल्पनाएँ भर आ सकी हैं।[1]

'सहस्राब्दि' निराला की ऐतिहासिक चेतना और राष्ट्रीय जागृति को व्यक्त करती है। विक्रम के १००० संवत् तक भारतीय इतिहास और संस्कृति का ओजस्वी वर्णन हुआ है। परिमल की 'यमुना' और अनामिका की 'दिल्ली' की परम्परा की यह कविता है। इतिहास की परिवर्तनशील गति के सन्दर्भ में अतीत गौरव से परिचित होने का महत्त्व तत्कालीन स्थिति में आवश्यक भी था। 'उद्‌बोधन' प्रेरणात्मक है—जातीय समानता, साम्य-भावना का। 'मरण को जिसने वरा है' और 'गया अँधेरा' भी इसी प्रकार के गीत हैं।

अणिमा की कुछ कविताओं को लेकर समीक्षकों में विवाद उठा है। कोई उन्हें अतियथार्थवादी कला का उदाहरण मानता है, कोई विशुद्ध यथार्थवादी शैली की व्यंग्य रचनाएँ। कुछ तो उनमें निराला की विश्रांतिकालीन असम्बद्ध भावनाएँ देखते हैं। ऐसी रचनाओं में 'यह है बाज़ार' एक है। जहाँ तक इस रचना का सम्बन्ध है वह यथार्थपरक है और उसे अतियथार्थवादी नहीं कहना चाहिए। इसकी व्याख्या हो सकती है। दुखिया और सुखिया के विवाद का यह एक यथार्थपरक वर्णन है। तैल के सौदे को जाने वाले दुखिया के मन में सुखिया के सास को कहे गए शब्दों का व्यंग्य

---

१. प्रसाद के प्रति।

पीड़ा पहुँचाता है । वह सोचता है—'बैठाली क्या जाने ब्याही का प्यार' । यह लोक-मुहावरा है और ग्रामीण जीवन की साधारण घटनाओं में व्यवहृत होता है । दुखिया की विवशता उसे तेज़ कदमों से चलाती है। अतीत और भविष्य की शंकाओं के कारण वह सब-कुछ भूल जाता है क्योंकि वह जानता है कि सुखिया के व्यंग्य का उत्तर वह सिंह बनकर दे भी तो सुखिया दूसरे का हाथ पकड़ लेगी और उसकी स्थिति स्यार से कम न रह जाएगी । यह ग्राम्य-जीवन की परिचित घटनाओं में से एक है। 'यह है बाज़ार, सौदा करते हैं सब यार' से तात्पर्य लेना होगा कि यहाँ सब-कुछ का सौदा होता है। सुखिया यदि दूसरे पति के पास बैठ जाए तो वह भी सौदा होगा। इस रचना में मुझे कोई असम्बद्धता नहीं मिलती और अपने-आपमें यह एक निम्नवर्ग परिवार का यथातथ्य चित्र है। 'नाम था प्रभात, ज्ञान का साथी' अन्त के पहले तक सार्थक, सम्बद्ध और हेतुक है, लेकिन अन्त विशृंखलता में होता है। यदि प्रभात और ज्ञान के मनोविज्ञान को प्रतीकात्मक रूप दे दिया तो कविता का कुछ दूर तक अर्थ निर्वाह हो सकता है, लेकिन फिर वही अंत की समस्या उठती है। प्रभाकर माचवे[1] ने इसे शिशु-मनोविज्ञान पर आधारित माना है। इसके पीछे शिशु की-सी असम्बद्ध कल्पनाओं की अवस्थिति मानी गई है। उनका क्या अर्थ होता है यह मनोवैज्ञानिक जानें। यह काव्य-विश्लेषण से अधिक मनोविश्लेषण की वस्तु होगी। तब प्रश्न है कि इसे कविता कैसे कहें ? जिसका प्रेषण कतिपय विशेषज्ञों तक ही हो और वह भी संदिग्ध हो, कविता नहीं होगी।

'मेरे घर के पच्छिम की ओर रहती है' भी ऐसी ही रचना है। निम्न स्तर की युवती का चित्र तो अच्छा उभरा है, पर असम्बद्ध कल्पनाओं और उपमाओं का निर्वाह फिर भी नहीं हो पाता। 'सड़क के किनारे' अच्छी स्नैपशॉट वाली कला का नमूना है। इसे अतियथार्थवादी नहीं कहना चाहिए। 'चूंकि यहाँ दाना है' के विषय में भी यही कहना चाहिए। न तो यहाँ किसी स्वप्न की सृष्टि है न कोई अबौद्धिक और अतार्किक पद्धति। यह सही है कि चित्र में वस्तून्मुखी दृष्टि प्रभूत है। किसी विशृंखलिता की स्थिति भी मुझे नहीं लगती। यहाँ दाना पर समस्त जीवन का आधार माना गया है। दीवानापन, महफिल, नग़मे, प्रेम व्यापार, सब दाने पर आश्रित हैं। जीवन की दृष्टि और प्राण, पारिवारिक सम्बन्ध, वाद-विवाद और संघर्ष इसी दाने पर आधारित हैं। लोक-प्रचलित कहावत भी रोटी को सारे जीवन का केन्द्र मानती है। परम्परागत मूल्यों और स्थापनाओं के विरुद्ध यह भले हो, पर अन्ततः जीवन का एक कटु यथार्थ व्यंजित होता है। 'जलाशय के किनारे कुहरी थी' में वही स्नैपशॉट वाली कला मिलती है। जहाँ तक प्रकृति के चित्र का सम्बन्ध है वह यथार्थ और वस्तुवादी है। निराला की पिछली कला की भाँति आत्म-परकता नहीं मिलती, न कल्पना और उपमानों का औदात्य। अत्यन्त साधारण और इतिवृत्तात्मक यह रचना है।

---

१. साहित्य (त्रैमासिक), जनवरी १९५१।

अणिमा के गीतों के अतिरिक्त समस्त कविताएँ वर्णनात्मक, इतिवृत्तात्मक और शुष्क तुकबन्दी-सी लगती हैं जिनमें गद्यात्मकता भी आती गई है। यह उनकी प्रतिभा और कला का विघटन माना जाता है। यह निराला की पराजय, निराशा और अवसाद का परिणाम भी बताया गया है। इस सम्बन्ध में निश्चित कुछ भी नहीं कहा जा सकता। प्रमाणों के आधार पर निराशा और पराजय व्यक्तिगत उतनी नहीं है जितनी सामाजिक प्रक्षेप है। रैदास और शुक्ल की प्रशस्तियाँ इसकी प्रतीक नहीं हैं। वह तो कवि की श्रद्धा है। उद्‌बोधन और 'सहस्राब्दि' भी हमें उपर्युक्त निष्कर्ष पर नहीं पहुँचने देतीं। छायावादी कला से भिन्न एक अन्य रूप इनमें अवश्य मिलता है और प्रयोगों के रूप में ही इसका महत्त्व मानना चाहिए। आत्मतोष और विश्वास के स्वर भी साथ-साथ हैं और यथार्थपरक दृष्टि सामाजिक चेतना को अभिव्यंजित करती है। कुछ अपवादों के बाद 'अणिमा' में निराला-काव्य का एक नया आयाम मिलता है जो पहले से बिलकुल पृथक् और प्रयोगमात्र है—यहाँ विघटन या निगति नहीं एक परिवर्तन है।[1]

---

१. निराला : काव्य और व्यक्तित्व (१९६०) से।

निराला काव्य में आत्मव्यंजना

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

महाकवि पं० सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिन्दी-साहित्य की उन विरल विभू-तियों में गणनीय हैं, जिन्होंने अपने जीवन का कण-कण माँ भारती के पाद-पद्मों में निष्काम भाव से समर्पित कर दिया। छायावादी युग के स्तम्भ होने पर निरालाजी की आत्मा संतों जैसी थी। यदि विद्रोही और फक्कड़ स्वभाव की दृष्टि से उनकी समता किसी से की जा सकती है तो केवल कबीर से ही की जा सकती है। जैसे कबीर लकुटी हाथ में लेकर बाज़ार में आ खड़े हुए थे और अपने साथ चलने वालों से घर फूंकने की आशा रखते थे, वैसे ही निरालाजी भी सामाजिक दृष्टि से विपन्न और सर्वहारा की कोटि के प्राणी थे। साहित्यिक दृष्टि से इतने महान् व्यक्तित्व के धनी होने पर भी उनकी जो उपेक्षा हुई वह किसी प्रकार क्षम्य नहीं कही जा सकती। उनके साहित्य—विशेष रूप से काव्य—के अध्ययन से उनकी जीवन-कथा के अनेक मार्मिक अंशों का उद्घाटन होता है।

किसी कवि के काव्य में आत्म-व्यंजना दो प्रकार से हो सकती है—एक प्रत्यक्ष और दूसरी अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष रूप से होने वाली आत्म-व्यंजना में कवि अपने जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का, रुचि-अरुचि और आशा-निराशा का चित्रण करता है। अप्रत्यक्ष रूप से होने वाली आत्म-व्यंजना में वह अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं का परिचय देता है। उसका जीवन-दर्शन अप्रत्यक्ष रूप से होने वाली आत्म-व्यंजना में ही प्रकट होता है।

प्रत्यक्ष रूप से निराला के जीवन की गतिविधि का दिग्दर्शन कराने वाली कविताओं में 'सरोज-स्मृति' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि की पुत्री उपयुक्त चिकित्सा के अभाव में मर जाती है। उसकी स्मृति को सजीव करने के लिए कवि ने जो कविता लिखी है वह उसका आत्म-चरित बन गई है। इस कविता के प्रारम्भ में कवि को अपने पिता होने की निरर्थकता की अनुभूति होती है और वह पुत्री के लिए कुछ भी न कर पाने पर आत्म-ग्लानि के साथ लिखता है—

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका।

जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित काय।
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर,
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर !

अभिप्राय यह कि कवि जानता है कि किस प्रकार अर्थ का संचय किया जाता है, पर वह अनर्थ से पूर्ण पथ है, अतः वह उस पर नहीं चल सकता। परिणामतः वह स्वार्थ समर में हारता रहा। न केवल एक बार वरन् जीवन-भर वह ऐसा ही बना रहा। उसने कभी किसी क्षीण का अन्न न छीना और न किसी के दृगों को विपन्न देखा। उसने दूसरे के आँसुओं में अपनी व्यथा का संधान पाया। ऐसे द्रवणशील कवि को कहाँ अवकाश मिलता कि वह अपनी पुत्री का उत्तम रीति से पोषण कर पाता। केवल सवा साल तक वह कवि के साथ रही और माँ की मृत्यु होने पर नानी की गोद में पलने चली गई। पुत्री अपने भाई के साथ ननिहाल में रही और कवि सरस्वती की आराधना में लीन रहा—

तब भी मैं इसी तरह समस्त
कवि जीवन में भी व्यर्थ व्यस्त
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द
पर सम्पादक गण निरानन्द
वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक पंक्ति दो में उत्तर।

दो वर्ष बाद कवि अपनी पुत्री को देखने ससुराल जाता है। वहाँ उसका दूसरा विवाह करने के लिए अनेक व्यक्ति आते हैं। तब कवि की उम्र छब्बीस की रहती है। वह विवाह टालने के लिए अपने को 'मंगली' बताता है। इस पर भी जब सासुजी आग्रह करती हैं तो कुण्डली ही फाड़ देता है। कारण यह कि पुत्री को देख-कर उसे विवाह बंधन प्रतीत होता है। वह विवाह नहीं करता। पुत्री के बड़े होने पर उसे उसके विवाह की चिन्ता सताती है। विवाह करे तो कहाँ ? अपनी कान्य-कुब्ज जाति में अर्थ की माँग का भीषण रूप उसे खलता है। दहेज और रूढ़ि की दास अपनी जाति को वह किस आक्रोशपूर्ण घृणा से देखता है, यह इन पंक्तियों में देखिए—

ये कान्यकुब्ज-कुल-कुलाङ्गार
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या, अर्थ खेद
इस विषम बेलि में विष ही फल
यह दग्ध मरुस्थल नहीं सुजल।

और वह निश्चय करता है कि इस रूढ़ि का पालन वह न करेगा। सौभाग्य से एक कान्यकुब्ज साहित्यिक युवक मिल जाता है। वह उसे अपनी स्थिति से अवगत कराता है। न दहेज न बारात, कुछ भी संभालना उसके लिए दुष्कर है। वह तो

विवाह के मंत्र भी स्वयं पढ़ने को उद्यत है। युवक राजी हो गया और विवाह हुआ। विवाह भी ऐसा कि जिसमें कोई स्वजन न था क्योंकि निमंत्रण ही नहीं भेजा गया था। कवि की मनोदशा का अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि पुत्री को शिक्षा देने के लिए उसे स्वयं ही प्रस्तुत होना पड़ा। वह कहता है—

माँ की कुल शिक्षा मैंने दी
पुष्प सेज तेरी स्वयं रची
सोचा मन में, वह शकुन्तला
पर पाठ अन्य वह अन्य कला।

अपनी पुत्री को शकुन्तला की समता के लिए रखकर कवि ने जो 'पर पाठ अन्य वह अन्य कला' कहा है उसमें उसके निविड़ एकाकीपन की कसक निहित है। यदि यह सौभाग्य भी कवि को प्राप्त होता तो बहुत था, किन्तु जिस पुत्री के लिए उसने विवाह नहीं किया वह भी न रही और कवि को लिखना पड़ा—

मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
युग वर्ष बाद जब हुई विकल
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही !

यह अनभ्र वज्रपात कवि ने सहा और मूक होकर सहा। किसलिए ? मात्र साहित्य-सेवा के लिए ! और एक क्षण को भी उसकी लेखनी ने विराम न लिया। पूरी कविता कवि की बेबसी और विद्रोह का ऐसा मिश्रण है कि रोमांच हुए बिना उसका पढ़ना संभव नहीं।

'सरोज-स्मृति' के बाद 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' शीर्षक कविता में कवि ने अपने आलोचकों के प्रति अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया है। इस कविता के द्वारा सहज ही कवि के सहिष्णु व्यक्तित्व की झाँकी मिल जाती है। इसमें भी उसके मन की व्यथा उभर-उभर आती है और हम सोचते हैं कि इतने विरोध के बावजूद कवि आगे बढ़ता गया तो इसीलिए कि उसे आत्मविश्वास था। व्यंग्यपूर्ण शैली में अपनी दृढ़ता का परिचय देते हुए कवि ने लिखा है—

मैं जीर्ण-साज बहु छिद्र आज
तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन,
मैं हूँ केवल पद-तल आसन
तुम सहज विराजे महाराज।
ईर्ष्या नहीं मुझे, यद्यपि
मैं ही वसंत का अग्रदूत,
ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि।

अपने जीवन की उच्चस्तरीय तपस्या में अपने समसामयिक कवियों में, सर्वाधिक श्रद्धा के पात्र होने पर भी कवि निराला को वन्दन-अभिनन्दन से चिढ़ थी।

प्रहार सहते-सहते उनका हृदय नितांत निराश हो गया था और अपनी व्यथा को स्वयं ही झेलना चाहते थे। वे अपनी 'हताश' शीर्षक कविता में चुनौती के स्वर में कहते हैं—

जीवन चिरकालिक क्रन्दन।
मेरा अन्तर वज्र कठोर
देना जी भरसक झकझोर
मेरे दुख की गहन अन्ध
तम-निशि का न कभी हो भोर
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता
इतना वन्दन-अभिनन्दन।

यह सन् १९२२ की कविता है। कवि आशा और निराशा के झूले में झूलता हुआ निरन्तर साहित्य-सृजन में लीन रहता है, किन्तु कभी-कभी जब दूसरों से अपनी तुलना करता है तो उसे लगता है जैसे वह रण में हार गया हो—

हो गया व्यर्थ जीवन, मैं रण में गया हार
सोचा न कभी
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी

कवि ने जो पथ चुना है वह सबसे भिन्न था। उसमें योगक्षेम की व्यवस्था की चिन्ता न थी। उसे तो हिन्दी की समृद्धि का लक्ष्य पूरा करना था और वह भी मौलिक अवदान के साथ। लेकिन 'हिन्दी वालों' ने उसे न समझा और कवि अकेला पड़ गया। 'मैं अकेला' कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है—

देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सान्ध्य बेला
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती जा रही
हट रहा मेला
जानता हूँ नदी झरने
जो मुझे थे पार करने
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख
कोई नहीं मेला।

अब तक जिन कविताओं के उदाहरण दिये गए हैं उनमें और उनसे मिलती-जुलती अन्य कविताओं में कवि-जीवन की जो झलक मिलती है वह प्रत्यक्ष रूप वाली आत्म-व्यंजना को प्रकट करती है। अप्रत्यक्ष रूप से आत्म-व्यंजना का आभास उसकी अन्य कविताओं से होता है।

अप्रत्यक्ष रूप से आत्म-व्यंजना करने वाली कविताओं में सबसे पहली बात है कवि की भक्ति-भावना। यह भक्ति-भावना किसी निष्क्रिय, एकांतसेवी भक्त की बैठे-ठाले की खिलवाड़ नहीं है, वह तो अंध-विश्वास के पाशों को छिन्न-भिन्न करते

हुए संघर्ष-पथ पर निरंतर आगे बढ़ते जाने वाली है। उसमें राष्ट्र-प्रेम भी मिला हुआ है। इसीलिए कवि नर-जीवन के समस्त स्वार्थों और अपने श्रमार्जित फलों को भारत माँ के चरणों पर चढ़ाने को प्रस्तुत होता है। उस वन्दिनी की अश्रु-जल-धौत विमल मूर्ति से प्रेरणा लेकर वह क्रूर काल को चुनौती देते हुए संकल्प करता है—

> बाधाएँ आएँ तन पर
> देखूँ तुझे नयन निर्भर
> मुझे देख तू सजल दृगों से
> अपलक उर के शतदल पर
> क्लेद युक्त अपना तन दूँगा
> मुक्त करूँगा तुझे अटल
> तेरे चरणों पर देकर बलि
> सकल श्रेय-श्रम-सिंचित फल

इस कार्य के लिए वह किसी प्रकार के प्रलोभन में नहीं फँसना चाहता और सब-कुछ सहने को उद्यत है। समस्त लांछना और तिरस्कार को सहते हुए वह बाधाओं को पार कर जाना चाहता है—

> लांछना-इन्धन हृदयतल जले अनल
> भक्ति नत-नयन मैं चलूँ अविरत सबल
> पार कर जीवन प्रलोभन समुपकरण
> प्राण संघात के सिन्धु के तीर मैं
> गिनता रहूँगा न, कितने तरंग हैं
> धीर मैं ज्यों समीकरण करूँगा तरण।

'जननि' और 'माँ' के रूप में कवि ने चाहे भारत माता की वन्दना की हो या शक्ति की या श्यामा की, वह सदैव क्लीवता और दीनता से मुक्ति का अभिलाषी रहा है। उसने अपने वन्दना-गीतों में कभी व्यक्तिगत सुख की कामना नहीं की। समस्त दलित और पीड़ितों का सुख उसका लक्ष्य है। सन् १९४५ में जब इन पंक्तियों के लेखक को इस युग-पुरुष का अतिथि होने का सौभाग्य मिला था तब आधुनिक कविता में प्रगतिवाद के प्रवर्तन की चर्चा चलने पर उसने सहज भाव से कहा था— "यों प्रगतिवादी विचारधारा का सूत्रपात तो हिन्दी में हमने ही किया है, अब चाहे कोई माने या न माने।" और सचमुच 'तोड़ती पत्थर', 'भिक्षुक', 'विधवा' आदि कविताओं में दीन और दलित के प्रति कवि की जो सहानुभूति प्रवाहित हुई है उसका उनके समकालीन कवियों में कहीं पता भी नहीं है। 'बेला', नये पत्ते' और 'अणिमा' की अनेक रचनाओं में तो उन्होंने पूँजीवाद की विकृति का खुले रूप में चित्रण किया है। लेकिन निराला का हृदय सदैव प्रार्थनारत रहा है। यह ऐसा तत्त्व है, जिसको विस्मरण नहीं किया जा सकता। उनकी 'अर्चना' और 'आराधना' में संग्रहीत रचनाएँ, जो उनकी रुग्णावस्था की हैं, इसका प्रमाण हैं। सचमुच उनमें भक्त कवि की

आत्मा का निवास था। 'आराधना' की एक कविता है—

भग्न तन, रुग्ण मन,
जीवन विषण्ण वन।
क्षीण क्षण-क्षण देह
जीर्ण सज्जित गेह
घिर गये हैं मेह
प्रलय के प्रवर्षण
चलता नहीं हाथ
कोई नहीं साथ
उन्नत, विनत माथ
दो शरण, दो शरण।[१]

इन पंक्तियों को पढ़कर लगता है जैसे कवि गोस्वामी तुलसीदास की भाँति रोग से विकल हो। अंत में तो कवि का मन जैसे मोम हो गया था। 'आराधना' की ही चार पंक्तियाँ और उल्लेख्य हैं। इनमें कवि की अंतरात्मा का दर्शन होता है। वे पंक्तियाँ हैं—

आँखों के तिल में दिखा गगन
वैसे कुल समा रहा है मन
तू छोटा बन, बस छोटा बन,
गागर में आयेगा सागर[२]

उनकी रचनाओं में ग्राम्य जीवन के प्रति उनकी तीव्र आसक्ति का भी दर्शन होता है। गाँव का मेला, गंगा-स्नान, जुते हुए खेत, लहलहाती फसलें, किसान-मज़दूरों के आमोद-प्रमोद आदि का चित्रण करने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। छायावादी कवि होने पर भी उनमें गाँव के प्रति यह जो स्वाभाविक लगाव दिखाई देता है वह उनकी अपनी विशेषता है। हमें निराला के काव्य का अध्ययन करते समय ग्राम्य जीवन के जो बहुविध चित्र मिलते हैं उनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि कथाकारों में यदि प्रेमचन्द ने ग्राम को अंतर की आँखों से देखा है तो छायावादी कवियों में निराला ने। 'देवी सरस्वती' शीर्षक कविता इस दृष्टि से बड़े महत्त्व की है। उसमें ऋतु के अनुसार ग्राम्य जीवन के विभिन्न चित्र हैं। उदाहरणार्थ शरद ऋतु में ग्राम का यह चित्र देखिए—

सिमटा पानी खेतों का, ओट पर चले हल
पांस खेत किये जो गये जोत कर मखमल
डाले बीज चने के, जव के और मटर के
गेहूँ के, अलसी-राई-सरसों के, कर से

---

१. आराधना, पृष्ठ ६२।
२. वही, पृष्ठ ८।

एसे बाह्-बाह की वीणा बजी सुहाई
पौधों की रागिनी सजीव सजी सुखदाई
सुख के आँसू दुखी किसानों की जाया के
भर आये आँखों में खेती की माया के
हरी-भरी खेतों की सरस्वती लहराई
मग्न किसानों के मन उन्मद बजी बधाई
खुली चाँदनी में डफ और मंजीरे लेकर
बैठे गोल बांधकर लोग बिछे खेसों पर
गाने लगे भजन कबीर के, तुलसीदास के
धनुष भंग के और राम के बनोबास के
कतकी में गंगा स्नान की बड़ी उमंगें
सजी गाड़ियाँ, चले लोग, मन चढ़ती चंगें
मेले में खेती के कुछ सामान खरीदे
देखे हाथी घोड़े रब्बे, लौटे सीधे

'हरी भरी खेतों की सरस्वती लहराई' कहकर कवि ने जैसे ग्रपनी कविता का मूलमंत्र ही हमारे समक्ष रख दिया है। जन-जीवन के प्रति निरालाजी की यह ग्रासक्ति ही उनके जीवन का वह ग्राकर्षण कही जा सकती है, जिसने उनके व्यक्तित्व को तरलता दी थी।

कवि निराला भारतीय संस्कृति से ग्रोतप्रोत थे ग्रौर ग्रपने ग्रतीत पर उन्हें बड़ा गर्व था। 'जागो फिर एक बार', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', 'यमुना के प्रति', 'तुलसीदास', 'सहस्राब्दि' ग्रौर 'भगवान बुद्ध के प्रति' जैसी कृतियों में उन्होंने बार-बार भारत के स्वर्णिम ग्रतीत का चित्रांकन किया है। इन कविताग्रों में उन्होंने भारतीय दर्शन ग्रौर ग्रध्यातम की महत्ता को ग्रोजपूर्ण शब्दों में व्यक्त करने के साथ-साथ जड़वाद पर घोर प्रहार किया है। 'भगवान बुद्ध के प्रति' कविता में वे कहते हैं—

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा, सुख के लिये खिलौने जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के स्थल-जल अम्बर
रेल तार बिजली-जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे मानव, वर्ग से वर्ग गण
भिड़ें राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विलक्षण
हँसते हैं जड़वाद ग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर
विकृत नयन मुख, कहते हुए, अतीत भयंकर
था मानव के लिए पतित था वहाँ विश्व मन
अपटु, अशिक्षित, वन्य हमारे रहे बन्धुगण

नहीं वहाँ था कहीं आज का मुक्त प्राण यह
तर्क सिद्ध है, स्वप्न एक है विनिर्वाण यह !

'जागो फिर एक बार' में सुप्त भारतवासियों को अपनी विस्मृत वीरता का ज्ञान कराने में 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' में जयसिंह जैसे औरंगज़ेब के क्रीत दासों को कर्तव्य ज्ञान कराने में कवि का भाव यही था कि हिन्दू अपने गौरव को पहचान लें। 'सहस्राब्दि' इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसमें कवि ने भारत के पुरातन गौरव का पूरा इतिहास समाहित कर दिया है। बुद्ध, महावीर, शंकर, रामानुज आदि ने भारतीय जनता के जीवन को दर्शन की जिस श्री से विभूषित किया है, उसका परिचय प्राप्त कर कवि का दार्शनिक रूप समझने में सुविधा होती है।

सारांश यह है कि निराला के काव्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की आत्म-व्यंजना मिलती है। उसके आधार पर एक ओर हम उनकी उस जीवन-गाथा को जान सकते हैं, जिसमें समाज के प्रति विद्रोह के कारण उन्हें एकाकी ही परिस्थितियों से लड़ना पड़ा तो दूसरी ओर उनके देशभक्त, जन-दुख कातर, दार्शनिक और अध्यात्म-प्रिय व्यक्तित्व का भी आभास पा लेते हैं। वैसे निराला का जीवन पौरुष का पुंजीभूत रूप था। उनका पौरुष भी ऐसा था जो साहित्य की वेदी पर चढ़कर बलिदान की अक्षय सुगन्ध बिखेर गया है। उनकी मृत्यु जिस करुण स्थिति में हुई उसमें उन्हीं की ये पंक्तियाँ कितनी सटीक बैठती हैं—

मरण को जिसने वरा है
उसी ने जीवन भरा है।
परा भी उसकी, उसी के
अंक सत्य-यशोधरा है।

निराला का काव्य मूल्यांकन-१

नन्ददुलारे वाजपेयी

कवि और उसके काव्य का विवेचन और मूल्यांकन कई स्तरों पर किया जा सकता है, और यह भी सच है कि विभिन्न समयों और युग-प्रवृत्तियों के प्रभाव से उक्त विवेचन और मूल्यांकन में परिवर्तन भी होते रहते हैं। परन्तु इन अनिवार्य परिवर्तनों के रहते हुए भी कवि की मूल वस्तु के स्वरूप और उसके काव्योत्कर्ष के सम्बन्ध में कुछ स्थायी और अपरिवर्तनीय धारणाएँ भी रहा करती हैं। इन धारणाओं की पुष्टि करना आवश्यक होता है, अन्यथा किसी भी कवि के सम्बन्ध में राष्ट्रीय प्रतिक्रियाओं का स्थिरीकरण नहीं हो पाता। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं का स्थिरीकरण प्रत्येक युग के समीक्षकों का आवश्यक दायित्व है।

हिन्दी के आधुनिक युग के कुछ विशिष्ट कवियों के सम्बन्ध में हिन्दी समीक्षकों ने जो विवेचन किए हैं उनके फलस्वरूप उन कवियों की एक विशिष्ट मानरेखा हिन्दी साहित्य में बन चुकी है। यद्यपि विभिन्न विचारभूमियों से काव्य की परख करने वाले समीक्षकों की कमी हिन्दी में नहीं है, परन्तु यह सन्तोष की बात है कि इन विभिन्न समीक्षा-दृष्टियों के रहते हुए प्रमुख कवियों के विवेचन में एक समरसता का निर्माण भी हो चुका है। यह उपलब्धि जहाँ एक ओर हिन्दी समीक्षा की सन्तुलित गतिविधि की परिचायक है वहीं, दूसरी ओर, यह कवियों के अपने विशिष्ट प्रदेय से भी सम्बन्ध रखती है।

कवि निराला के काव्य के सम्बन्ध में भी युगीन समीक्षकों की प्रतिक्रियाएँ बहुत-कुछ परिणत स्थिति में पहुँच चुकी हैं, परन्तु कदाचित् वे उतनी परिणत नहीं हैं, जितनी अपेक्षित हैं। निराला का कवि-व्यक्तित्व इतनी बहुमुखी सृष्टियों का आधार है, और उनके काव्य में इतनी अनेकरूपता है, कि उनका समग्र समीक्षण उतना आसान नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त निराला के व्यक्तित्व में भी इतना वैविध्य और विलक्षणताएँ रही हैं कि समीक्षकों को उन्हें ठीक से पहचानने में कठिनाई होती रही है। दीर्घ काल तक उनके काव्य-व्यक्तित्व पर अत्यन्त विरोधी प्रतिक्रियाएँ होती रहीं और ज्योंही वे प्रतिक्रियाएँ समाप्त हुईं, निराला के कवि-व्यक्तित्व को दूसरे प्रकार की, और बहुत-कुछ अतिरंजित आशंसाएँ और स्तुतियाँ मिलने लगीं।

इन परस्पर-विरोधी वक्तव्य-समुच्चयों के बीच निराला-काव्य का सन्तुलित विवेचन यदि परिस्फुट नहीं हुग्रा है, तो इसमें ग्रकेले समीक्षकों का दोष नहीं है ।

केवल पाठक-समाज में ही नहीं, ग्रनेक बार जानकार क्षेत्रों में भी, निराला-काव्य के सम्बन्ध में ग्रपरिनिष्ठित धारणाएँ व्यक्त की जाती हैं । वास्तव में इन धारणाग्रों से ही निराला-काव्य के वास्तविक ग्राकलन में सबसे ग्रधिक ग्रवरोध की स्थिति ग्राया करती है । उदाहरण के लिए, हम यहाँ कुछ ऐसी धारणाग्रों का उल्लेख करेंगे जिनका स्पष्टीकरण हमारी दृष्टि में ग्रावश्यक है । निराला का युग प्रमुखतः प्रगीत-युग रहा है ग्रौर इस युग का काव्योत्कर्ष वस्तुतः प्रगीत काव्य का उत्कर्ष ही कहा जा सकेगा। परन्तु प्रगीत-सम्बन्धी धारणाएँ ग्राज भी ग्रधूरे ग्रौर ग्रपर्याप्त रूप में विज्ञापित होती हैं । इंगलैण्ड में प्रगीत-काव्य के लिए वैयक्तिक संवेदन ग्रौर उच्छ्वास की इतनी महत्ता बता दी गई है कि चित्रांकन-प्रधान, वस्तुमुखी प्रगीतों को प्रगीत-काव्य की सीमा में लेना भी लोगों को स्वीकार नहीं होता । प्रगीत का ग्रर्थ व्यक्ति-वेदना के प्रकाशन तक सीमित होने के कारण देश-विदेश की ग्रनेक प्रगीत-सृष्टियाँ ग्रपना यथार्थमूल्य प्राप्त नहीं कर पातीं, परन्तु इस ग्रोर इन वेदना-मूलक पारिभाषिकों का ध्यान भी नहीं जाता ।

निराला वस्तुमुखी ग्रौर चित्रणात्मक विशेषताग्रों के प्रगीत कवि हैं । उनके प्रगीतों में वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ ग्रत्यन्त विरलता से प्राप्त होती हैं, परन्तु जहाँ-कहीं वे मिलती हैं वहाँ वे शृंगारमूलक न होकर करुणरस की प्रतिक्रियाग्रों से समन्वित होती हैं ग्रौर गम्भीरतम भाव-प्रक्रिया उत्पन्न करती हैं ।

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूं ग्राज जो नहीं कहीं !

इन ग्रौर ऐसी पंक्तियों का लेखक यदि प्रगीत-भूमिका पर नहीं माना जाएगा तो दूसरे कौन कवि होंगे जिन्हें यह भूमिका दी जा सकेगी ?

निराला कोई ग्रात्मलीन कवि नहीं थे । उनकी मनस्विता वैयक्तिक वेदना-भूमियों को पार कर गई थी । वे कुशल कलाकार भी थे ग्रौर काव्य-निर्माण के दायित्व को बहुत ग्रच्छी तरह समझते थे । ग्राधुनिक प्रगीत कवि ग्रपने भावात्मक उद्गारों के उद्वेग में पड़कर प्रगीत के कला-सौष्ठव को विस्मृत कर जाते हैं, किन्तु निराला इस सम्बन्ध में सदैव सजग रहे हैं, कला की दृष्टि से उनके प्रगीतों में जो रूप-विन्यास मिलता है, वह ग्रन्यत्र बहुत-कुछ विरल है । रूप या ग्राकृति का यह विन्यास यद्यपि क्लॉसिकल काव्य की परम्परा से उपलब्ध हुग्रा है, परन्तु वह ग्राधुनिक प्रगीत के लिए भी पूर्णतः उपादेय है । इसी प्रसंग में निराला की प्रगीत-सृष्टियों में तथाकथित तल्लीनता या ग्रात्मलीनता का गुण न पाकर लोग उन्हें 'राम की शक्तिपूजा' ग्रौर 'जागो फिर एक वार' का वीरगीतकार ही मानते हैं । परन्तु उन्हें यह देखना चाहिए कि इन वर्णनात्मक वीरगीतों की ग्रपेक्षा निराला की रुचि 'बादल राग' जैसी कविताग्रों की सृष्टि की ग्रोर कम नहीं रही है । चित्रात्मक कल्पनाग्रों से वेष्टित 'बादल राग' की रचनाएँ विशुद्ध प्रगीत का उत्तम उदाहरण हैं। इनमें ग्राख्यानक का कहीं स्पर्श नहीं हैं ग्रौर न कहीं उद्बोधन का स्वर है ।

प्रगीत काव्य-रूप सम्बन्धी इस विचार-भेद का निराकरण किये बिना ही कुछ लोग निराला-काव्य को अकेले वीर-रस की भूमिका पर प्रतिष्ठित देखना चाहते हैं। यत्र-तत्र आई हुई कवि की उदात्त भावधारा और तदनुरूप भाषा-योजना को देखकर लोग इस प्रकार के निष्कर्षों पर पहुँच जाते हैं कि निराला का काव्य वीरकाव्य है। यह अधूरी धारणा भी हिन्दी साहित्य में ज़ोर पकड़ती रहती है, किन्तु यह भ्रान्ति भी प्रायः वैसी ही है जैसी प्रगीत-काव्य-सम्बन्धी ऊपर प्रदर्शित भ्रान्ति है। हिन्दी के आधुनिक कवियों के काव्य में इतना रस-वैविध्य नहीं है जितना निराला के काव्य में है। कदाचित् इस कारण भी ऊपर की भ्रान्ति को पनपने का अवसर मिला है। निराला के काव्य-रस का सम्बन्ध उनके अतिक्रामक व्यक्तित्व से रहा है। वे अनेक रसों की काव्य-रचना समान सौकर्य से करते रहे हैं। यह प्रश्न भी नहीं है कि उनमें से किसी रस को प्रमुखता दी जाए। निराला विभिन्न प्रेरणा-क्षणों में विभिन्न रसों की काव्य-रचनाएँ करते रहे हैं। उनके काव्य-रस को इस रसभूमि पर लाकर देखना होगा जहाँ रसों के नाम नहीं रह जाते, केवल रस रहता है। यह बात इसलिए कहनी पड़ती है कि निराला की कविता में किसी एक रस का आतिशय्य नहीं है। रस के स्तर पर वे वैविध्य के साथ सम्पूर्ण सन्तुलन का भी परिचय देते हैं, जो उनके विशिष्ट व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया या परिणाम है।

संयोग या दुर्योगवश आधुनिक हिन्दी कविता को वादों का आवरण भी पहनाया गया है और वाद-भूमिका पर काव्य-युगों का नामकरण भी किया गया है। काव्य के साथ वादों की यह संस्थिति छोटी सीमाएँ बनाने में उपयोगी हो सकती है और हुई भी है। सामान्य काव्य-प्रवृत्तियों और काव्यालेखन की अभिज्ञता प्राप्त करने के लिए कई बार वाद उपयोगी होते हैं। बदलती हुई युगचेतना काइंगित करने के लिए भी कभी-कभी वादों की आवश्यकता पड़ती है। वाद वर्गीकरण की एक विधि भी कहे जा सकते हैं। परन्तु इससे अधिक, काव्य में वादों का योग साहित्यिक विचारणा के लिए केवल अनुपयोगी ही नहीं, बाधक भी हो जाता है। श्रेष्ठ कवि वाद को लक्षित करके काव्य-रचना नहीं करता। श्रेष्ठ क्या, कोई भी कवि अपने रचना-क्षणों में वाद का असर लेकर चलना नहीं चाहता।

निराला जैसे अनेक क्षितिजों और दिगन्त-भूमिकाओं के कवि को वाद की सीमा में बाँधना और भी कठिन है, यद्यपि निराला छायावाद के प्रवर्तकों में परिगणित होते हैं। निराला के साथ छायावाद शब्द का सम्बन्ध ऐतिहासिक भूमिका पर बना था, परन्तु आरम्भ से ही उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ उनको छायावाद की सीमित भूमि से बाहर खींच रही थीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से लेकर परवर्ती अनेक समीक्षकों ने निराला के काव्य में स्वच्छन्दतावाद का वास्तविक प्रसार देखा है। छायावाद की काव्य-चेतना सन् १९३६ तक अपने पूर्ण विकास पर पहुँचकर क्रमशः क्षीण और विरल होने लगी। तब एक ओर छायावाद की भावभूमि अधिक अन्तर्मुख होकर महादेवी के रहस्यकाव्य में परिणत हुई और दूसरी ओर निराला के काव्य में अधिकाधिक बहिर्मुखता प्राप्त करती हुई स्वच्छन्दतावाद के समस्त सीमान्तों का परिस्पर्श करने लगी। इस

प्रकार छायावादी काव्य की सम्पूर्ण व्याप्ति निराला और महादेवी के काव्य के दो छोरों के भीतर देखी जा सकती है। सन् १९३६ के पश्चात् निराला की कविता में छायावाद की स्वीकृत परिधियाँ और भी क्षीण होती गईं, यद्यपि 'तुलसीदास' और राम की शक्ति पूजा' में भी छायावाद के स्मृति-चिह्न विद्यमान हैं। व्यंग्यात्मक कविताओं के उन्मेष के पश्चात् निराला को कुछ लोग प्रगतिवादी या प्रगतिशील भी मानने लगे और कुछ लोगों ने उसी प्रकार की रचनाओं में निराला के प्रयोगवाद की झलक भी देखी। निराला के काव्य में प्रगतिशील और प्रयोगशील तत्त्व तो आरम्भ से ही विद्यमान थे। तब, इन विशेष रचनाओं को इस प्रकार का नामकरण क्यों और कैसे दिया गया, समझना कठिन है। हमारी दृष्टि में निराला के स्वच्छन्दतावादी काव्य-विकास की ये दो ऐसी आंशिक परिणतियाँ हैं जिनके आधार पर स्वतन्त्र नामकरण नहीं किया जा सकता, यद्यपि यह स्वीकार किया जा सकता है कि अपने विक्षेपकाल में निराला में हल्के प्रयोगों की मात्रा बढ़ने लगी थी। सन् '५० के पश्चात् निराला के आत्मनिवेदनात्मक अन्तर्मुखी काव्य को कुछ लोग अन्तश्चेतनात्मक और अतियथार्थवादी भूमिका पर परखना चाहते हैं। परन्तु निराला की कविता इस पकार की ऐकान्तिक भावभूमियों पर कभी नहीं गई। उनका मूल स्वच्छन्दतावादी स्वर किसी भी समय तिरोहित नहीं हुआ। अपनी इन धारणाओं के स्पष्टीकरण के लिए हम निराला के काव्यविकास का एक धारावाहिक चित्र उपस्थित करना आवश्यक समझते हैं।

निरालाजी की काव्य-सृष्टि के प्रथमोन्मेष क्षण से लेकर जब तक 'मतवाला' में उनकी कविताएँ निकलती रही तब तक की अवधि को उनका प्रथम काव्य-चरण कहा जा सकता है। तिथि की दृष्टि से सन् १९१६-१७ और सन् १९२७ इस अवधि के सीमान्त हैं। प्रथम 'अनामिका' १९२३ और 'परिमल' १९३० में प्राप्त सारी रचनाएँ निरालाजी ने इस काव्य-चरण में प्रस्तुत की हैं। इस युग में निराला-काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका स्वच्छन्द स्वरूप है। इसी काल में उन्होंने काव्य के बाह्य-शृंखला-छन्दों को जोड़ने का उपक्रम किया था और मुक्त-छन्द में काव्य-रचना की थी। कतिपय रचनाएँ छन्दोबद्ध भी हैं, किन्तु उनमें भी निराला के विद्रोही, उद्वेगमय उत्साह का व्यक्तित्व व्याप्त है। इसी समय जहाँ 'बादल राग' और 'जागो फिर एक बार' जैसी रचनाएँ एक क्रांति का आह्वान करती हैं, वहीं अतीत का एक स्वर्णिम स्वप्न उपस्थित करने वाली 'यमुना के प्रति' जैसी कविता भी है, जिसमें वियोग-स्मृति की प्रधानता होते हुए भी इतना उद्दाम वेग है कि सारे छन्द और बन्ध एक-दूसरे में विन्यस्त हो गए हैं। भावोद्वेग की स्थिति में जिस प्रकार की असंयमित समृद्धि, जिस प्रकार की अनर्गल प्रखरता उन्मेष पाती है उसका पूरा परिचय 'यमुना के प्रति' में मिल जाता है। भावावेग व्यवस्था और विन्यास की सीमाओं का अतिक्रमण कर गया है। इस कविता के बन्धों को यदि हम अदल-बदलकर पढ़ें तो भी प्रभाव में कोई बड़ा अन्तर नहीं आता। संयमित अन्विति की यह कमी क्षीण काव्य-क्षमता की नहीं, भावोद्वेग के आतिशय्य की सूचना देती है।

इसी समय की निरालाजी की 'तुम और मैं' शीर्षक कविता बहुख्यात है। उसमें उपमानों का संप्लव है, किन्तु विशुद्ध तारतम्य की दृष्टि से, विशुद्ध रूप से संग्रथन की

दृष्टि से, एक असम्बद्धता भी है। अर्थात् उसमें 'तुम' और 'मैं' के जितने सम्बन्ध हैं, प्रिय और प्रिया के जितने विनियोग-संकेत हैं, ईश्वर और जीव की अनेकविध अन्योन्याश्रयी जितनी निगूढ भंगिमाएँ हैं, कल्पना की प्रखरता और मनोगति के अजस्र वेग ने उनका सहयोग सहज किया है। परवर्ती रचनाओं का-सा भाव-प्रसार का सुनिश्चित मार्ग उनमें नहीं दिखाई देता। 'जुही की कली' में जो उद्वेग है, आलोचकों ने उसकी चर्चा भी की है। 'स्नेह-स्वप्न-मग्न' सोती हुई जुही की कली पर 'निपट निठुराई' करते हुए निर्दय नायक 'पवन' उच्छृंखल हो गया है। इस आरोप को आरोप न मानकर निराला की उस यौवनकाल की अबाध भावप्रवणता का स्मृति-चिह्न मानना चाहिए। 'प्रखरता' और 'पौरुष' इस युग की काव्य-रचना के लिए दो विशेषण दिए जा सकते हैं।

'अनामिका' में 'पंचवटी-प्रसंग' शीर्षक जो काव्यरूपक है वह उतना अभिनेय नहीं, क्योंकि उसमें अतिशय प्रवहमानता, धारावाहिकता, और वेग है। इतनी वेगवती वस्तुओं को सुनिश्चित नाट्य-भूमिका नहीं दी जा सकती। अतः साहित्यिक नाट्य की अपेक्षा यह कृति लोक-नाट्य के अधिक समीप है। साहित्यिक नाट्य में, चाहे वह गीति-नाट्य हो या काव्य-रूपक, भाव-सन्तुलन, संवादों की उपयुक्तता, वाक्यों में विषयानुरूपता, के तत्त्व होते हैं। इसके विपरीत लोक-नाट्य कलात्मक योजना और अभिव्यंजना के सौन्दर्य पर उतना आश्रित नहीं रहता, जितना तथ्य-कथन या वस्तु-कथन पर। इस दृष्टि से पंचवटी-प्रसंग एक स्वच्छन्दतावादी काव्य-कृति है जिसने संवादों की शैली अपना रखी है, काव्य-रूपक के वाह्य-रूप को अपना लिया है। वास्तविक काव्य-रूपक बनने के लिए उसे कुछ अधिक संश्लिष्ट, व्यवस्थित नाट्यकला की आवश्यकता थी।

अनेक कवियों के प्रारम्भिक काव्योन्मेष में कलापक्ष की सापेक्षिक विरलता के साथ भावोन्मेष की अजस्रता मिलती है। फिर क्रमशः संयम और संतुलन का आगमन होता है। विशेष साहित्यिक युगों के क्रमिक विकास में भी समानान्तर स्थितियाँ लक्षित होती हैं। दृष्टान्त-स्वरूप प्राचीन ग्रीक नाट्यकला के तीन विख्यात प्रतिनिधि एस्काइलस, सोफोक्लिज़ और यूरीपाइडिस हैं। एस्काइलस ग्रीक नाट्य के प्रथमोत्थान का प्रतिनिधि था, अतएव उसके नाटकों में भावतत्त्व अत्यन्त सबल और पुष्ट है, किन्तु रेखांकन उतना ही ऊबड़-खाबड़ है। सोफोक्लिज़ के नाटकों में माधुर्य की वृद्धि के साथ भाव और कलापक्ष का एक समन्वय हुआ है। अतः समीक्षकों ने उन्हें अधिक उत्तम कोटि का नाटककार माना है। उनकी कला में सौन्दर्य निस्सन्देह अधिक है, किन्तु एस्काइलस के प्रशंसकों के अनुसार पुरुषत्व का अपना अलग सौन्दर्य होता है, पौरुष-शक्तिमत्ता—स्वयं काव्य का अभीप्सित गुण है। यूरीपाइडिस में कलापक्ष का वैशिष्ट्य है, किन्तु भाव-पक्ष के निर्माण की मूलक्षमता में, जीवन-तत्त्वों के मूल सृजन में, वह उक्त दोनों कलाकारों की समता नहीं करता। स्वच्छन्दतावादी काव्य के अन्तर्गत वर्डसवर्थ, कीट्स और टेनीसन लगभग अनुरूप भूमिका उपस्थित करते हैं। प्रश्न है कि हम व्यक्तित्व को प्रधानता दें और भावपक्ष की सशक्तता को मुख्य मानें, अथवा अभिव्यंजना के कौशल या सौन्दर्य-प्रसाधन को अधिक महत्त्व दें? संतुलन का मध्य-मार्ग सत्य के अधिक समीप है। पर संतुलन निराला ने अपने काव्य-विकास के द्वितीय चरण में प्राप्त किया। प्रथम चरण पूर्ण स्वच्छन्दतावादी, विद्रोही भूमिका पर अंकित

है । इसका साहित्यिक सौष्ठव भावपक्ष को लेकर बड़ी ऊँचाई तक जाता है, किन्तु कला-नियोजना की आवश्यकता को परखने पर सीमाओं का परिचय मिलता है। यह कहना होगा कि भावपक्ष की प्रखरता कलापक्ष की न्यूनता को पूर्ण कर देती है ।

सन् १९२७-२८ से निरालाजी के काव्य का द्वितीय चरण प्रारम्भ होता है जो सन् १९३५-३७ तक चलता रहता है । इस अवधि में उन्होंने अधिकांशतः गीतों की सृष्टि की। 'गीतिका' (१९३६) के समस्त गीतों के अतिरिक्त कुछ स्फुट गीत भी हैं जो 'अनामिका' (१९३८) की द्वितीय आवृत्ति में प्रकाशित हुए हैं । प्रारम्भिक प्रगीत रचनाओं की तुलना में ये परवर्ती प्रगीत रचनाएँ अधिक संयत और प्रायः छन्दोबद्ध हैं। उदाहरणार्थ उनकी 'वासन्ती' नामक कविता उनके सामान्य प्रगीतों से अधिक लम्बी होने के अतिरिक्त अधिक संयमित भी है । उसमें उद्दाम प्रवेग नहीं है, किन्तु इसीलिए उसकी आलंकारिक योजना अधिक सुन्दर हो सकी है । भाव की दृष्टि से इस समय के गीत शृंगारिक हैं । शृंगार के अन्तर्गत मानवीय शृंगार और प्राकृतिक शृंगार दोनों आते हैं । प्रथम में नारी अनेक रूपों में चित्रित है, पारिवारिक जीवन की अनेक छवियाँ अंकित हैं। प्राकृतिक शृंगारके पक्ष में बहुसंख्यक ऋतु-गीत हैं। यह शृंगारिकता, नारी और प्रकृति की अनुरागमयी सौन्दर्य-भूमिकाओं का यह सघन चयन, निराला के काव्य के द्वितीय उत्थान का केन्द्रीय तत्त्व है, जबकि प्रारम्भिक रचनाओं में वीररस की कविताएँ भी हैं । शृंगार रस से भिन्न भाव-भूमि की रचनाएँ भी 'गीतिका' में अप्राप्य नहीं हैं। भाव की दृष्टि से इन रचनाओं का दूसरा पक्ष प्रार्थना-परक गीतों का है । जननी को सम्बोधित करते हुए बहुत से विनय और प्रार्थना के गीत लिखे गए हैं । इन गीतों में भी मुख्यतः उल्लास का बोध करते हुए कर्तव्य-मार्ग पर चलने के लिए शक्ति की रचना की गई है । 'दे मैं करूँ वरण, जननि ! दुःखहरण, पद-राग-रंजित मरण' जैसी सुविन्यस्त और सशक्त कविताएँ इस श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं । तृतीय श्रेणी दार्शनिक गीतों की है जिसका एक सुन्दर दृष्टान्त 'कौन तम के पार रे कह' है । सूक्ष्म तत्त्व के लिए भी रूपयोजना का कौशल इनमें दर्शनीय है। शेष स्फुट गीतों में 'भारति, जय विजय करे !' जैसा चुस्त विन्यास वाला राष्ट्रगीत भी सम्मिलित है ।

निराला को छायावादी और रहस्यवादी कवि कहा गया है । प्रश्न उठता है कि उनके इस युग के शृंगारिक गीतों में छायावाद और रहस्यवाद किन रूपों में उपस्थित हुआ है ? शृंगारिक वर्णनों में आध्यात्मिक आभा दो रूपों में आ सकती है : एक तो शृंगार इतनी गहराई और व्याप्ति का बोध करे कि उसमें आध्यात्मिकता का आभास उत्पन्न हो जाए, और द्वितीय, शृंगारिक भावना का पर्यवसान किसी आध्यात्मिक भूमिका पर किया जाए । निरालाजी ने दोनों ही प्रक्रियाओं का प्रयोग किया है। उनके शृंगार में जो परिष्कृत भूमिकाएँ हैं, मार्मिक चित्रण हैं, वे मात्र वस्तु-वर्णन से, रूप-चित्रण से ऊँचे उठे हुए हैं । अन्य कविताओं में ससीम की असीम में परिणति है, जिसके द्वारा लौकिक चित्रों ने साथ उनके पर्यवसान में दार्शनिक तथ्य का संकेत मिल जाता है । यह दूसरी पद्धति पुराने गीतिकारों से मिलती-जुलती है । सूरदास आदि कवि कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का वर्णन करते हुए समापन में उनके प्रति

प्रणति-निवेदन करते हैं। निरालाजी ने साकार तत्त्व को न लेकर बहुधा एक विराट रूप में रचना को पर्यवसित किया है। श्रृंगार-वर्णन के सीमित चित्रों को विराट रूप में परिणत करना प्राचीन कवियों की तुलना में उनकी विशेषता है। कहा जाता है कि रवीन्द्र के काव्य में भी यह वस्तु मिलती है, अर्थात् वे लौकिक सौन्दर्य को अलौकिक उत्थान देते हैं, दार्शनिक समापन देते है। यह कव्य की अद्वैतवादी भूमिका है, यही निराला का अद्वैतवादी दर्शन हैं, यही उनकी रहस्योन्मुखी सृष्टि है और यही उनके इन गीतों का कला-शिल्प है।

गीत-सृष्टि की दृष्टि से निराला विद्यापति, सूर और मीरा की श्रेणी में आते हैं। यह स्मरणीय है कि गीत वास्तव में काव्य-कला और संगीत-कला के योग होते हैं। इसीलिए उनका सौन्दर्य-सौष्ठव, उनकी भाषागत विशेषताएँ और उनके भावगत स्वरूप तथा प्रकार स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करने योग्य हैं। उनकी ये विशेषताएँ सामान्य प्रगीत की भूमिका पर नहीं परखी जा सकतीं। गीत प्राचीन काव्य है, जबकि प्रगीत अधिक आधुनिक है। गीत की पुरानी परम्परा का नए गीतों पर क्या प्रभाव पड़ा है? नए गीत ऐसे उपमानों का आधार लेकर चलते हैं जो परम्परा से प्राप्त हैं। नई कल्पना-छवियों का गीतों में प्राधान्य नहीं होता, क्योंकि उनमें सीधे रस की सृष्टि होती है। गीत सामूहिक मण्डलियों में गाए जाते हैं। संगीत का सम्पर्क पाकर ही उनका सौन्दर्य खिलता है। चूँकि गीत सार्वजनिक गोष्ठियों की वस्तु है, अतः श्रोता मण्डली का उसके साथ दृढ़ सम्बन्ध है। वह केवल पाठ्य-वस्तु नहीं, गायन के द्वारा सामाजिकों के आनन्द की वस्तु है। सामाजिक पक्ष की इस प्रधानता के कारण ही सुपरिचित अलंकार उसमें अधिकतर रहते हैं। अलंकार ही क्यों, सुपरिचित विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के विन्यास का आलेख भी गीतों में तात्कालिक प्रभाव की दृष्टि से किया गया है।

संगीत की दृष्टि से गीत-योजना के अनेक रूप होते हैं। कुछ गीत शास्त्रीय राग-रागिनियों में बँधे रहते हैं। निराला के अनेक गीत इसी शास्त्रीय संगीत का अनुवर्तन करते हैं। दूसरा है एक स्वच्छन्द संगीत, जिसकी धारा आधुनिक काल में चल पड़ी है। इसमें कतिपय भारतीय लयों, पाश्चात्य लयों, ग्राम्य गीतों का समन्वय मिलता है। निरालाजी के अनेक गीत इस स्वच्छन्द शैली में लिखे गए हैं। शास्त्रीय भूमिका से दूर रहकर महादेवी और प्रसादजी के गीत अधिकांशतः इसी भूमिका पर विरचित हैं। संगीत में अधिक निष्ठा होने के कारण निरालाजी के गीत मूलतः गेय हैं, जबकि प्रसाद और महादेवी के गीत मूलतः पाठ्य हैं। तीसरा आधार लोकगीतों, जनगीतों का है। इनकी अलग ध्वनियाँ और अलग छन्द-योजनाएँ हैं। उनमें निरन्तर अभिवृद्धि भी होती रहती है। इन जनगीतों में फारसी-उर्दू की कव्वालियाँ, उत्तर प्रदेश का बिरहा, कजरी इत्यादि अनेक प्रकार हैं, जो शास्त्रीय संगीत के बाहर हैं। उनमें विशेष लोकाकर्षण रहता है और लोकभूमिका पर उन्हें पढ़ा और गाया भी जाता है। ऐसे गीत भी निरालाजी ने लिखे हैं। उर्दू और फारसी की बहर को भी उन्होंने 'गीतिका' में अपनाया है। विविधता और प्रयोग की दृष्टि से निरालाजी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ गीतकार हैं।

गीत के छन्द और कविता के छन्द पृथक्-पृथक् होते हैं। मात्राओं की गणना दोनों में समान रूप से नहीं जा सकती। गीतों का छन्दविधान संगीत के आरोह-अवरोह

पर आश्रित है। अनेक बार स्वर-साधना के अनुरूप गीत की मात्राओं को किसी स्थान पर अधिक विस्तार देना पड़ता है और किसी स्थान पर संक्षिप्तीकरण की आवश्यकता पड़ती है। सफल गीतकार वह है जो संगीत की मात्राओं के अनुरूप अपने गीत-छन्दों का निर्माण करे। यों तो संगीत के विशेषज्ञ किसी भी रचना को स्वर में बाँध सकते हैं, किन्तु उनमें कृत्रिम रूप से खींचतान करनी पड़ती है। निराला के गीतों में स्वाभाविक स्वर-संधान की क्षमता है। इस प्रकार उनमें संगीत और काव्य-कला के दोहरे प्रयोजन सिद्ध होते हैं, जिसका अन्य कवियों में सापेक्षिक अथवा सम्पूर्ण अभाव है।

गीतों की भाषा, पदयोजना, सरस स्वाभाविक और परम्परानुमोदित होनी चाहिए। क्लिष्ट, अस्पष्ट और गढ़े हुए अप्रचलित शब्द उसकी सार्वजनिकता में व्याघात पहुँचाते हैं। गीतों की भाषा स्वभावतः श्रुतिमधुर होती है। कर्कश, टूटे हुए खण्डित, शब्दों का समावेश उनमें नहीं हो सकता। इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण 'गीतगोविन्द' है। इसमें सामासिक शब्दों का सचेत प्रयोग है। सामासिक पदावलीका अर्थ लोग उसी समय समझ लेंगे या नहीं, इसकी चिन्ता गीतगोविन्दकार ने नहीं की। कविता में अर्थ की प्रधानता होती है, किन्तु संगीत में स्वर-संवेदन से भाव-निर्माण होता है। उसमें एक अपनी विशिष्ट सांकेतिकता होती है जिसकी निष्पत्ति के लिए अर्थ की अपेक्षा स्वर-मैत्री, शब्द योजना पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसलिए गीत न सरल हैं, न कठिन, क्योंकि वह अर्थगत उतना नहीं जितना मधुरोच्चार और स्वरारोह से सम्बद्ध है। निराला के गीतों पर सामासिकता का आरोप लगाया गया है। यह कविता का दोष हो सकता है, किन्तु गीत का नहीं। समासबहुलता काव्य के भावों को समझने में बाधक हो सकती है, किन्तु वही पदावली के गायन में सहायक हो सकती है। निराला के गीतों पर आक्षेप करने वाले इस अन्तर को भूल गए, जिसका स्मरण रखना गीतों के समीक्षाकार के लिए आवश्यक है।

उक्त विशेषताएँ निराला को जयदेव, विद्यापति और सूर-जैसे संगीतज्ञ कवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित करती हैं। आधुनिक काल में इस श्रेणी के वे अकेले प्रतिनिधि हैं। प्रसाद, महादेवी के गीत काव्य अधिक हैं, गीत कम। कहीं-कहीं वे अधिक लम्बे हो गए हैं। यही कारण है कि 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' जैसी रचनाएँ गीत के रूप में अधिक प्रचलित और ख्यात नहीं हो सकीं, जबकि निराला के 'भारतिजय विजय करे' जैसे गीत राष्ट्रीय क्षेत्र तक पहुँच गए हैं। निराला के गीत जिस प्रकार सार्वजनिक गायन के रूप में आस्वाद्य हैं, वही बात इस युग के अन्य श्रेष्ठ कवियों की गीत-रचनाओं के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। उनके द्वारा यत्र-तत्र नए विषयों के साथ नए प्रकार की भावाभिव्यंजना का प्रयोग किया गया है। प्रसाद के गीतों का स्वरूप अधिक काल्पनिक और रोमांटिक है। उनकी उल्लिखित रचना अधिक कल्पना-सम्पन्न और सौन्दर्य-प्रधान है। निराला के गीतों के समान भावप्रधानता और विन्यस्त संगीत का मणिकांचन योग उसमें नहीं है। प्रसाद और महादेवी की गीत-रचनाओं में यह विशेषता विरल है क्योंकि सामूहिक गान का अवतरण करना उनका लक्ष्य नहीं था। ये गीत अधिक वैयक्तिक हैं, जबकि निराला में वैयक्तिकता और कल्पना-वैचित्र्य का पक्ष गौण है। अपने

आरम्भिक काव्य में निराला ने यदि भावावेग की प्रबलता से उत्कर्ष की सीमाओं का अनुधावन किया था तो इस द्वितीय उत्थानकाल में ऐसी रचनाएँ उन्होंने प्रदान कीं जो काव्य की भूमिका पर भावपक्ष और कलापक्ष का सन्तुलन और सामंजस्य तो उपस्थित करती ही हैं, साथ ही अस्खलित संगीत-विन्यास के द्वारा उनके रूपायन को अधिक संश्लिष्ट और सघन बनाती हैं, आरम्भिक रचनाओं की उल्लासमयी अन्तर्धारा के क्रम में 'गीतिका' के समस्त गीत उल्लास, आस्था, शक्ति और परिष्कार से समन्वित हैं।

निराला के काव्य-विकास का तृतीय चरण सन् १९३५ से सन् १९४२ तक माना जा सकता है। इस अवधि में निराला के कवि-व्यक्तित्व की दो धाराएँ परिलक्षित होने लगती हैं। एक ओर तो वे औदात्य की भूमि पर जाकर महाकाव्योचित शैली का प्रयोग करते हुए दीर्घ आख्यानों की प्रवृत्ति प्रदर्शित करते हैं, और इसी युग में दूसरी ओर एक भिन्न प्रकार की हास्य और व्यंग्य की प्रवृत्ति का भी उन्मेष करते हैं। एक ओर गांभीर्य और दूसरी ओर हल्कापन, ये दोनों प्रवृत्तियाँ सामान्यत: परस्पर-विरोधिनी हैं, और इस द्वैत को देखकर ही शंका होती है कि निराला का व्यक्तित्व विघटन की ओर उन्मुख है। सन् १९३४ तक उनका जो धारावाहिक, समाहित व्यक्तित्व सामने आता है, जिसमें भावपक्ष और कलापक्ष पूर्णतया संयोजित और अविच्छिन्न हैं, उसमें क्रमशः अव विच्छिन्नता प्रकट होने लगी है। ये नए दीर्घ प्रगीत आयास-साध्य कविता के उदाहरण हैं जबकि पूर्ववर्त्ती गीत और प्रगीत अव्याहत प्रवाह, गति के सूचक हैं। इन नई रचनाओं में एक प्रयत्नसाध्य आलंकारिक भाषा की कृत्रिम सामासिकता के माध्यम से औदात्य की सृष्टि की गई है। यह सच्चा औदात्य है या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है। दूसरी ओर यह भी देखना चाहिए कि इसी युग में निरालाजी ने जो व्यंग्यात्मक काव्य लिखे और जिनके द्वारा उन्होंने अपने युग के प्रति अनास्था व्यक्त की, वह भी उनके व्यक्तित्व का रचनात्मक संगठन है अथवा कुछ और है? यह भी टूटा हुआ नज़र आता है। इस प्रकार व्यंग्य और औदात्य दोनों ही दृष्टियों से विघटन का स्वरूप सामने आने लगता है।

कतिपय समीक्षकों ने 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' को निराला की सर्वश्रेष्ठ कृति कहकर विज्ञापित किया है। किन्तु महाकाव्योचित औदात्य निराला के अन्तरंग की उपज नहीं। एक तरह से वह अपेक्षाकृत अधिक पाण्डित्य और परिश्रम का परिणाम है। यह कहा जा सकता है कि निराला के प्रौढ़ व्यक्तित्व के अनुरूप ये कविताएँ हैं, किन्तु यह भी स्मरण रखना होगा कि इस प्रौढ़ता में विघटन के तत्त्व भी मौजूद हैं। पाण्डित्यपूर्ण कविताएँ अपने में महान् होती हैं और उस दृष्टि से, ये कविताएँ भी महान् हैं; परन्तु पाण्डित्य के बल पर विश्व की सर्वोत्तम कविता का निर्माण नहीं हुआ। पाण्डित्य एक साधन के रूप में प्रयुक्त होने पर अपना आलोक कविता में बिखेरता है, परन्तु साध्य रूप में हुआ तो कविता की स्वाभाविकता, मार्मिकता, विरल होने लगती है। इस प्रकार उक्त दोनों पाण्डित्यपूर्ण निर्मितियाँ भावसंवेदन और मार्मिकता की दृष्टि से 'बादल राग' और 'यमुना के प्रति' जैसी रचनाओं की तुलना में कमज़ोर पड़ती हैं।

इस काल के जिन व्यंग्यात्मक प्रयोगों में निरालाजी सामाजिक जीवन की बहुत-सी विकृतियों पर आक्षेप करते हैं, उनमें भी उनका निजी असन्तोष झाँकता रहता है।

उनमें उनकी जो महत्त्वाकांक्षा अधूरी रह गई है, वह प्रतिबिम्बित हो जाती है। व्यक्तित्व के विकास की दृष्टि से निराला का यह चरण विभाजित व्यक्तित्व का है। इस तृतीय चरण का काव्य प्रथम दो चरणों की भावभूमि तक नहीं पहुँच पाया। उसमें क्षतिपूर्ति की गई है, नये रस का आविष्कार किया गया है, तथा महाकाव्योचित औदात्य भी एक नया आविष्कार है। इस प्रकार नवीनता उनके काव्यों में हमेशा बनी रही, पिष्टपेषित वह नहीं है, परन्तु नवीनता आते रहना, पिष्टपेषण न होना, नकारात्मक गुण हैं। निराला के काव्य को ये गुण आकर्षण देते रहे हैं, किन्तु सृजनशीलता के गुण से समन्वित आरम्भिक दो चरणों का जो काव्य है उसकी सक्रिय, सम्पन्न, काव्यभूमि आहत और क्षत हो चली है।

किन्तु निरालाजी को इस द्विधात्मक काव्य-प्रयास के मध्य सन् १९३५ की लिखी उनकी 'सरोज-स्मृति' शीर्षक कविता उनके समस्त काव्य के शीर्ष पर संस्थित दिखाई देती है। एक ओर जहाँ उनके व्यक्तित्व का विघटन हो रहा था और वे औदात्य और व्यंग्यात्मकता के बीच अनिर्दिष्ट गति से अग्रसर हो रहे थे, पुत्री के निधन ने उनकी समस्त भाव-चेतना को पुनः एक केन्द्र में लाकर एकाग्र कर दिया। 'यह सीमित क्षण ही क्यों न हो, निराला की काव्य-सृष्टि में अतिशय महत्त्वपूर्ण है। दीर्घ-प्रगीत के असाधारण प्रसार में इतना समाहित संघटन निराला की किसी दूसरी रचना में शायद ही मिले। जान पड़ता है कि इस दुःख के अवसर पर निराला की समस्त टूटती हुई वृत्तियाँ पुनः एकान्वित हो गई हैं और करुणा की भूमिका पर एक ऐसे काव्य की सृष्टि की जा सकी है जो समस्त हिन्दी काव्य में अपना सानी नहीं रखता। निराला के पूर्ववर्ती दीर्घ प्रगीत या तो वीर रस के थे ('शिवाजी का पत्र' आदि) या वे शृंगार या व्यंग्य के समन्वय से बने थे ('वनवेला' आदि)। ये रचनाएँ वर्णनात्मक अधिक थीं और विशुद्ध प्रगीत की भावभूमिका से अंशतः हटी हुई थीं। उनकी अन्य दीर्घ-रचना 'यमुना के प्रति' वियोग-स्मृति से सम्बद्ध है, परन्तु इसकी संघटनात्मक शिथिलता का हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। वैयक्तिक शोक और विषाद की प्रतिक्रिया में प्रायः कविगण भावात्मक (Sentimental) हो उठते हैं। परन्तु निराला की सुपरिचित तटस्थता यहाँ भी विद्यमान है, जिसके परिणामस्वरूप वे न केवल रचना का बाह्य-संगठन निर्दोष बना सके हैं बल्कि वर्णनीय वस्तु में सम्पूर्ण भावोत्कर्ष भी ला सके हैं। इस रचना में आये हुए समस्त स्मृति-चित्र ऊपर से पृथक्-पृथक् दीखते हुए भी एक मार्मिक समन्वय-सूत्र में पिरोये हुए हैं, जिस कारण इस रचना में कहीं भी स्वतन्त्र वर्णनात्मकता नजर नहीं आती। दीर्घ-प्रगीत के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों में यह कविता हिन्दी की स्थायी निधि बन चुकी है और चिर दिन तक बनी रहेगी।

सन् १९४२ से सन् १९५० तक निराला के काव्य का चतुर्थ चरण है। इसमें प्रयोगों की बहुलता देखते हुए इसे निराला का प्रयोग-चरण भी कहा जा सकता है। 'कुकुरमुत्ता' आदि लम्बी कविताएँ, 'मास्को डायलाग' आदि छोटी कविताएँ, 'बेला' की गज़लें, इसी समय लिखी गई हैं। 'अणिमा' में कुछ पुरानी कविताएँ भी जुड़ी हुई हैं, परन्तु साथ ही कुछ व्यंग्यात्मक कविताएँ और महादेवी, विजयलक्ष्मी पण्डित प्रभृति पर कुछ

प्रशस्तियाँ भी हैं। इन सभी रचनाओं की पद्धति प्रयोगात्मक है। आशय है कि कोई आश्रय लेकर कवि अभिव्यंजना को नया रंग देता है। वस्तु-निरूपण की शैली में उपेक्षाजन्य बाहुल्य है। निरालाजी का यह शैली-प्रधान युग है।

'कुकुरमुत्ता' उनकी व्यंग्य रचनाओं के शीर्ष पर विद्यमान है। उनकी प्रयोगात्मक रचनाओं में कदाचित् वह सबसे अधिक प्रचलित और सफल भी है। वह हिन्दी और उर्दू की बोलचाल की भाषा में व्यंग्यात्मक तौर से लिखी गई है। इसका आशय समझने में लोगों को अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ हुई हैं। सामान्यतः 'गुलाब' सामन्तवादी सभ्यता का और 'कुकुरमुत्ता' सर्वहारा वर्ग का प्रतीक है। प्रगतिशील आदर्श इसमें यह है कि सामन्तवादी प्रतीक गुलाब के उपहास के साथ कुकुरमुत्ता की प्रशंसा की गई है। इस आधार पर कुछ समीक्षक इसे प्रगतिवादी कविता मानते हैं। किन्तु यह भी देखना चाहिए कि इसमें गुलाब का ही परिहास नहीं, स्वयं कुकुरमुत्ता का भी उपहास है। वह अपने मुँह से अपनी जिन विशेषताओं का उल्लेख करता है और जिस पद्धति से स्वयं को संसार की श्रेष्ठतम वस्तुओं का जनक कहता है, वे व्यंजना के द्वारा स्वयं उसे उपहास के केन्द्र में उपस्थित कर देती हैं। यह बात कतिपय प्रगतिवादियों को या तो दिखाई नहीं देती है, या लक्ष्य होने पर उन्हें उलझन में डाल देती है। प्रगति का सीधा मार्ग त्यागकर उसकी सम्भावना निर्मित करके, सहसा इस उलझन में डाल देने के लिए वे निराला की ओर क्षोभ और आरोप से भरी दृष्टि से देखने लगते हैं।

गुलाब के साथ कुकुरमुत्ता को भी उपहास की स्थिति में रख देने के कारण कतिपय अन्य समीक्षक कहते हैं कि इस कविता में निराला का व्यंग्य प्रत्येक वस्तु पर है, सर्वतोगामी है। व्यंग्य की तलवार में धार-ही-धार है, मूठ नहीं। यह सम्मति नकारात्मक और उद्देश्यरहित है तथा रूप की भूमिका पर है। किन्तु वस्तुतः इस कविता का स्वरूप इतना ही नहीं। गुलाब और कुकुरमुत्ता का परिहास करते हुए निरालाजी यह व्यंजित करते हैं कि न तो प्राचीन समाज-व्यवस्था का प्रतीक गुलाब हमारा आदर्श है और न कुकुरमुत्ता ही आधुनिक संस्कृति का प्रतीक बन सकता है। इसका आशय कोई नकारात्मक निष्कर्ष नहीं है। आशय है कि गुलाब का स्थान गुलाब ही ले सकता है, कुकुरमुत्ता नहीं। पुरानी संस्कृति का स्थान नई संस्कृति ही ग्रहण कर सकती है, वह नहीं जो कुकुरमुत्ता की तरह 'उगाए नहीं उगता', अर्थात् जिसका कोई पूर्वापर नहीं है। निरालाजी के दार्शनिक आदर्शों से जो लोग परिचित हैं वे जानते हैं कि निराला सांस्कृतिक उत्थान के प्रतिनिधि हैं। यही कारण है कि वे कुकुरमुत्ता का आदर्श नहीं रखते। उनका प्रगतिवाद सांस्कृतिक प्रगति का आदर्श है। आरम्भ से ही उनका यह लक्ष्य रहा है कि मानव-संस्कृति अपने पुराने बन्धनों को तोड़कर नये विकास में अग्रसर हो। उनके साम्य-स्वप्न में केवल आर्थिक साम्य नहीं, वह सार्वत्रिक साम्य है जिसमें सांस्कृतिक विश्व-मानव की झलक हो—न गुलाब की भाँति सम्पन्न और कुकुरमुत्ता की तरह विपन्न।

'कुकुरमुत्ता' को कवि ने दो खण्डों में निर्मित किया है। प्रथम अधिक नाटकीय और चमत्कारपूर्ण है, जबकि दूसरे खण्ड में वर्णनात्मकता अधिक है और व्यंजना कम।

परिणामतः प्रथम खण्ड द्वितीय की अपेक्षा अधिक काव्यात्मक और प्रभावशाली है। दूसरे खण्ड में नवाब साहब के पूरे परिवेश का चित्रण है। नवाब की अल्हड़ता का उल्लेख, गोली और उसकी माँ के स्वभावों का अंकन, कुकुरमुत्ता का कवाब बनाने का वर्णन, ये सारे-के-सारे प्रसंग इतिवृत्तात्मक हैं। यद्यपि परिवेश-निर्माण की क्षमता इनमें है, तथापि पूर्वार्ध के समान व्यंग्य और विनोद की भावना उभर कर नहीं आई।

शैली की दृष्टि से 'कुकुरमुत्ता' में टी० एस० इलियट के 'वेस्टलेण्ड' की भाँति सन्दर्भ प्राचुर्य है। कहीं मन्दिरों का उल्लेख है, कहीं सुदर्शन चक्र के फलक का, कहीं राम के धनुष का और कहीं बलराम के हल का। ये अनेकानेक सन्दर्भ कविता को एक विशिष्ट भौतिक भास्वरता प्रदान करते हैं। जो भाषा निरालाजी ने 'कुकुरमुत्ता' में प्रयोग की है, वह हिन्दी और उर्दू के मेल-जोल से बनी है। बोलचाल की सजीवता के साथ नए मुहावरे उसमें बड़ी संख्या में व्यवहृत हुए हैं। छायावादी काव्य में प्रायः लोकप्रचलित भाषा और मुहावरों का प्रयोग नहीं हुआ, जिससे एक गाम्भीर्य तो उसमें आया है पर तरलता नहीं है। यह विशेषता 'कुकुरमुत्ता' में मिलती है।

'बेला' और 'नये पत्ते' में निराला की प्रयोगात्मक रचनाएँ हैं। 'बेला' में उन्होंने उर्दू शैली की ग़ज़लों का प्रयोग किया है, किन्तु इसमें उनकी सफलता आंशिक ही है। भाषा की दृष्टि से इसमें उर्दू, हिन्दी और संस्कृत की खिचड़ी मिलती है, जो इस रचना के साहित्यिक उत्कर्ष में सबसे बड़ी बाधा है। हिन्दी के जिन कवियों ने उर्दू के छन्दों का प्रयोग किया है उन्होंने प्रायः सर्वत्र उर्दू पदावली और मुहावरे भी अपनाये हैं। या फिर हिन्दी की अपनी पद रचना रखी है और उर्दू के केवल छन्द लिए हैं। निरालाजी ने इनमें से किसी एक पद्धति का प्रयोग न कर जो मिश्रित सृष्टि तैयार की है, वह न तो उर्दू पाठकों के गले सुगमता से उतर पाती है, और न हिन्दी के। परिणामतः यह काव्य-पुस्तक शुद्ध प्रयोग बनकर रह गई है। जहाँ तक भावों और विचारों का प्रश्न है वहाँ भी इस रचना में कोई संश्लिष्ट भाव या विचार नहीं आए हैं।

'नये पत्ते' इस दृष्टि से अधिक सफल कृति है। इसमें निराला के यथार्थोन्मुख प्रयोग अधिक स्पष्टता से व्यक्त हुए हैं। 'कुकुरमुत्ता' के हास्य और व्यंग्य में तो सामाजिकता साथ लगी हुई है किन्तु इसके आगे की रचनाओं में निराला का हास्य और व्यंग्य समाज-निरपेक्ष, यहाँ तक कि वैयक्तिक भी हो गया है। एक दृष्टान्त 'खजोहरा' है। इसमें एक नारी की दुर्दशा का वर्णन है, जो स्नान कर रही है। रवीन्द्र की महिमामयी 'विजयिनी' की तरह एक-एक सीढ़ी उतरते हुए उसका जल में पैठना और वहाँ खजोहरा के सम्पर्क से खुजली का प्रसाद पाकर नीलगाय की तरह भागना इसमें अंकित है। खुली हुई ग्रामीण प्रकृति के साथ यह खजोहरा की घटना आई है और वह उस सारे सौन्दर्य को कुरूपता में परिणत कर देती है। उदात्त से उपहासास्पद में सहसा विपर्यय का लक्ष्य है एक विद्रोह की स्थिति का वर्णन करना, नारी की गरिमा और शालीनता पर एक आक्षेप की स्थिति लाना। कदाचित् निरालाजी ने अपनी रोमांटिक सौन्दर्य-कल्पना में जितने सुन्दर ढंग से नारी-छवियों का चित्रण किया है, उसी की प्रतिक्रिया में यह व्यंग्यात्मक रचना उनके द्वारा प्रणीत है और साथ ही वह रवीन्द्र की 'विजयिनी' का विद्रूप-

संस्करण भी है। यह स्पष्ट है कि इस व्यंग्य का कोई सार्वजनिक उद्देश्य नहीं है, वह विशुद्ध व्यक्तिगत व्यंग्य है। सौन्दर्यप्रियता का यह 'एण्टीक्लाइमेक्स' है जो अश्लीलता की सीमा तक पहुँचता है। वह हास्य और व्यंग्य शालीनता से विरहित है, उसमें निर्मलता की कमी है। निराला कुछ समय तक वैयक्तिक अवरोध-बंधन से ग्रस्त एक ऐसी अनुदारता में पहुँच गए थे जो अंग्रेज़ लेखक जोनाथन स्विफ्ट में विद्यमान थी।

'स्फटिक शिला' (चित्रकूटप्रसंग) में निरालाजी ने यथार्थवादी भूमिका को अपनाया है। इसमें चित्रकूट की प्रकृति तक पहुँचने का व्यंग्यात्मक आख्यान है। बैलगाड़ी पर मंदाकिनी दर्शन के लिए जाना, उसमें उठाए कष्ट और तीर्थस्थान पर एक रमणीय सौन्दर्य का उद्दाम चित्र इसमें सम्मिलित हैं। वे स्वस्थ व्यंग्य की सीमा में प्रायः नहीं आते हैं। चित्रकूट के प्रति भारतीय समाज की जो पूज्य भावना है उसे मिटाने का प्रयत्न यह कविता करती है। इसे एक प्रतिक्रियात्मक यथार्थवाद कह सकते हैं। विद्रूप के लिए विद्रूप के वर्णनों में निरालाजी ने जो चित्र खींचे हैं वे काफ़ी चित्रोपम, ग्राफ़िक हैं, लेकिन उद्देश्य-रहित हैं।

सन् १९५० से १९६१ में उनके सूर्यास्त तक निरालाजी के काव्य का पंचम और अन्तिम चरण है। यह उनके जीवन की एक अपेक्षाकृत दीर्घकालव्यापी सन्ध्या है। इन दिनों भी उन्होंने काव्य-सृष्टि की, जिसका परिमाण स्वल्प है, किन्तु जो एक नए सौन्दर्य और सात्विकता से मण्डित है। कवि ने कठोर संघर्ष से अपनी प्रतिभा के योग्य सम्मान जय किया था। जीवन की इस सन्ध्या में वे काव्य और साहित्य-प्रेमियों के मण्डल का अतिक्रमण करके निखिल जन के हृदय-सम्राट् बने। उनके कवि-रूप के बदले उनकी मानवीयता अधिक उभरकर सामने आई। न जाने कितने झूठे-सच्चे चुटकुले और वृत्तान्त उनका नाम लेकर चल पड़े। अपने यश के शिखर पर जन-समाज में जितनी अभिरुचि और चर्चा के विषय बने थे उतने ही कदाचित् वे स्वयं समस्त से निरपेक्ष और वीतराग तथा आत्मलीन भी थे। जन-समाज के साथ उनके सम्पर्क-विनियोग की कदाचित् अन्तिम विराट घटना सन् १९४७ में मनाई जानेवाली उनकी स्वर्ण-जयन्ती थी।

यह स्वर्ण-जयन्ती एक नाटकीय ढंग से उनके परिणति-काल के शीर्ष पर विद्यमान है। उस अवसर पर निरालाजी की ख्याति समस्त हिन्दी-भाषी प्रदेशों में बड़ी ऊँचाई पर पहुँची हुई थी और उनका देशव्यापी सम्मान करने की इच्छा हिन्दी-जगत् में प्रबल थी। उस अवसर पर अनेकानेक साहित्यिकों का संगम काशी केन्द्र में हुआ था। आचार्य नरेन्द्रदेव ने उसका उद्घाटन किया था और उसकी विभिन्न गोष्ठियों में डॉ० सम्पूर्णानन्द, श्रीप्रकाश जैसे राजनीतिक नेताओं के अतिरिक्त बड़ी संख्या में साहित्यिकों का आगमन हुआ था। रात्रि में एक बड़ा कवि सम्मेलन हुआ था जिसमें तत्कालीन सभी बड़े कवियों ने भाग लिया था। कोई भी कवि वहाँ अर्थलाभ के लिए उपस्थित नहीं हुआ था, जो कवि-सम्मेलनों के लिए नई बात कही जा सकती है। निरालाजी ने भी अपनी कुछ कविताएँ सुनाई थीं, यद्यपि उन्होंने भूमिका दी थी कि अब उनका गला कविता सुनाने योग्य नहीं रहा और नए कवियों के गर्व के सामने वे अपनी पराजय स्वीकार करते हैं। उसे स्वाभाविक बतलाते हुए उन्होंने आगामी पीढ़ियों के प्रति शुभाशिष प्रकट किया था।

दिनकर और बच्चन आये हुए कवियों में मुख्य थे। दूसरी धाराओं के कवि, कवित्त और सवैया सुनानेवाले सभी उपस्थित थे। कदाचित् निरालाजी के जीवन में कविता-पाठ के बड़े सम्मेलनों का यह अन्तिम अवसर था।

इसके बाद प्रायः वे कवि-सम्मेलनों में नहीं जाते थे। 'स्वागत-समिति की ओर से जो द्रव्य एकत्रित किया गया था उसमें से उपहारार्थ डेढ़ हजार रुपया उन्होंने सौ और दो सौ के हिसाब से नए कवियों को भेंट किया था। दूसरे दिन निरालाजी का अभिनन्दन काशी विश्वविद्यालय में हुआ था जिसमें नए कवियों को उपहार दिये गए थे। ऐसे कवियों में शिवमंगलसिंह 'सुमन', सुमित्राकुमारी सिनहा, जानकीवल्लभ शास्त्री, शम्भूनाथसिंह जैसे नवोदित कवि सम्मिलित थे। इस अवसर पर निरालाजी को एक अभिनन्दन-ग्रन्थ भेंट करने की योजना भी थी, परन्तु तब तक मुद्रित न होने के कारण वह नहीं दिया जा सका। उसके स्थान परबच्चनसिंह ने 'क्रान्तिकारी कवि निराला' नामक अपना प्रबन्ध समर्पित किया था। महादेवी, सुभद्राकुमारी चौहान जैसी कवयित्रियाँ, शिवपूजन सहाय, रामविलास जैसे अनेकानेक साहित्यकार इस अवसर पर उपस्थित थे। हिन्दी साहित्यकारों के अभिनन्दन में इस समारोह का एक विशिष्ट स्थान है। न केवल संख्या की दृष्टि से, वरन् प्रबन्ध-व्यवस्था की दृष्टि से भी, यह एक स्मरणीय आयोजन था। दूसरे दिन रात्रि को प्रसादजी का 'कामना' नाटक प्रदर्शित हुआ था, जिसमें काशी के कलाकरों के अतिरिक्त उस समय के विश्वविद्यालय के छात्रों ने सुन्दर अभिनय किया था।

निरालाजी की मानसिक स्थिति उन दिनों यद्यपि अनियन्त्रित हो चली थी, तथापि उस समय तक वे पर्याप्त सचेत भी थे। अपने धन्यवाद भाषण में वे यद्यपि थोड़ा-बहुत बहक गए थे, कुछ चीज़ें उन्हें स्मरण नहीं रह गई थीं, तथापि वे फिर स्वस्थ भूमिका पर आ गए थे। इस समय निरालाजी ने विवेकानन्द-जैसा साफा बाँधा था और कौशेय वस्त्र धारण किये थे। इस जयन्ती ने उनकी मनःस्थिति को कुछ समय के लिए प्रसन्न और स्वस्थ बना दिया, किन्तु संक्रान्तिकाल की यह स्थिति अधिक दिन नहीं ठहरी। निरालाजी की मनोदशा क्रमशः विक्षेप की ओर बढ़ती चली गई। दो-तीन वर्षों तक वे यत्र-तत्र अपने मित्रों के साथ रहे। कुछ दिनों तक उन्होंने महादेवी के आग्रह पर साहित्यकार-संसद, प्रयाग में निवास किया। कुछ दिनों तक दारागंज में स्वतन्त्र मकान लेकर भी वे रहे, परन्तु अन्त में अपने चित्रकारमित्र कमलाशंकरजीके घर पर आ गए और उनके आग्रह पर उन्हीं के साथ रहने लगे। कमलाशंकर और उनके बड़े भाई उमाशंकर निरालाजी के प्रति गहरा सम्मान-भाव रखते थे, अतएव निरालाजी को वहाँ रहने में अधिक सुविधा और प्रसन्नता होती थी। पास ही पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी की कोठी थी जहाँ वे चार-छः महीने रहे भी थे, किन्तु वहाँ से हटकर उसी महल्ले में उन्होंने कमलाशंकर के यहाँ निवास किया।

जयन्ती के समय तक निरालाजी की व्यंग्यात्मक कविताओंका दौर समाप्त हो रहा था। एक-दो अधूरे उपन्यास, 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' सन् १९५० के आसपास उन्होंने लिखे, किन्तु उनकी मनःस्थिति ऐसी नहीं थी कि उन्हें उचित समापन वे

दे पाते। फलतः वे अधूरे ही रह गए।

इसके पश्चात् निरालाजी का काव्य अपने अन्तिम मोड़ पर पहुँचता है और वे आध्यात्मिक भावना से अनुप्राणित होते हैं। इन दिनों वे पुनः गीत लिखने लगे। इन गीतों में यद्यपि सामाजिक जीवन की विशृंखलता, अव्यवस्था और वैषम्य के संकेत भी मिलते हैं, परन्तु निरालाजी की केन्द्रीय भावना किसी परम शक्ति का आश्रय चाहने की थी और उसी के प्रति समर्पित होकर उन्होंने अपने उद्‌गार व्यक्त किए हैं। इन विनय गीतों के कई भाग किए जा सकते हैं। कुछ तो उनकी अपनी रुग्णता और वेदना से सम्बन्धित गीत हैं, कुछ सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की विकृतियों का उल्लेख करते हैं और कुछ विशुद्ध धार्मिक भावना से सम्बन्धित हैं, जिन्हें भक्तिकालीन कवियों के पदों की अनुवृत्ति कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति-सम्बन्धी ऋतु-गीतों की रचना भी उन्होंने की। इन ऋतु-गीतों में निराला के आरम्भिक ऋतु-गीतों का-सा शृंगारिक भाव नहीं है, बल्कि शान्त रस की भूमिका अपना ली गई है। इस अवधि में रचित कतिपय शृंगारी गीत भी हैं, परन्तु प्रकृति की रमणीयता से घुल-मिलकर यह शृंगार अपने वासनात्मक संस्कार त्याग चुका है। निरालाजी ने यद्यपि उद्दाम शृंगार की रचनाएँ कभी नहीं कीं, तथापि इन परवर्ती शृंगारिक गीतों में आकर तो उन्होंने न केवल शृंगार के बहिर्मुख पक्ष को, बल्कि उस सारी आलंकारिकता को छोड़ दिया जो उनकी आरम्भिक कविताओं में प्रमुख हो रही थी। निराला के ये शृंगारिक गीत शान्त रस के अत्यधिक समीप हैं।

इन गीतों में निरालाजी की भाषा भी आरम्भिक गीतों की भाषा से भिन्न हो गई है। वे सरल तथा मुहावरेदार भाषा का प्रयोग करने लगे थे। संस्कृतगर्भित सामासिक भाषा का जो सौन्दर्य उनके आरम्भिक गीतों में है, उसके स्थान पर एक नए सौन्दर्य की सृष्टि निरालाजी ने इन गीतों में की है। इससे प्रकट होता है कि भाषा के विभिन्न प्रकार के प्रयोग में निरालाजी कितने कुशल और सिद्धहस्त थे। यह बतलाना कठिन होगा कि निराला के आरम्भिक और परवर्ती गीतों की भाषा में कौन अधिक प्रभावशालिनी है। हम इतना ही कह सकते हैं कि दोनों का सौन्दर्य पृथक्-पृथक् है, दोनों ही अधिकारी कवि की लेखनी से निःसृत हैं।

इस अवधि में कतिपय प्रयोगात्मक गीत भी उन्होंने लिखे, जिनमें उर्दू शैली की प्रमुखता है, परन्तु ये निराला के श्रेष्ठतम गीतों के समकक्ष नहीं पहुँचते। इस सम्पूर्ण अवधि में रचित लगभग तीन-साढ़े तीन सौ गीतों में दस-पाँच ऐसे भी हैं जिनमें अतिरंजना का अटपटापन प्रकट होता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति निरालाजी के मानसिक विक्षेप की साक्षी कही जा सकती है। किन्तु इसे स्वीकार कर लेने पर उत्कर्ष की ओर अग्रसर गीत-राशि की साक्षी और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। वह प्रमाणित करती है कि निरालाजी की संज्ञा विलीन नहीं हुई थी और काव्यसृजन के द्वारा वे अपनी अंतरंग आध्यात्मिकता का आवाहन कर लेते थे और बहिरंग असन्तुलन पास नहीं फटकता था। विक्षेप का क्षुब्ध घटाटोप भी प्रतिभा की ज्योतिशिखा को बुझा देने में समर्थ नहीं हो सका था।

विक्षेप की वह स्थिति जो लगभग सम्पूर्ण है और जिसमें स्वस्थ चेतना के क्षण कदाचित् केवल सृजन के क्षण हैं, विशेषज्ञों के अनुशीलन के योग्य स्थिति है। इस विक्षेप के निर्माण में किन मूल तत्त्वों का योगदान है, इसका निर्णय करना तो कठिन है, किन्तु उनकी प्रक्रिया में सहयोगी होनेवाली कतिपय भूमिकाओं का संकेत किया जा सकता है। वे भूमिकाएँ इस संयमी किन्तु परम संवेदनशील कवि के व्यक्तिगत जीवन से लेकर युग के वैषम्य तक विस्तृत हैं। पहले हम इनमें से प्रथम को लेते हैं। निरालाजी के जीवन में शोक के दो बड़े अवसर आए थे—एक, पत्नी के निधन पर और द्वितीय, पुत्री के निधन पर। ये दोनों ही घटनाएँ निरालाजी को अत्यन्त क्षुब्ध, किसी अंश तक हतप्रभ, हतचेत, करने में सहायक हुई थीं। पहली घटना के समय निरालाजी अपेक्षाकृत युवक थे, शारीरिक-मानसिक दृष्टि से सशक्त थे। इसलिए पहली विपत्ति को वे सह गए, यद्यपि उसी समय से (सन् १९२२-२३ से) उनके काव्य में तटस्थता, निर्लेपता व एक प्रकार के उच्च वैराग्य का आविर्भाव हुआ। कोई मनोवैज्ञानिक यदि खोज करे तो कदाचित. पत्नी के वियोग और निराला की शृंगारिक रचना में एक तटस्थता, अनास्था के आविर्भाव में सम्बन्ध जोड़ सकेगा। सन् १९३५ में 'सरोज स्मृति' लिखी गई थी। सरोज की मृत्यु ने उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को खण्डित कर दियाथा। हम कह सकते हैं कि उनकी विक्षेपावस्था को इसी घटना ने उभार दिया। कदाचित् इसके बाद निराला ने विशुद्ध शृंगार की रचना नहीं की। वे व्यंग्यमूलक, कटाक्षपूर्ण, कविता करने लगे, अथवा विनय-प्रार्थनामूलक उदात्त गीत लिखने लगे, अथवा उदात्त सांस्कृतिक भूमि की रचना करने लगे—जैसे 'विक्रम की दो सहस्राब्दि'। ये दो घटनाएँ निरालाजी के व्यक्तित्व की निर्णायक घटनाएँ हैं।

सन् १९३८ में निरालाजी ने एक कविता लिखी थी, जिसमें उन्होंने अपनी बदली हुई भाव-चेतना का परिचय दिया था। उसमें उन्होंने कहा है कि मेरा मुक्त गगन चला गया, आकाशगामिनी कल्पनाएँ चली गईं। अब तो मैं समुद्र का अधिवासी बन गया हूँ। ठोस जलीय नमक का जो रूप हो सकता है, और निरभ्र आकाश का—दोनों निराला के काव्य के दो प्रतिमान हैं। सन् १९३८ से पूर्व का काव्य उज्ज्वल, निरभ्र आकाश के समान है और उस मुक्त मनोदशा के स्थान पर मन को बाँधनेवाली, अस्वादुकर जीवन-स्थितियों के प्रतिनिधि परवर्ती काव्य का प्रतीक समुद्र है।

निरालाजी की काव्य-सृष्टि कला के प्रति उनके निःशेष समर्पण सेनिःसृत है। एक बड़े परिवार के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए भी साहित्य-रचना से पृथक् विशुद्ध जीवन-यापन के लिए उन्होंने कभी कोई कार्य नहीं किया। वर्तमान युग के दायित्व को हृदयंगम कर उसकी पूर्ति के लिए उन्होंने उन समस्त बन्धनों से छुटकारा पा लियाथा जो किसी भी प्रकार से बाधक बन सकते थे। कोई कवि अपनी आत्मिक प्रेरणा के अनुरूप काव्य-सृष्टि तब तक नहीं कर सकता जब तक अपने व्यक्तित्व को उसने जन-जीवन के प्रति समर्पित न कर दिया दो। उसके लिए ऐसा पुरुष आवश्यक है जो निर्भीक और निर्बाध हो। इसीलिए निराला को सामाजिक भूमि पर अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ी हैं, उनके काव्य और उनके व्यक्तित्व का निरादर भी हुआ है। कोई व्यक्ति जान-बूझ-

कर पागल नहीं होता। एक वहुत गहरे अर्थ में उनके परवर्ती व्यक्तित्व का अन्तर्विरोध और विभक्त व्यक्तित्व युग में आदर्श और यथार्थ के वास्तविक अन्तर्विरोध और विभाजन को प्रतिविम्बित करता है। यदि अपने अंदर इस विभाजन के समाधान का सूत्र वे निर्मित न कर सके, तो युग में भी समाधान-रहित अन्तर्विरोध साथ-साथ विद्यमान हैं। युग की विषमताओं को देखकर, अनैतिक तत्त्वों से खिन्न होकर उन्होंने उनसे मुँह नहीं मोड़ा। सांसारिक जीवन में अभेद्य दीवारों से टकराकर उनकी मानसिक चेतना आहत हुई। यह निराला ही थे जो सुख का जीवन व्यतीत करने के लिए उत्पन्न नहीं हुए थे। आज के सामान्य कवियों से उनका व्यक्तित्व एकदम भिन्न था। उनका दुहरा व्यक्तित्व नहीं था। कहने और करने के दो स्तर नहीं थे। निराला की काव्य-रचना उनके अदम्य साहस, उनकी निर्बाध जीवन-अभिलाषाओं से सम्बन्धित है। समस्त युगीन दायित्वों को अपने अन्दर समेटकर रख लेने की तैयारी उनके सिवा किसी अन्य आधुनिक कवि में नहीं पाई जाती। यह उनकी शक्ति का अजस्र स्रोत है।

आज यूरोप में ऐसे कवि भी हुए हैं जो पूर्णतया समाज-निरपेक्ष, जीवन-निरपेक्ष और व्यक्तिवादी या अस्तित्ववादी हैं। निराला को ऐसे संकीर्ण अनुभवों में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उन्होंने मनुष्यता पर विश्वास नहीं खोया, कविता को वैयक्तिकता या खण्डदर्शन की भूमिका पर ले जाकर आत्मविच्छेद नहीं किया। उनके अपने आदर्श-विश्वास नहीं खोए। निराला के व्यक्तित्व में एक ऐसा तत्त्व है जो युग की समस्त जीवन-भूमिका पर एक समन्वय स्थापित कर सका है। यह विक्षेप पर प्रतिभा की विजय है। पहले वे आशा के स्वर को लेकर चले हैं तो पीछे आक्रोश के स्वर को, और अन्त में परम सत्ता के आवाहन के स्वर को। अपने व्यक्तित्व और वैयक्तिक साधना के बल पर उनके काव्य में एक सामंजस्य है। यह सामंजस्य की भूमिका मानवतावादी स्तर पर है, मानव-जीवन के प्रति आस्था पर निर्मित है। यही निराला का मूल्यवान प्रदेय है।

निराला का काव्य मूल्यांकन-२

इन्द्रनाथ मदान

आधुनिक हिन्दी कविता के विकास में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का व्यक्तित्व एक पहेली और कृतित्व एक समस्या बन गए हैं, जिनका विश्लेषण तथा मूल्यांकन अभी अपेक्षित है। 'निराला' का सरल एवं जटिल व्यक्तित्व और इनका सुबोध एवं क्लिष्ट काव्य आलोचक के लिए एक चुनौती है। इनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो परिचय उपलब्ध होता है वह अधूरा है और इनकी कृतियों का जो मूल्यांकन हुआ है वह एकांगी है। यह प्रयत्न भी इन दोषों से मुक्त नहीं है। 'निराला' एक ऐसे कवि हैं, जिनके जीवन और काव्य में सम्बन्ध का स्वरूप घनिष्ठ न होकर अटूट है। इनके जीवन का एक-एक अनुभूत क्षण इनकी कृतियों में झलकता है। इसलिए जब तक इनके जीवन का पूरा परिचय नहीं मिल जाता, जो एक कठिन समस्या है, तब तक इनके काव्य का मूल्यांकन अधूरा रहेगा। इसके अतिरिक्त इनकी काव्य-रचनाओं का विवेचन इनके गद्य-साहित्य के संदर्भ में करना इसलिए आवश्यक जान पड़ता है कि दोनों के मूल में इनके संश्लिष्ट एवं विश्लिष्ट व्यक्तित्व की प्रेरणा है। अभी तक इस आधार पर 'निराला' के काव्य को नहीं आँका गया है। अब तक इनका कवि और काव्य दोनों प्रायः उपेक्षित रहे हैं और इस उपेक्षा-भाव ने भी इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को विशिष्ट रूप दिया है। 'निराला' का व्यक्तित्व एवं कृतित्व विसंगतियों का पुंज है। इनके व्यक्तित्व में परस्पर-विरोधी तत्त्व पाए जाते हैं और इनके काव्य-संगीत में विषम स्वर झंकृत होते हैं। निराला एकसाथ आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ हैं, कवि एवं योगी हैं, सरल एवं दुरूह हैं, कोमल एवं कठोर हैं, उग्र एवं विनम्र हैं, अहं-वादी एवं अहंविरोधी हैं, रहस्यवादी एवं यथार्थवादी हैं, छायावादी एवं प्रगतिवादी हैं, परम्परावादी एवं स्वच्छन्दतावादी हैं। इस प्रकार इनका व्यक्तित्व एवं काव्य विप-रीत धाराओं का संगम है, सम एवं विषम स्वरों की रचना है। इनके काव्य की तुलना उस वाद्यवृन्द से की जा सकती है, जिनके सम तथा विषम स्वरों में समन्वय की अपेक्षा है। एक ओर इनकी 'जुही की कली' छायावादी रचना है और दूसरी ओर 'कुकुरमुत्ता' एक यथार्थवादी कृति है, एक ओर 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्ति पूजा' उदात्त स्वर के प्रतीक हैं, और दूसरी ओर 'रानी और काजी', 'खजोहरा', 'गर्म पकौड़ी' आदि

अकिंचन के द्योतक हैं। इनकी रचनाओं में वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से इतना अन्तर पाया जाता है कि इसे पाटना कठिन हो जाता है। यह कवि की विकासशील जीवन-दृष्टि का परिणाम है, युग-चेतना की देन है या इनके खण्डित व्यक्तित्व की परिणति है, इस सम्बन्ध में अन्तिम शब्द अभी कठिन है। इस परस्पर-विरोधी जीवन-बोध से अनुप्राणित कविताओं में 'निराला' की अनुभूति बुद्धिगत न होकर हृदयगत है। इनके काव्य की विविधता एक समस्या तथा चुनौती है। इनके काव्य में न तो प्रसाद की एकस्वरता है, न ही महादेवी की एकमानता है और न ही पंत की समन्वयशील दृष्टि है, जो आदर्श के धरातल पर परस्पर-विरोधी तत्त्वों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रायः सफल होने का आभास देती है। यदि निराला के काव्य को आरकेस्टरा-संगीत की संज्ञा दी जाए तो इनमें सम एवं विषम स्वरों की स्थिति को स्वीकार किया जा सकता है। इस संगीत का कोई मूलाधार है या नहीं—इस सम्बन्ध में मतभेद की संभावना हो सकती है। क्या 'निराला' के काव्य में किसी मूल जीवन-दर्शन को खोजा जा सकता है? क्या इसके मूल में किसी एक सूत्र को पकड़ना सम्भव है? क्या किसी कवि का भी संश्लिष्ट जीवन-दर्शन हो सकता है अथवा क्या उसकी केवल जीवन-दृष्टि ही हो सकती है, जिसमें असंगतियों की संभावना होती है? इन प्रश्नों का निराला के काव्य से विशेष सम्बन्ध है, जिनका उत्तर प्रश्नों से छोटा होगा। निराला-काव्य के जागरूक पाठक बहुत कम हैं और इसके निष्पक्ष आलोचक और भी कम हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० रामविलास शर्मा, डॉ० बच्चनसिंह, शिवदानसिंह चौहान, डॉ० धनञ्जय वर्मा आदि ने निराला-काव्य का मूल्यांकन विभिन्न दृष्टियों से किया है। आचार्य वाजपेयी ने इनके काव्य में कल्पना-तत्त्व, राग-तत्त्व की अपेक्षा बुद्धि-तत्त्व को प्रधानता दी है, जो अन्य तत्त्वों को अनुशासित करता है, डॉ० बच्चन ने क्रान्ति-कारी तत्त्व को इनके काव्य का मूल स्वर माना है, शिवदानसिंह चौहान ने समग्र रूप में इनके काव्य को इस युग का महाकाव्य कहा है, जिसमें राष्ट्रीय चेतना तथा सांस्कृतिक जीवन एवं चिन्तन की अभिव्यक्ति है; डॉ० धनञ्जय वर्मा ने निराला-काव्य के विविध पक्षों को अपने शोध-प्रबन्ध में उभारने का प्रयास किया है।

'निराला' के काव्य में उनके व्यक्तित्व की जो विविधता, व्यापकता, गति-शीलता, रहस्यवादिता, यथार्थवादिता, उदात्तता, करुणा, अहंवादिता, भव्यता, समसामयिकता, स्पर्धा आदि है उसका विस्तृत विवेचन समग्र रूप में नहीं है। इन परस्पर-विरोधी तत्त्वों में 'निराला' यथार्थ के धरातल पर सामंजस्य स्थापित नहीं कर सके, बुद्धितत्त्व तथा राग-तत्त्व में भी वह समन्वय स्थापित नहीं कर सके और इसके परिणामस्वरूप भी उनका व्यक्तित्व खण्डित होता गया और उनका काव्य अपनी आभा को खोता गया। 'निराला' जीवन-वास्तव की कठोरता एवं कटुता से निरन्तर संघर्ष करते हुए कभी इसके सम्मुख हुए तो कभी इससे विमुख हुए, कभी इसका साक्षात्कार किया तो कभी इससे पलायन भी किया, कभी भोगी बने तो कभी योगी, कभी कवि बने रहने का संकल्प किया तो कभी संन्यासी बनने की ठानी। यह उनके आन्तरिक द्वन्द्व का परिणाम है। इनकी रचनाओं में 'जुही की कली' है जो छायावादी

काव्य-बोध की सृष्टि है, उन्मुक्त प्रेम तथा सौंदर्य-दृष्टि की प्रतीक है, 'तुम और मैं' है जो अद्वैतवादी चिन्तन की अभिव्यक्ति है, 'यमुना के प्रति' है जो भारतीय संस्कृति से कवि के अगाध स्नेह का प्रतीक है, 'बादल राग' है जो स्वच्छन्दता तथा नव जागरण का प्रतीक है, 'शिवाजी का पत्र' है जो राष्ट्रीयता का प्रतीक है, 'तुलसीदास' है जो नारी की प्रेरक शक्ति का प्रतीक है, 'राम की शक्ति-पूजा' है जो रहस्यात्मक शक्ति-साधना का प्रतीक है, 'कुकुरमुत्ता' है जो जीवन-यथार्थ की अभिव्यक्ति है, 'नये पत्ते' है जो व्यंग्यात्मकता का प्रतीक है, 'गीतिका' है जो भक्ति-भावना का प्रतीक है। इस प्रकार निराला-काव्य के अनेक स्वर हैं, विविध शैलियाँ हैं, विभिन्न रूप हैं जो उनके व्यापक व्यक्तित्व की देन हैं तथा उस व्यक्तित्व की विसंगतियों का परिणाम हैं। इन विसंगतियों पर विजय पाने के लिए निराला का व्यक्तित्व तथा काव्य दोनों गतिशील रहे हैं और इस गतिशीलता में कभी प्रगति का स्वर उभरा है तो कभी प्रतिक्रिया की ध्वनि निकली है, कभी विकास का रंग गहराया है तो कभी ह्रास का फीका पड़ा है। इसलिए इनके काव्य को किसी विशिष्ट क्रम में बाँधना उनके व्यक्तित्व को किसी विशिष्ट साँचे में फिट करने के समान है। इनका काव्य कभी बुद्धितत्त्व द्वारा अनुशासित है, कभी रागतत्त्व द्वारा प्रेरित और कभी कल्पनातत्त्व द्वारा अनुप्राणित है। निराला की आदि रचनाओं में इन तीनों तत्त्वों का संतुलन है, त्रिवेणी का संगम है, परन्तु बुद्धितत्त्व बार-बार उभरने के लिए अधीर है। यह स्थिति छायावादी रचनाओं में उपलब्ध होती है। इसके उपरान्त बुद्धितत्त्व रागतत्त्व पर छा जाता है और कल्पनातत्त्व को भी दबोच लेता है और यह स्थिति उनके व्यंग्य-काव्य में लक्षित होती है। उनके काव्य पर दुरूहता, अस्पष्टता, क्लिष्टता का जो आरोप लगाया जाता है उसका एक कारण बुद्धितत्त्व तथा दार्शनिक तत्त्व की प्रधानता है। निराला-काव्य में वस्तुपक्ष का मूल्यांकन करते हुए डॉ० धनञ्जय वर्मा ने उसे इन चार भागों में विभक्त किया है। इनमें छायावादी रचनाएँ हैं जो सौंदर्य-बोध से ओतप्रोत हैं, गीतिकाव्य है जिसमें शास्त्रीय संगीत पद्धति का परिष्कार है, व्यंग्य-काव्य है जिसमें सामाजिक चेतना एवं यथार्थ की अभिव्यक्ति है, 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा', 'यमुना के प्रति' आदि हैं, जिनमें सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यंजना है। निराला-काव्य के शिल्पपक्ष में छन्द-विधान को एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में आँका गया है। निराला और मुक्त छन्द में उतना ही अटूट सम्बन्ध है जितना इनके काव्य तथा व्यक्तित्व में गहरा नाता है। 'निराला' का जीवन तथा साहित्य मुक्तछन्द का प्रतीक है। इनमें स्वच्छन्तावाद का विद्रोही स्वरूप सबसे अधिक निखरा एवं बिखरा है। इस प्रकार निराला के काव्य के वस्तुपक्ष तथा शिल्पपक्ष का निरूपण काव्य की सामान्य विशेषताओं के आधार पर किया गया है। इनके काव्य तथा व्यक्तित्व में जो आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति उपलब्ध होती है और जिसके आधार पर इनके काव्य का मूल्यांकन अधिक विशद एवं संतुलित रूप में हो सकता है उसकी प्रायः उपेक्षा की गई है। आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति इनके काव्य तथा व्यक्तित्व में विसंगतियों की जननी है और इसके परिणामस्वरूप 'निराला' एक ओर सामन्ती रूढ़ियों का विरोध करने के

लिए बाधित हैं तो दूसरी ओर वे समाजवादी सत्य को पूरी तरह आत्मसात करने में असफल रह जाते हैं। इसका सूक्ष्म संकेत 'कुकुरमुत्ता में मिल जाता है। छायावादी रचनाओं में कवि व्यक्ति-सत्य के आधार पर सामन्ती रूढ़ियों के प्रति विद्रोह करते हैं और साथ ही सामाजिक व्यंग्य के स्वर को उभारते भी हैं। निराला की व्यक्तिमूलक, विद्रोहात्मक तथा द्वन्द्वग्रस्त जीवन-दृष्टि इनकी सौंदर्यपरक कविताओं, करुणात्मक रचनाओं, रहस्यात्मक अनुभूतियों तथा व्यंग्यात्मक काव्य के मूल में है और यह जीवन-दृष्टि इनके प्रकृति-चित्रण, नारी-चित्रण, मुक्त-छन्द, शास्त्रीय संगीत, प्रतीक-विधान, अलंकार-विधान, बिम्ब-विधान की प्रेरक शक्ति है; यही कवि की अनुभूति को नाम तथा अभिव्यक्ति को रूप देती है। इस आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति के आधार पर निराला-काव्य की विविधता, व्यापकता तथा गतिशीलता को अधिक स्पष्ट रूप में आँका जाता है और आंशिक रूप में इनके उन्माद की स्थिति को भी समझा जा सकता है। इस आन्तरिक विरोध को शांत करने के लिए निराला ने वस्तु एवं शिल्प के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं।

निराला की काव्य-साधना तथा आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति निरन्तर गतिशील रही है। इनके काव्य-तन्तु बिखरते गए हैं और इनका उन्माद गहरा होता गया है। इनके काव्य तथा व्यक्तित्व में दार्शनिक की जिज्ञासा, रूप की लिप्सा, भक्त की विह्वलता, प्रेमी की उत्कटता, क्रान्ति एवं विद्रोह की उग्रता, वीर की ओजस्विता, मानव की स्पर्धा, अहं की महत्त्वाकांक्षा, हृदय की द्रवणशीलता, बुद्धि की कुशलता, नायक की उदात्तता, नेता की अहंमन्यता, हिन्दी की सेवापरायणता के विविध तथा परस्पर-विरोधी स्वर ध्वनित होते हैं। एक ओर वह रहस्य के सूक्ष्म तत्त्वों की खोज में व्यस्त हैं तो दूसरी ओर वह लौकिक जीवन से अगाध प्रेम भी रखते हैं, एक ओर वह पुरातन में उजले रंग भरते हैं तो दूसरी ओर वह आधुनिक पर व्यंग्यबाण भी छोड़ते हैं, एक ओर वह वंशी की मधुर तान सुनते हैं तो दूसरी ओर वह ओज का शंखनाद भी करते हैं, एक ओर वह आदर्श के प्रति उन्मुख हैं, तो दूसरी ओर वह यथार्थ के प्रति आग्रह भी रखते हैं। इन परस्पर-विरोधी तत्त्वों से इनका व्यक्तित्व निर्मित है और इन सम-विषम स्वरों से इनका काव्य-संगीत रचित है। इनके काव्य तथा व्यक्तित्व के मूल में जो आन्तरिक द्वन्द्व की स्थिति है उसका विश्लेषण अपेक्षित होकर भी उपेक्षित रहा है।

निराला का काव्य मूल्यांकन-३

विजयेन्द्र स्नातक

आधुनिक हिन्दी साहित्य में निरालाजी विद्रोह, क्रान्ति और परिवर्तन के कवि माने जाते हैं। विरोध और संघर्ष को स्वीकार कर अपनी काव्यधारा को नवीन मार्ग से प्रवाहित करने की जैसी सामर्थ्य निराला में है वैसी हिन्दी के किसी अन्य कवि में नहीं है। कदाचित् उनकी इस दुर्द्धर्ष क्षमता को देखकर ही उन्हें महाप्राण कवि कहा जाता है। युगांतरकारी साहित्य-सर्जन की प्रेरणा से निराला ने साहित्य के विविध रूपों को ग्रहण किया है। गद्य और पद्य, दोनों ही क्षेत्रों में उनके द्वारा जो प्रयोग किए गए हैं, वे ऐसे हैं जिनका महत्त्व आँकना सरल नहीं है। जिस समय निराला अपनी प्राणवत्ता के साथ हिन्दी साहित्य के प्रांगण में अवतरित हुए, साधारण पाठक उनकी रचनाओं की गहराई में सहज रूप में प्रवेश न कर सका। फलतः निराला की रचनाओं को क्लिष्ट और अस्पष्ट बताकर दूर रखने का प्रयास किया गया, किन्तु जिस काव्य में शक्ति और ओज होता है वह क्लिष्टता के क्षणिक आरोप से दबाया नहीं जा सकता।

निरालाजी का शैशव बंगाल में व्यतीत हुआ और प्रारम्भिक शिक्षा भी बंगला भाषा में ही हुई। जिन दिनों निरालाजी बंगला में अपनी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, उन दिनों स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का वहाँ की शिक्षित जनता पर बहुत व्यापक प्रभाव था। अद्वैतवाद की नवीन दृष्टि से जैसी व्याख्या स्वामी विवेकानन्द ने की थी, वह देश-विदेश में बड़े सम्मान के साथ ग्रहण की जा रही थी। बालक सूर्यकान्त पर भी इन विचारों की गहरी छाप पड़ना स्वाभाविक था। अद्वैत वेदान्त की इस प्रवृत्ति को तब और प्रश्रय मिला जब सूर्यकान्त त्रिपाठी को रामकृष्ण मिशन की ओर से प्रकाशित होने वाले 'समन्वय' पत्र के सम्पादकीय विभाग में काम करने का अवसर मिला।

बँगला भाषा, वेदान्ती भावना, विरक्त साधु-संन्यासियों की विचारधारा आदि ने निराला की प्रारम्भिक रचनाओं को अत्यधिक प्रभावित किया। जब निराला ने हिन्दी में कविता लिखना प्रारम्भ किया तब वे हिन्दी की अपेक्षा बँगला और संस्कृत के अधिक निकट थे। सौभाग्य से पत्नी तो हिन्दीभाषिणी थी, उसकी

प्रेरणा से हिन्दी के प्रति नैसर्गिक अनुराग जाग्रत हुआ और हिन्दी को ही आपने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। जब इन्होंने लिखना प्रारम्भ किया तो इतना तीव्र प्रवाह चला कि उपन्यास, कहानी, कविता, निबन्ध, आलोचना सभी दिशाओं में लेखनी घूम गई।

निराला ने जिस युग में कविता लिखना प्रारम्भ किया वह द्विवेदी युग का अंतिम चरण और छायावाद-युग का उन्मेष-काल था। कविवर प्रसाद की छायावादी रचनाएँ शनैः-शनैः प्रकाश में आने लगी थीं और हिन्दी कविता में नई दिशा की सूचना मिलना प्रारम्भ ही हुआ था। कवि निराला की पत्नी का असामयिक देहान्त होने से कवि के मानस पर उसका वियोगजन्य प्रभाव पड़ा। कवि ने शून्य में निहारते हुए 'जुही की कली' कविता लिखी जो कल्पना के वेग को ग्रहण कर भावाभिव्यक्ति में समर्थ हुई। इस कविता की शैली, प्रसाधन, भंगिमा सब-कुछ एकदम नवीन था। इतना अभिनव कि हिन्दी का पाठक उसे अपनाने में हिचकिचाया; उसे लगा कि कहीं यह सब किसी और भाषा का तो नहीं है। किन्तु हिन्दी में नूतन शक्तिक्षमता भरने वाली यह कविता कवि की प्राणवत्ता का परिचय देती हुई भावी काव्य-परिच्छेद का भी संकेत प्रस्तुत कर गई—

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी
स्नेह स्वप्न भग्न अमल
कोमल तनु तरुणी
जुही की कली, दृग बन्द किए
शिथिल पत्रांक में।

'जुही की कली' आज हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्त्व वाली रचना मानी जाती है। इस रचना के भीतर केवल रचयिता की शक्ति का ही आभास नहीं, वरन् उस युग के भावी परिवर्तन का भी संकेत छिपा है। निरालाजी की प्रवृत्ति वेदान्त की ओर होने से उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में दार्शनिक गूढ़ता (या दूसरे शब्दों में हम उसे 'रहस्यवादिता' भी कह सकते हैं) का सन्निवेश रहा है। निराला की अद्वैत भावना को व्यक्त करने वाली उनकी प्रसिद्ध कविता 'तुम और मैं' है। इस कविता में निराला ने ब्रह्म की सत्ता को सत्य मानते हुए अपने अहं को उसी में लीन करके देखा है—स्त्रीत्व के रूप में नहीं वरन् उसी शक्ति का एक लघु रूप मानकर। अग्नि के स्फुलिंग की भाँति अहं को उस विराट् का एक अंश मानना ही अभिप्रेत है। भाव-वस्तु के साथ कविता में काव्यगुण भी इतना उच्चकोटि का है कि कविता दार्शनिक परिवेश में भी पाठक के मन को पूर्णता के साथ पकड़ने में समर्थ होती है—

तुम तुंग हिमालय शृंग और मैं चंचल गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त कामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शांति, तुम सुरापान घन अंधकार।
मैं हूँ मतवाली भ्रांति।

इस कविता का मूलभाव वेदान्त पर आधृत है, किन्तु जगत् या जीवन के प्रति ऐसी कोई विरक्ति इसमें से प्रतिध्वनित नहीं होती जो 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का संदेश देकर साधक को संसार से विरत कर सके। कवि के सामने संसार है और उसमें आत्मा का बोध है। यह आत्मबोध ही आशावाद का स्रष्टा है। नैराश्य को दर्शन का अंग माना भी क्यों जाय ? इसी भाव को एक दूसरी कविता में बड़ी शक्ति के साथ कवि ने व्यक्त किया है—

जीवन की विजय, सब पराजय,
चिर अतीत आशा, सुख, सब भय,
सबमें तुम, तुममें सब तन्मय।

'परिमल' संग्रह में आशा और जागरण की भावना से परिपूर्ण अनेक कविताओं द्वारा कवि ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि ब्रह्म की सत्ता अखंड और सत्य होने पर भी यह जीवन नैराश्य या कुण्ठा के लिए नहीं मिला है। ब्रह्म-चिन्तन निरालाजी का प्रिय विषय रहा है। औपनिषदिक चिन्ता-धारा का अनुसरण करते हुए उसका अद्वैत भावना के साथ समन्वय करने की कला निरालाजी को प्राप्त है। परिमल की चिन्तनप्रधान तथा भावनाप्रधान, दोनों ही कोटि की कविताओं में कवित्व का मांसल पुट दृष्टिगत होता है। नीचे की कविता में चिन्तन की प्रधानता है—

तुम हो अखिल विश्व में या यह अखिल विश्व है तुममें।
अथवा अखिल विश्व तुम एक यद्यपि देख रहा हूँ तुममें भेद अनेक।
बिन्दु विश्व के तुम कारण हो या यह विश्व तुम्हारा कारण।
पाया हाय न अब तक इसका भेद,
सुलझी नहीं ग्रन्थि मेरी, कुछ मिटा न खेद।

दार्शनिक चिन्ताधारा के साथ निराला के मन पर भारतीय जीवनदर्शन की छाप भी गहरी पड़ी है। अतीत के सुन्दर चित्र अंकित करते हुए करुणा, प्रेम और समवेदना को निराला ने अपने काव्य-विषयों में स्थान दिया है। जगत् में चारों ओर बिखरे हुए दुख-दैन्य को कवि ने अपने काव्य में करुणा के माध्यम से गाया है। जिन कारुणिक दृश्यों से हमारी भावना सिक्त होती है और हम द्रवित हो उठते हैं, कवि निराला ने उन्हें गहराई से समझा और दृढ़ता से पकड़ा है। विधवा, भिक्षुक, दीन मज़दूर आदि विषयों का चयन कवि के अन्तर की करुणा का ही प्रतिरूप है। इन कविताओं में शब्दों के माध्यम से सूक्ष्म करुणा को जहाँ कवि ने मूर्तिमन्त और सजीव किया है वहाँ साथ-ही-साथ काव्य के अलंकृत उपकरणों को भी अपनी परिपूर्णता तक पहुँचाया है। प्रत्येक कविता सामाजिक अभिशाप पर व्यंग्य और प्रहार की दुर्निवार शक्ति लेकर सामने आती है। प्रगतिवादी विचारधारा में जो विद्रोही स्वर पनपा था वैसा ही स्वर इन कविताओं के अन्तराल में छिपा है, मानो कवि ने आने वाली प्रगति को बीस वर्ष पहले ही समझ लिया हो। 'विधवा' शीर्षक कविता का काव्य-शिल्प अद्भुत है—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शांत, भाव में लीन
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा-सी
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की विधवा है।

'भिक्षुक' शीर्षक कविता अपने सजीव वर्णन के लिए हिन्दी साहित्य में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है—

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को, भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता।

निराला की कविता में जन-जागरण तथा राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण गीतों का भी विशेष स्थान है। अपने अतीत गौरव का स्मरण करते हुए उद्बोधन के उद्देश्य से ऐसे ओजस्वी गीत उन्होंने लिखे जो परतंत्र देश की जनता में जीवन-संचार की अद्भुत क्षमता रखते हैं। अपने राष्ट्र की महानता का स्मरण करते हुए कवि ने प्रार्थना के स्वर में जिस उदात्त गरिमा का संचार किया है वह देखते ही बनता है—

मुकुट शुभ्र हिम तुषार, प्राण प्रणव ओंकार।
ध्वनित दिशाएँ उदार, शतमुख शतरव मुख रे।

इस गीत का मूल भाव, प्रार्थना है, किन्तु इसकी पृष्ठभूमि सांस्कृतिक चेतना है तथा राष्ट्रीयता इसकी ध्वनि है जिसे सुनकर प्रार्थना करने वाले का अन्तःकरण दीप्त और भास्वर हो उठता है। भारतवर्ष के अतीत गौरव का स्मरण कराने वाली कविताओं में 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'यमुना', 'जागो जीवन धनिके' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। सांस्कृतिक धरातल पर आधृत आख्यानक कविताओं में 'पंचवटी-प्रसंग', 'राम की शक्ति पूजा', 'सहस्राब्दि' मुख्य हैं। 'यमुना' कविता में एक ओर सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का सौंदर्य है तो दूसरी ओर काव्य-शिल्प का मनोहारी रूप भी उसे कान्तिमय बना रहा है। छायावादी कविता के प्रतीकात्मक अलंकरण इस कविता में अपने सौंदर्य के निखार पर हैं—

बता कहाँ अब वह वंशीवट, कहाँ गए नटनागर श्याम?
चल चरणों का व्याकुल पनघट, कहाँ आज वह वृन्दाधाम?
कभी यहाँ देखे थे जिनके श्याम विरह से तपे शरीर,
किस विनोद की तृषित गोद में आज पोंछतीं वे दृग नीर?

व्यंग्य, विप्लव, विद्रोह और संघर्ष को व्यक्त करने के लिए निराला ने जो कविताएँ लिखीं उनमें केवल पैना दंश ही नहीं, वरन् निर्माण का स्वर भी गूँजता है। 'कुकुरमुत्ता' उनकी एक व्यंग्यप्रधान रचना है। अँग्रेज़ी में जिसे 'सेटायर' कहते

हैं वह इस पर चरितार्थ होता है । 'कुकुरमुत्ता' से पहले भी आपने व्यंग्य-प्रधान अनेक कविताएँ लिखी थीं, किन्तु इसमें आकर आपका व्यंग्य प्रहार के चरम विन्दु तक पहुँच गया है। 'कुकुरमुत्ता' में कवि ने आध्यात्मिक एवं भौतिकवादी उपादानों पर तीव्र प्रहार किया है। अद्वैतवाद और पैराशूट, दोनों का उपहास करते हुए निराला ने 'कुकुरमुत्ता' को प्रयोग की देहली पर ला खड़ा किया है। गुलाब को देखकर कुकुरमुत्ता कहता है—

खून खींचा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।

गुलाव को कैपिटलिस्ट बताकर साम्राज्यवादी वर्ग का प्रतीक ठहराया है। सामाजिक व्यंग्य की दृष्टि से कुकुरमुत्ता का स्थान बहुत ऊँचा है। निर्धन वर्ग के जीवन को 'कुकुरमुत्ता' के समान चित्रित करते हुए कवि ने साम्यवादी बना डाला है।

विप्लव और विद्रोह की भावना को व्यक्त करने के लिए निरालाजी ने अनेक कविताएँ लिखी हैं, किन्तु 'बादल राग' को उनकी सबसे अधिक विप्लव-कारिणी कविता कहा जाता है। छह रागों में कवि ने कविता को समेटा है। प्रथम राग मधुर है। दूसरा भैरव है। बादल को कहीं विप्लवकारी, कहीं आतंकवादी, कहीं क्रान्तिकारी रूप में चित्रित करके कवि ने विप्लव का रूप खड़ा किया है।

निराला ने 'सरोज-स्मृति' शीर्षक कविता शोकगीत की शैली में लिखी है जिसमें अपनी पुत्री के असामयिक निधन से उद्‌भूत करुणा-शोकमयी भावनाओं को कवि ने 'ऐलेजी' की शैली से वर्णित किया है। पुत्री के निधन पर कवि को उसका बाल्य-काल स्मरण हो आता है जब सवा साल की आयु में ही नन्ही बच्ची की माँ का देहावसान हो गया था। इस कविता में विवाह-सम्बन्धी रूढ़ियों पर भी कवि ने व्यंग्य किया है। सरोज की मृत्यु पर कवि के मर्माहत शब्द पुकार उठे—

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

निराला के काव्य में प्रकृति-चित्रण का सुन्दर रूप उनके 'गीतिका' संग्रह में दृष्टिगत होता है। प्रकृति को नारी के रूप में चित्रित करने की प्राचीन परिपाटी का कवि ने निर्वाह नहीं किया है वरन् स्वतन्त्र दृश्यांकन के रूप में ही प्रकृति के मनोहर चित्रों को अंकित किया है। प्रकृति को रहस्यवादी दृष्टि से देखने का मोह दार्शनिक कवि निराला संवरण नहीं कर सके हैं। प्रकृति के सुन्दर पदार्थों में निहित चरम सौंदर्य को पा लेने की इच्छा कवि के अन्तर में सतत विद्यमान रही है, जिसके फलस्वरूप प्रकृति-चित्रण पर रहस्यवाद का झीना आवरण पड़ना स्वाभाविक है। किन्तु यह स्थिति सर्वत्र नहीं है। 'शेफालिका' कविता में जहाँ अद्वैतवादी विचारधारा का प्रभाव है, कवि रहस्य के आवरण में कहता है—

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिके।

शेफाली को वासकसज्जा नायिका (आत्मा) के रूप में चित्रित कर प्रेमी गगन (परमात्मा) से मिलने का संकेत कवि ने किया है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक सौंदर्य के स्वतंत्र वर्णनों की भी निराला की कविता में कमी नहीं है। दिवसावसान के समय मेघमय आसमान से उतरती हुई परी-सी सुन्दरी संध्या-सुन्दरी का आलंकारिक वर्णन देखिए—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
यह संध्या सुन्दरी परी-सी, धीरे, धीरे, धीरे।

संध्या का दूसरा वर्णन और देखिए—

अस्ताचल ढले रवि, शशि छवि विभावरी में।
चित्रित हुई है देख, यामिनी गंधा जगी॥

प्रगति और प्रयोग की दृष्टि से निराला का काव्य अन्य कवियों से सदैव दस वर्ष आगे रहा है। जिसे आज के युग में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद कहकर व्यवहृत किया जाता है वह निराला की कविता में अपने आगमन से दस वर्ष पहले झाँकने लगा था। प्रयोगों की बहुलता देखनी हो तो निराला की 'नये पत्ते' शीर्षक रचना अनुशीलन के योग्य है। इन कविताओं के विषय प्रगतिशील विचारधारा के हैं और प्रक्रिया की शैली प्रयोगवादी कही जा सकती है।

सामाजिक एवं राजनीतिक व्यंग्य की कविताओं के साथ मार्क्सवादी विवेचन को मिलाकर कवि ने इनमें प्रगतिशीलता का अच्छा समाहार किया है। 'गर्म पकौड़ी' और 'प्रेम-संगीत' कविताओं में व्यंग्य की मनोहारी छटा है—

पहले तूने मुझको खींचा दिल देकर कपड़े-सा फींचा।

इन प्रयोगों में कवि के अन्तर्मन पर पड़े संस्कार भी हैं और युग-संघर्ष से उद्भूत मनोविकार भी। सामन्तवादी युग की प्रथा-परम्पराओं पर चोट करते हुए कवि की वाणी में मार्क्सवाद का गुंजन सुनाई पड़ता है, किन्तु दूसरी ओर मार्क्सवाद को भी कवि अछूता नहीं छोड़ता। कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो वर्तमान युग में हुए विविध आन्दोलनों का आभास देती हैं। 'स्फटिक शिला' एक अनूठी कविता है जिसमें कवि ने अनेक सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। ग्रामीण युवती का एक स्थान पर वर्णन करते हुए उस पर सीता का आरोप करके कवि ने अपने मन की अवदात भावना का परिचय दिया है—

वर्तुल उठे हुए उरोजों पर जड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की, नहीं जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और कहा तुम राम की॥

गीति-काव्य को समृद्ध बनाने वाली विविध रचनाओं के साथ आख्यानक गीति (खंड-काव्य), प्रबन्ध-काव्य, नाट्य-कविता और रेखाचित्र भी कवि ने लिखे हैं। इनमें 'पंचवटी-प्रसंग', 'राम की शक्ति-पूजा', 'तुलसीदास' और 'अणिमा' (रेखाचित्र, श्रद्धांजलि आदि) उल्लेखनीय हैं।

नाट्य-काव्य के अन्तर्गत पंचवटी-प्रसंग पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है। पंचवटी-प्रसंग पाँच दृश्यों में विभक्त नाट्य-काव्य है। इसमें राम-सीता के प्रेम-संवाद अति मर्मस्पर्शी शब्दावली में अंकित हुए हैं। इस प्रसंग की मुख्य घटना है शूर्पणखा का आगमन और रूप-वर्णन। शूर्पणखा के रूप का वर्णन सुनिए—

मीन मदन फाँसने की वंशी-सी विचित्र नासा
फूल दल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल
चिबुक और हँसी बिजली-सी
योजन गंध पुष्प जैसा प्यारा वह मुखमंडल
फैलते पराग दिङ्मंडल आमोदित कर
खिंच आते भौंरे प्यारे।

'पंचवटी प्रसंग' लिखते समय निराला के सामने मानव-कथा का पहलू रहा है। निराला ने कथा को ईश्वरीय या अतिमानवीय नहीं बनाया है। इस प्रसंग का काव्य-शिल्प अति समृद्ध और छायावादी उपलब्धियों से भरा हुआ है।

'राम की शक्ति-पूजा' निराला की सबसे प्राणवान, ओज गुण-प्रधान रचना है। इस कविता की टक्कर की दूसरी कविता हिन्दी में नहीं मिलती। पौराणिक कथानक को कवि ने अपनी कल्पना और काव्य-सौष्ठव द्वारा पल्लवित करके जो रूप दिया है वह सर्वथा नूतन है। जिस छन्द, लय, स्वर और पदावली में कविता बाँधी गई है वह प्रक्रिया ही हिन्दी के लिए अभिनव है। द्वन्द्व और संघर्ष नाटक के प्राण तत्त्व होते हैं। इस कविता में वर्णित राम का अन्तर्द्वन्द्व नाटकीयता में अपने चरम बिन्दु को स्पर्श करने वाला है। नाटक की पाँचों कार्यावस्थाओं का विधिवत् पालन करते हुए कवि ने इस कविता को उत्कर्ष के सर्वोच्च धरातल पर ले जाकर खड़ा किया है। युद्ध के वातावरण की उत्तेजना और उसकी भूमिका में राम की सभा का विषाद-पूर्ण चित्रण प्रारम्भ है; राम की निराशा, हनुमान की उत्तेजना और विभीषण के द्वारा उद्बोधन प्रयत्न है, जाम्बवन्त के द्वारा राम को शक्ति-पूजा का परामर्श प्रत्याशा है; राम द्वारा पूजा का विधान नियताप्ति है और अन्त में शक्ति द्वारा विजय-मंगल का वरदान फलागम है।

कविता का प्रारम्भ और अन्त एक ऐसे नाटकीय ढंग से होता है कि पाठक के मन में कुतूहल, विषाद, हर्ष, उत्कंठा, औत्सुक्य आदि नाट्य-संचारियों का ताँता बँधा रहता है। भाषा और शैली में आदि से अन्त तक महाकाव्य सदृश उदात्त गरिमा अनुस्यूत है। भाषा को महाप्राण वर्णों के प्रयोगों द्वारा ओजस्वी बनाया गया है। दीर्घ समासों की छटा से वाक्यावली को युद्ध-संघर्ष के अनुकूल किया गया है; अमूर्त्त अन्तर्द्वन्द्व को सघन एवं सुदृढ़ प्रतीकों द्वारा मूर्तिमान किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

है अमा-निशा, उगलता गगन घनांधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान स्तब्ध हैं पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल॥

संक्षेप में, 'राम की शक्ति पूजा' केवल एक लम्बी आख्यानक कविता ही नहीं अपितु वह अभिव्यंजना-सौष्ठव का चरम उत्कर्ष प्रस्तुत करने वाली ऐसी कविता है जिसे छायावादी अभिव्यक्ति का श्रेष्ठतम निदर्शन कहा जा सकता है।

'तुलसीदास' निराला का प्रवन्ध-काव्य है जिसमें कवि ने मध्यकालीन भारतीय इतिहास पर नये दृष्टिकोण से विचार किया है। हिन्दू-संस्कृति के पतन का चित्र अंकित करते हुए कवि ने तुलसीदास को उस पतनोन्मुखी संस्कृति का रक्षक बताया है। संध्या के वर्णन से कविता प्रारम्भ होती है, जैसे भारतीय गगन पर संध्या के बादल छा गये हों। प्रकृति के परिवेश में संश्लिष्ट वर्णन है, उसमें संस्कृति के पतन का अध्याहार करके पाठक मध्ययुग के ह्रास को अपने मानस में देखने लगता है। मुगल सभ्यता के विकास से कवि का अन्तर इसलिए मर्माहत है कि वह भारतीय हिन्दू-संस्कृति के विनाश पर पनप रही है। कुसंस्कारों की कालिमा देश पर छा रही है, मतमतांतरों के घटाटोप से देश आच्छन्न है। इस वर्णन के बाद कवि ने रत्नावली के प्रेम का चित्र खींचा है। रत्नावली के नारी भाव को निराला नवीन दृष्टिकोण से परखते हैं और उन्होंने रीतिकालीन परम्पराओं को समाप्त कर दिया है। तुलसी के मन को ऊर्ध्वगामी बनने की प्रेरणा कवि ने दी है और उसे एक ऐसी भूमि पर ले जाकर खड़ा कर दिया है जहाँ से उनका कवि सार्वभौम रूप भास्वर हो उठा है।

तुलसीदास का काव्य-शिल्प निराला की सामर्थ्य के सर्वथा अनुकूल है। तुलसी का वर्णन देखिए—

भारत के नभ का प्रभा पूर्य शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य।
अस्तमित आज रे, तमस्तूर्य दिङ्मंडल।

संक्षेप में, निराला ने छायावादी कविता में नूतन भाव-वस्तु के साथ कला के रूप-विधान में भी नवीनता का वरदान दिया। उनकी भाषा, उनके छन्द, उनकी वर्ण-योजना, सब-कुछ मौलिक होने के साथ दीप्ति और कान्ति के उस शिखर को स्पर्श करती है जिसे प्रसाद की 'कामायनी' को छोड़कर और किसी कवि का काव्य नहीं कर सका।

मुक्तक छन्द का श्रीगणेश निरालाजी ने किया, छन्दों की विविधता और प्रयोगवादी परम्परा उन्होंने प्रारम्भ की। तुक और लय-स्वर में नूतनता का प्रवेश करने में निराला सबसे आगे हैं। स्वच्छन्द छन्द तो उनकी कविता का प्राण रहा है। छन्द के बंधनों में निरालाजी का प्रयत्न जागरूकतापूर्ण है।

भाषा को सँवारने और प्रसंगानुकूल ढालने की कला तो निराला को बँगला और संस्कृत-ज्ञान के कारण सिद्ध हो गई थी। जटिल, दुर्बोध, दुरूह, क्लिष्ट, सब प्रकार के शब्दों से अनमिल वाक्यावली बनाने की त्रुटि होने पर भी निराला की शक्तिमत्ता इसमें है कि वे भाव की जटिलता तथा वर्णन की संश्लिष्टता को शब्दों के चयन से पूरा कर देते हैं।

संस्कृत शब्दों का प्रचुर प्रयोग कविता को जटिल भले ही बना दे, किन्तु प्रसंगानुकूल गति और प्रवाह अवश्य देता है। 'राम की शक्ति-पूजा' कविता इस

कथन का प्रमाण है । युद्ध-वर्णन के प्रसंग की शब्दावली ध्यान देने योग्य है—

आज का तीक्ष्ण शर, विधृत क्षिप्रकर, वेग प्रखर
शत शैल संवरणशील, नील नभ गर्जित स्वर
प्रति पल परिवर्तित, व्यूह भेद कौसल समर ।।

निरालाजी लगभग पिछले पैंतालीस वर्ष तक काव्य-सृजन में लीन रहे । शारीरिक एवं मानसिक रुग्णता के दिनों में भी उनकी लेखनी ने विराम लेना स्वीकार नहीं किया । अस्वस्थ दशा में भी शेर और गज़ल लिखकर उन्होंने अपनी गतिशीलता का परिचय दिया । निराला का महाप्राण व्यक्तित्व इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी भाषा में अभिव्यंजना की पूर्ण शक्ति विद्यमान है, आवश्यकता है प्रतिभाशाली कवि और लेखक द्वारा उसके उपयोग की ।

छायावादी कवियों में निराला का स्थान अपनी कई विलक्षणताओं के कारण सबसे अलग दिखाई देता है । वे छोटे-से-छोटे विषय को अपनी प्रतिभा और काव्य-मेधा के बल पर मूर्तिमान बनाकर खड़ा करने में समर्थ हैं । चित्रमयता का प्रभाव सभी छायावादी कवियों पर पड़ा है, किन्तु प्रसाद और निराला ने इस कला को पूर्णता पर पहुँचाया है । छन्दों में अनुप्रास, लय, स्वर की रक्षा वे इस शैली से करते हैं कि मुक्त छन्द भी छन्द के सौंदर्य का उदाहरण बन जाता है । महाकाव्य की उदात्त शैली पर कविता लिखने का श्रेय निराला को ही है । पंचवटी-प्रसंग और 'राम की शक्ति-पूजा' में यह तथ्य देखा जा सकता है । जितना विरोध निराला ने सहन किया वैसा किसी और कवि को नहीं देखना पड़ा, किन्तु वे पर्वत की भाँति अटल खड़े रहे और अन्त में सभी विरोधियों को उनके सामने झुककर उनके महत्त्व को स्वीकार करना पड़ा । उनके निधन से हिन्दी साहित्य का एक सुदृढ़तम गौरव स्तम्भ टूट गया है, किन्तु उनकी कृतियों की गौरव-गरिमा सदैव अक्षुण्ण रहेगी ।

विनयमोहन शर्मा

निराला का काव्य मूल्यांकन-विदेशियों की दृष्टि में

'निराला' राष्ट्रभाषा हिन्दी के ऐसे कवि हैं जिनका अपना व्यक्तित्व सचमुच 'निराला' है, उनकी रचनाएँ जीवन के व्यापक क्षेत्र को घेरती हैं। उन्होंने भाषा, छन्द और 'वस्तु' के बहुविध प्रयोग किए हैं। "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी" के अनुसार उनकी रचनाएँ आधुनिक हिन्दी कविता के सभी 'वादों' में बाँधी जा सकती हैं, पर वास्तव में हैं वे वादातीत, स्वच्छन्द। सन् १६५७ के लंदन टाइम्स के भारतीय साहित्य के समीक्षक ने हिन्दी के केवल 'निराला' को सादर स्मरण किया है। रूसी हिन्दी-प्रेमी केलीरोव ने 'सोवियट लिटरेचर' में उन पर एक विस्तृत लेख भी लिखा है। नीचे उसी का अंश दिया जा रहा है—

भारत में आज कविता अत्यधिक लोक-प्रचलित साहित्य-विधा है। सन् १६३३ में जब मैं भारत में था तब कई बार मुझे दिल्ली में कवि-सम्मेलनों में भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनमें काव्य-प्रेमी श्रोता घंटों सिर हिला-हिलाकर कविताओं को सुनते और यदा-कदा झूम-झूम उठते थे। वे कविता की एक-एक पंक्ति को हृदयंगम करने को उत्सुक दिखलाई देते थे। एक तरुण कवि ने एक कविता पढ़ी जिसने मुझे बहुत प्रभावित किया। उसके भाव-गांभीर्य, कल्पना-चित्रों का सौंदर्य और नाद-माधुर्य पर मैं मुग्ध हो गया। तूफान में नौका जल से भरने लगती है, पतवार बह जाते हैं, सघनांधकार है, फिर भी नाविक जल की तीव्रतर लहरों से संघर्ष करता है और अपनी नाव को साहस से खे ले जाता है।

तरुण कवि ने महाकवि 'निराला' की कविता पढ़ी थी। 'महाकवि' का अर्थ हिन्दी में बड़ा कवि होता है। भारत में बहुत ही कम कवि इस नाम से अभिहित किये जाते हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सन् १८६६ में और उनकी साहित्य-सेवा का प्रारंभ भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के समय हुआ था। उनकी कृतियों में उस आन्दोलन की प्रतिक्रिया दिखलाई देती है। उन्होंने आन्दोलन की शक्ति और उसकी कमज़ोरी दोनों का चित्रण किया है।

'निराला' ने सन् १६२० के लगभग लिखना प्रारंभ किया। उस समय वे

'रोमांचवादी' कवि थे। उन्हें प्रकृति का सौंदर्य अभिभूत किये हुए था। उसमें उन्हें उस अदृश्य-शक्ति का भान हो रहा था जिसे वे पराधीन जनता के बन्धनों को काटने और उसे सुखी बनाने में सहायक समझते थे। पर क्रमशः वे जीवन की गहराई का अनुभव करते गये। उनका राजनैतिक और सामाजिक उत्पीड़न के प्रति विद्रोह उभरता गया। बाह्य जगत् का वास्तविक सत्य अधिक-से-अधिक मात्रा में उनकी कृतियों में अभिव्यक्त होने लगा। इस तरह क्रमशः निराला 'रोमांचवाद' से 'वास्तववाद' की ओर अग्रसर हुए।

'निराला' के प्रादुर्भाव के समय हिन्दी कविता दो भागों में प्रवाहित हो रही थी। एक में राष्ट्रीयता का स्वर था जिसका श्रीगणेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और मैथिलीशरण गुप्त ने कर दिया था। दूसरी धारा धार्मिक और रहस्य-कुंठाओं से ग्रस्त थी।

मानवता और राष्ट्रसेवाओं को लेकर चलने वाली काव्य-धारा की भावनाओं के साथ निराला ने हिन्दी कविता को एक नया रूप प्रदान किया। उन्होंने जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा के साथ ही हिन्दी में नयी कविता के युग का नेतृत्व किया, जिसे 'छायावाद' कहते हैं। यह रोमांटिक आन्दोलन था जिसमें मानववाद की भावना सन्निहित थी। सन् १९२० से १९३० तक हिन्दी कविता में इस वाद का बोलवाला रहा।

इसके अनुयायी कवियों के धर्म और दर्शन का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न था, उनकी नैतिकता और मानव-सौंदर्य की भावना भी पूर्ववर्ती कवियों से भिन्न थी। उन्होंने आध्यात्मिक मूल्यों को नवीन रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने विश्वासों को नये प्रतीकों द्वारा प्रकट किया। कवि के लिए उषा भारतीय इतिहास के नूतन युग की अग्रदूत है, मेघों की गड़गड़ाहट भावी स्वाधीनता आन्दोलन की आत्मा है, तूफान नूतन सृष्टि की भूमिका, प्रवाह जागरूक शक्ति का गति-चक्र है।

'निराला' की कविता में प्रकृति का 'असत्य' या 'मिथ्या' रूप नहीं है, वह विश्वात्मा की छाया है। उषा, वर्षा, मेघ, आँधी, प्रवाह आदि केवल प्रतीक नहीं हैं, वे जीवित स्पन्दनशील तत्त्व हैं। कवि प्रेम को भी नूतन रूप में चित्रित करता है। 'अनामिका' और 'परिमल' में कवि मानव-प्रेम की महानता और आध्यात्मिक शक्ति के प्रतीक देवताओं के प्रति जागरूक है। 'निराला' की प्राथमिक रचनाओं में देश के सुखद भविष्य का स्वप्न छाया हुआ है। वह नये युग के आगमन की भी आशा करता है। तत्कालीन रचनाओं में संहार और सृष्टि के देवता शिव के तांडव नृत्य तथा काली के कृत्यों का पुनः-पुनः उल्लेख मिलता है।

साथ ही वह यथार्थ से असंतुष्ट होकर भारत के अतीत गौरव का भी स्मरण करता है। 'दिल्ली', 'खंडहर' और पंजाब के विद्रोही गुरु गोविन्दसिंह-सम्बन्धी रचनाएँ इसी कोटि की हैं।

'निराला' की रचनाओं में पीड़ित असहाय आत्मा की उसासों और अश्रुधारा के प्रायः दर्शन होते हैं। वह मानव-जाति के कष्ट और उत्पीड़न का निवारण करना

चाहता है । पर वह अपने असामर्थ्य के कारण नैराश्य से भर जाता है । कष्टकर वास्तविकता से भागकर कवि आध्यात्मिक शक्ति का आश्रय लेता है, इस आशा में कि वह ऐसे सुन्दर जगत् का निर्माण कर सकेगी जहाँ न हिंसा होगी, न उत्पीड़न, जहाँ सतत प्रभात, वसंत और शान्ति का साम्राज्य होगा ।

'निराला' की समस्या है—"यदि संसार और मनुष्य असत्य है, तो फिर उनकी कोई क्या सेवा कर सकता है ?" रहस्यवाद की दुनिया कवि को सन्तोष नहीं दे पाती; उसकी रचनाओं में असन्तोषपूर्ण आदर्श विचारधारा प्रभावित होने लगती है । यद्यपि अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में लगभग बीस वर्ष की आयु में कवि को स्वजन-विरह, भूख और बीमारी की पीड़ा सहनी पड़ी, फिर भी उसकी जीवन पर विजय होने की आस्था में कमी नहीं आई । अपनी एकाकी पुत्री की मृत्यु के पश्चात् भी उसकी जीवन के प्रति आसक्ति अक्षुण्ण रही । कन्या की मृत्यु ने कवि को बुरी तरह झकझोर डाला था । यह आघात भी वह सह गया । उसने 'सरोज की स्मृति' शीर्षक एक शोक-गीत लिखा, जिसमें वह कहता है कि हमें भविष्य का डटकर सामना करना चाहिए और भाग्य के षड्यंत्र को नष्ट-भ्रष्ट कर डालना चाहिये । अपने तारुण्य की कल्पना और प्रतीक प्रचुर रचनाओं में वह एक देशभक्त कवि के रूप में भी प्रकट होता है । वह स्वाधीनता का स्वप्न तो देखता है पर उसे प्राप्त करने का मार्ग उसे सूझ नहीं पाता । अपनी आयु के तीसवें चरण में वह व्यर्थ की आशाओं को और धुँधले स्वप्नों के संसार को त्याग देता है और उसकी दृष्टि सामाजिक हो जाती है । 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति-पूजा' में निम्न जाति के व्यक्तियों का स्वर ऊँचा करने का प्रयत्न है । 'राम की शक्ति-पूजा' में न्याय की अन्याय पर विजय घोषित है । इन रचनाओं में कवि छायावाद के शिल्प के अनुरूप ही अपने को व्यक्त करता है, जिसमें मुक्त छन्द का प्रयोग है, जिसका आविष्कार उसने सुमित्रानन्दन पन्त के साथ ही किया था । सन् १९३५ के लगभग निराला का मैक्सिम गोर्की के साहित्य से परिचय हुआ । जैसा कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं, इससे उन्हें 'गोर्की के समाजवादी यथार्थ' को चित्रित करने की प्रेरणा मिली । जनता के सच्चे कवि की नाई उन्होंने साम्यवादी क्रान्ति के अक्तूबर मास की संस्तुति की । जिस समय प्रेमचन्द ने प्रगतिशील प्रवृत्तियों का नेतृत्व किया उसी समय निराला के साहित्य में यथार्थवाद के स्पष्ट दर्शन होने लगे । इस नये आन्दोलन में समाजवादी विचारधारा तीव्रतम गति से प्रवाहित हुई । उपन्यासों में नये नायक और नये रचना-विधान का प्रारम्भ हुआ । 'निराला' ने प्रगतिवादी आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया । उनके पात्र समाज के निम्नतम स्तर के उपेक्षित प्राणी थे जो समाज तथा उपनिवेशवाद द्वारा बुरी तरह रौंदे गये थे । 'निराला' ने इन गरीबों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की । उनके प्रारम्भिक उपन्यास 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा' और 'प्रभावती' रोमांचवाद से विकंपित हो रहे हैं, पर बाद के उपन्यास 'कुल्लीभाट', 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' में यथार्थवाद अपने विकसित रूप में दिखाई देता है । उनमें उत्पीड़ित ग्रामवासियों का अन्याय के प्रति विद्रोह अंकित है । बिल्लेसुर अत्याचार के आगे ज़रा भी नहीं झुकता । वह अपने

अधिकार के लिए लड़ता है । लेखक की सहानुभूति उसके साथ है ।

प्रगतिवादी पत्र 'नया पथ' में सन् १९५४ के एक अंक में किसी ने लिखा था, "बिल्लेसुर आधुनिक यथार्थवादी साहित्य को उतनी ही महत्त्वपूर्ण देन है जितनी प्रेमचन्द का गोदान ।" निराला का सौंदर्य तथा साम्यवादी दृष्टिकोण उनके उपन्यासों या काव्य-कृतियों में ही अभिव्यक्त नहीं है, वह उनके आलोचनात्मक लेखों में भी पाया जाता है । टैगोर, बिहारीलाल, पन्त और अन्य प्राचीन तथा आधुनिक लेखकों की कृतियों के रूढ़िवादी विचारों की कड़ी आलोचना उन्होंने की है ।

सबसे पहले गद्य में उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण दिखाई दिया है, फिर वह कविता में भी प्रतिबिम्बित हुआ । द्वितीय महायुद्ध के बाद से उनकी कविताओं में साम्यवादी विचार विशेष रूप से प्रकट हुए । वह समय ऐसा था जब भारतीय जनता ने बहुत भीषण उत्पीड़न सहा था । उस समय कुछ लेखक या तो मौन रहे या कुछ ने भविष्य की भयंकरता और नैराश्य को अनुभव किया । पर 'निराला' उन प्रगतिवादियों के साथ रहे जिन्होंने अपने बल व साहस का परित्याग नहीं किया और जो उपनिवेशवाद के अत्याचार, अकाल आदि के प्रति संघर्ष लेते रहे ।

प्रयाग के छोटे दरिद्र कमरे में क्षुधा और रोग से जर्जर कवि का साहित्य-सृजन अप्रतिहत गति से जारी रहा । उसमें क्षण-भर भी मानव की अपार शक्ति में अविश्वास उत्पन्न नहीं हुआ । इस समय उसने जो काव्य-रचना की, वह 'नये पत्ते' और 'बेला' में संग्रहीत है ।

अपनी नई कविता में निराला ने छायावाद को मीठा संगीत और प्रतिबिम्बनाओं का परित्याग कर दिया । इनकी भाषा सरल हो गई है जो लोकभाषा के सन्निकट है । कविता का रूप लोकगीतों के समान हो गया है । कवि ने उर्दू के गज़ल छंद का प्रयोग किया । इस तरह उसने हिन्दी व उर्दू साहित्य को नज़दीक लाने का प्रयत्न किया ।

किसान किस प्रकार ज़मींदारों और उपनिवेशवादी अधिकारियों के सुख के लिए 'कर' के भार से दबे जा रहे हैं, इसका भी वर्णन कवि की रचनाओं में मिलता है । उसकी अनेक रचनाओं में शोषकों के प्रति चुभता हुआ व्यंग्यविद्रूप है । वह बड़े ही मौज़ू शब्दों का चयन करता है । उसकी दृष्टि बड़ी पैनी है । छायावाद के प्रतीक नई कविता के सामाजिक विषयों के अनुरूप भी प्रयुक्त हुए हैं । प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त कहते हैं कि भविष्य में छायावाद का संगीत और निराला की नई कृतियों का यथार्थवाद एक होकर काव्य की एक नई दिशा को जन्म देगा । प्रकाशचन्द्र गुप्त की भविष्यवाणी कवि की 'अर्चना' में सत्य सिद्ध हो रही है । इस संग्रह की रचनाओं में हिन्दी काव्य का उत्तम रूप परिलक्षित होता है । इसमें हिन्दी काव्य की पुरातन परम्परा की रक्षा है और अन्य देशों में प्रचलित प्रगतिशील प्रवृत्तियों का आकलन भी है । उसमें लोक-साहित्य और जन-समूह की गीतिपरक परम्परा का भी प्रतिबिम्ब है । 'निराला' के काव्य की सर्व-समन्वयवादी विशेषता ही आधुनिक हिन्दी कविता को भारतीय जनता के निकट ले जाती है ।

दिल्ली के एक छात्र ने मुझसे बड़े विश्वास के साथ कहा था, "काश आप 'निराला' के मुख से उनकी रचना सुनते ! ऊँचा दुबला कद, पर प्रभावशाली उनका व्यक्तित्व है । उनकी बड़ी चमकती हुई आखें हैं । उनके लम्बे, यहाँ-वहाँ सफेदी लिये हुए केश हवा में लहराते हैं । वे हाथ को ऊँचा उठाकर अपनी मधुर कविता गाते हैं । हजारों श्रोता उनके शब्दों को ग्रहण करते हैं और प्रत्येक शब्द को देश के दूर-दूर भाग तक पहुँचा देते हैं ।" वर्षों के श्रम, गरीबी और एकाकी जीवन ने निराला के शरीर को जर्जर बना दिया है, परन्तु उनकी सृजनात्मक प्रतिभा अभी थकी नहीं है । शय्याग्रस्त कवि अभी भी उत्कृष्ट साहित्य की सृष्टि करता जा रहा है । भारत में 'निराला' पर कई पुस्तकें तथा लेख प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें उनकी कृतियों का उचित मूल्यांकन किया गया है ।

'निराला' के व्यक्तित्व और साहित्य की रूसी विद्वान द्वारा की गई आलोचना में साम्यवादी दृष्टि भले ही हो पर वह सर्वथा असंतुलित नहीं हैं, उनके साहित्य में जो खीजमय समाज-विरोधी भावों का विस्फोट है वह उनकी अपनी ही भोगी हुई परिस्थितियों का परिणाम है । कान्यकुब्ज समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा उसकी शिक्षा-दीक्षा पर नहीं, उसके कुल के 'बिस्वाओं' की संख्या पर निर्भर करती है । 'बीस बिस्वा कान्यकुब्ज', चाहे निरक्षर भट्टाचार्य ही क्यों न हो, संस्कारी शिक्षित कम बिस्वा कान्यकुब्ज से श्रेष्ठ और कुलीन ही माना जाएगा । 'निराला' हिन्दी के सौभाग्य से कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के निचले स्तर के कुल में उत्पन्न हुए थे जिससे उन्हें रह-रहकर सामाजिक अवमानना सहनी पड़ती थी । उनकी 'सुकुल की बीवी' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' आदि कृतियों में कान्यकुब्जों पर तीखे व्यंग्यों की यही पृष्ठभूमि है । यह सच है, 'निराला' साहित्य क्षेत्र में प्रविष्ट होते ही प्रशंसित नहीं हुए । तत्कालीन महारथियों ने उनके साहित्य की अपूर्व अभिव्यक्ति का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं किया क्योंकि उनके पास साहित्य को तोलने के बाट ही पुराने थे । स्वच्छन्द छन्द में संकेतात्मक कविता का सौंदर्य उनके लिए अपरिचित-सा था । पर ज्योंही उनका साहित्य द्रुतगति से प्रकाश में आने लगा, सहृदय समीक्षकों ने उसकी मुक्त हृदय से प्रशंसा की और कवि की हिन्दी नव्य काव्य के शिरोमणियों में गणना होने लगी । उनको 'मतवाला'-काल (सन् १९२४-२५) से जो सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई वह अन्त समय तक अक्षुण्ण बनी रही । अतः इस बारे में कोई अर्थ नहीं है कि "कवि आजीवन उपेक्षित रहा ।" उपाधियों और पुरस्कारों से कवि की श्रेष्ठता सिद्ध नहीं होती—वह तो उसके साहित्य के सामर्थ्य से ही सिद्ध होती है और यह उनके साहित्य का सामर्थ्य ही है कि विदेशी विद्वानों तक ने ससम्मान उनका स्मरण किया है ।

'निराला' की दो सशक्त रचनाएँ हैं, एक है 'राम की शक्ति पूजा' और दूसरी 'तुलसीदास' । 'राम की शक्ति पूजा' के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह बंगला की प्रसिद्ध कृतिवास रामायण के एक अंश से अनुप्राणित है । इसी प्रकार 'प्रभा' में कदाचित् श्री बालकृष्ण शर्मा ने उनके कुछ गीतों पर रवीन्द्रनाथ की छाया भी देखी थी । कवि ने स्वीकारा भी है कि उस पर रवि बाबू और बंगला का यथेष्ट

प्रभाव पड़ा है। सुसंस्कारी कवि अपने समसामयिक एवं पूर्ववर्ती कवियों से सहज ही अनुप्राणित होता है। केवल अनुप्राणित होना अवांछनीय कवि-व्यापार नहीं है। संसार के प्रायः सभी श्रेष्ठ साहित्यकारों में इस प्रकार की अनुप्राणता के दर्शन किए जा सकते हैं। 'निराला' भी इसके अपवाद नहीं हो सकते।

'निराला' भाषा के जादूगर थे। वे ठेठ चलतू और ठेठ संस्कृतनिष्ठ भाषा सहज भाव से लिख सकते थे। उनके उपन्यासों में कल्पना-कलित भाषा का चमत्कार देखा जा सकता है और उनके रेखाचित्रों 'बिल्लेसुर बकरिहा' आदि में चलती हिन्दी का अकृत्रिम रूप भी।

आधुनिक हिन्दी-कविता को भाषा, भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनकी देन निराली ही है, जो उनके अपने धारण किये हुए नाम को सार्थक करती है।

निराला के उपन्यास

गोपाल राय

निराला कवि के रूप में, वर्तमान शताब्दी के तीसरे दशक तक पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे, पर उपन्यासकार के रूप में उनका आगमन चौथे दशक के आरम्भ में हुआ। तीसरे दशक के अन्त या चौथे दशक के आरम्भ में जिन उपन्यासकारों ने उपन्यास-लेखन का कार्य आरम्भ किया उनमें मुख्य हैं—जयशंकर प्रसाद, जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, भगवती चरण वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। इन उपन्यासकारों ने न केवल हिन्दी उपन्यास साहित्य को समृद्ध बनाया वरन् उसे नवीन गति और दिशा भी दी। निस्संदेह इस देन में निराला का अंशदान सबसे कम है, पर जो है वह उल्लेख्य नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

निराला के प्रमुख उपन्यास हैं—'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' और 'निरुपमा'। गौण उपन्यासों में 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' के नाम लिये जा सकते हैं। कुछ विद्वान् 'उच्छृंखल', 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' को भी उपन्यास ही कहना पसन्द करते हैं[1], पर मेरे विचार से इन्हें कहानी, रेखाचित्र, व्यंग्य-चित्र, आदि जो भी कहा जाय 'उपन्यास' नहीं कहा जा सकता। निराला का 'चमेली' नामक एक उपन्यास 'रूपाभ' पत्रिका में निकलना आरम्भ हुआ था पर वह पूरा न हो सका।[2]

'अप्सरा' निराला की प्रथम औपन्यासिक कृति है, जिसका प्रकाशन प्रथम बार १९३१ ई० में गंगा पुस्तकालय कार्यालय, लखनऊ से हुआ था। निराला का दूसरा उपन्यास 'अलका' १९३३ ई० में गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। इसी प्रकार 'प्रभावती' और 'निरुपमा' १९३६ ई० में, 'चोटी की पकड़'

---

१. श्री रामखेलावन चौधरी, निराला के प्रारम्भिक उपन्यास—'निराला व्यक्तित्व और कृतित्व', सं० डॉ० प्रेमनारायण टंडन, प्रकाशक हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, १९६२, पृ० १०२।

२. डॉ० भोलानाथ, निराला के गद्य-ग्रन्थ—'निराला व्यक्तित्व और कृतित्व, (पूर्वोल्लिखित), पृ० २५।

१९४६ ई०[1] में तथा 'काले कारनामे' १९५० ई०[2] में प्रकाशित हुए। इनमें से 'प्रभावती' को छोड़कर शेष कृतियों को 'सामान्य उपन्यास'—हिन्दी 'सामाजिक उपन्यास' संज्ञा विशेष प्रचलित है—की संज्ञा दी जा सकती है। 'प्रभावती' ऐतिहासिक उपन्यास है।

पहले हम निराला के सामान्य उपन्यासों का विवेचन करें। सामान्यतः उपन्यास पर विचार करते समय उसके कथानक, शिल्प, पात्र-योजना, देशकाल-चित्रण और भाषा को ध्यान में रखा जाता है। कुछ आलोचक, उदाहरणतः क्यू० डी० लिविस[3] इसके विरुद्ध यह मनाते हैं कि उपन्यास एक कलाकृति है और उसे उसकी सम्पूर्णता में ही देखा जा सकता है।

एक कलाकृति के रूप में उपन्यास की सबसे बड़ी उपलब्धि उसके 'जीवन का विश्वसनीय चित्र' होने में है। जीवन का यथार्थ—जो यथार्थ होगा वह विश्वसनीय भी होगा—चित्रण किसी भी उपन्यास की अंतिम सिद्धि है। यह यथार्थ चित्रण कथानक, शिल्प, पात्र-चित्रण और शैली के द्वारा ही संभव होता है। अतः दिग्भ्रांत हो जाने का खतरा होने पर भी, उपन्यासालोचन में इन मार्गों का सहारा लेने के सिवा और कोई दूसरा चारा नहीं होता। हाँ, उपन्यासालोचक को कथानक, शिल्प, पात्र-चित्रण, शैली आदि दृष्टियों से उपन्यास की परीक्षा करते समय इस बात का ध्यान रखना अपेक्षित है कि उपन्यास में ये तत्त्व परस्पर गुंफित हैं और इन्हें एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। ये सभी तत्त्व परस्पर संबद्ध रूप में उपन्यास को 'जीवन का यथार्थ चित्र' बनाने में सहायक होते हैं।

निराला के उपन्यासों पर समग्र रूप से दृष्टि डालने पर पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि उनमें जीवन का विश्वसनीय चित्रण नहीं हो पाया है। निराला के उपन्यासों में जो संसार कल्पित किये गये हैं, वे अनेकत्र विश्वसनीय नहीं बन पाये हैं। इस कल्पित संसार में जो जीवन प्रवाहित होता दीख पड़ता है, उसमें सहजता, अबाधता और स्वाभाविकता नहीं। क्या कथानक, क्या पात्र-चित्रण और क्या भाषा, सर्वत्र ऐसी कृत्रिमता दिखाई पड़ती है, जिसके चलते निराला के उपन्यास जीवन के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं बन पाते।

पहले हम निराला के उपन्यासों के कथानकों पर विचार करें। कथानक, श्री ई० एम० फोर्स्टर के अनुसार, घटनाओं की शृंखला है, पर उसमें कारण-कार्य-सम्बन्ध पर विशेष बल दिया जाता है। उपन्यास में घटित समस्त क्रिया-कलाप परस्पर विश्वसनीय कार्य-कारण-शृंखला में गुंफित होते हैं। उत्तम कथानक में संयोग-तत्त्व की नहीं, कारण-तत्त्व की प्रधानता होती है।

निराला के उपन्यासों के कथानक नितान्त कृत्रिम हैं। 'अप्सरा' का आरम्भ

---

१. चोटी की पकड़, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण का मुखपृष्ठ।
२. काले कारनामे, कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, विजयादशमी, २००७।
३. फिक्शन एंड दि रीडिंग पब्लिक।

एक अति नाटकीय घटना से होता है। कनक नाम की वेश्या-पुत्री कलकत्ते के इडेन गार्डेन में बैंच पर बैठी हुई है। हेमिल्टन नाम का एक अंग्रेज़ पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट उसके साथ बलात्कार करना चहता है। इसी समय कुमार नाम का एक युवक वहाँ पहुँच जाता है और "गर्दन के पास कोट के साथ पकड़कर साहब को एक बित्ता बैंच से ऊपर" उठा लेता है, "जैसे चूहे को बिल्ली"। फिर तो दोनों मल्लयुद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं। युवक साहब को ज़मीन पर गिरा देता है, उसकी छाती पर सवार होकर कई 'रद्दे' कस देता है और साहब वेहोश हो जाते हैं। यह घटना अति नाटकीय तो है ही, जैसा कि प्रायः हिन्दी फ़िल्मों में होता है, विश्लेषण करने पर यह समूची घटना बच्चों का तमाशा सिद्ध होती है। सन १९३० ई० में कोई अंग्रेज़ पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट किसी सुसंस्कृत युवती के साथ ऐसा व्यवहार करे, यह बात नितांत अविश्वसनीय है। अंग्रेज स्त्रियों के प्रति सम्मान-प्रदर्शन में विश्वविख्यात हैं, फिर पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट जैसे ऊँचे पद पर कार्य करने वाले अंग्रेज़ का ऐसा व्यवहार किसी प्रकार भी समझ में नहीं आता। अंग्रेजों के प्रति उपन्यासकार के मन में जो घृणा का भाव था, यही इस कला-विषयक चूक का कारण है। फिर कुमार का उस पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट को चूहे की तरह टाँग लेना, पटककर रद्दा देकर वेहोश कर देना आदि भी विश्वसनीय नहीं। पुलिस का पदाधिकारी शरीरतः स्वस्थ और मज़बूत होता है, इस तथ्य से हम सब परिचित हैं।

इसी प्रकार थियेटर भवन में कुमार और कनक का अभिनेता-अभिनेत्री के रूप में मिलन, कुमार का वहीं गिरफ्तार होना, कुमार का अपने मित्र चन्दन के गाँव जाना और कनक का अपनी माँ सर्वेश्वरी के साथ वहीं राजा की महफिल में पहुँचना, चन्दन द्वारा कनक का राजा के चंगुल से मुक्त किया जाना आदि घटनाएँ संयोगावृत, अतएव कृत्रिम हैं। 'अलका' में भी शोभा के माँ-बाप का एक साथ मरना, अपनी इज़्ज़त बचाने के प्रयास में इसका घर से निकलना और ज़मींदार स्नेहशंकर का आश्रय प्राप्त करना, फिर अपने पति को प्रभाकर के रूप में प्राप्त करना आदि घटनाएँ संयोग-प्रसूत हैं। इस उपन्यास में विजय का अपने विद्यार्थी के पिता को डराकर १६०) ले लेना, जबकि वह पहले एक पैसा भी देने को तैयार न था (दूसरा संस्करण, पृष्ठ ३८), एक अविश्वसनीय घटना है। 'निरुपमा' में कुमार और निरुपमा का प्रेम, कुमार के गाँव का निरुपमा की ज़मींदारी में होना, कुमार और कमल की भेंट आदि घटनाएँ संयोगावृत हैं। तात्पर्य यह कि निराला के उपन्यासों का मूल ढाँचा संयोगावृत घटनाओं के स्तम्भों पर आधारित है, जिसके कारण उपन्यास में चित्रित संसार कृत्रिम और अविश्वसनीय हो गया है। निराला के औपन्यासिक कथानक घटनाबहुल होने के कारण भी जीवन का स्वाभाविक रूप प्रस्तुत करने में समर्थ नहीं हो पाते। असामान्य घटनाएँ अल्पबुद्धिपाठकों के कौतूहलोपशमन में जितनी समर्थ होती हैं उतनी जीवन का वास्तविक रूप सामने रखने में नहीं।

निराला के उपन्यास इस घटनाबाहुल्य दोष से भरे हुए हैं। 'अप्सरा' में शकुन्तला नाटक का अभिनय, पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट हेमिल्टन और दारोगा का कनक के

घर जाकर तमाशा करना, विजयपुर के राजा की महफिल, चन्दन द्वारा कनक का भगाया जाना, चन्दन, कनक, कुमार और तारा की रेल यात्रा आदि घटनाओं को कृत्रिम रूप से कौतूहलोत्पादक बनाने का प्रयत्न किया गया है। 'अलका' तो इस प्रकार की असाधारण और अविश्वसनीय घटनाओं का जंगल है। शोभा का भागना, उसका स्नेहशंकर की स्नेहछाया प्राप्त करना, अजित का संन्यासी बनकर शोभा का पता लगाना, अजित और उसकी पत्नी वीणा का जाल रचकर ज़मींदार मुरलीधर को उल्लू बनाना, शोभा को मुरलीधर द्वारा हरण करने का प्रयत्न तथा शोभा द्वारा उसकी हत्या, ये सारी घटनाएँ असाधारण हैं। 'निरुपमा' में अंग्रेज़ी में डी०लिट्० कुमार का जूता पॉलिश करना, कुमार और कमल की भेंट तथा कुमार और कमल एवं भामिनी और सुशीला का ब्याह ऐसी असामान्य घटनाएँ हैं जिन्हें अल्प बुद्धि के पाठक ही स्वीकार कर सकते हैं।

निराला के औपन्यासिक कथानकों का एक दोष यह भी है कि उनमें घटित अनेक कार्यों का सिर-पैर कुछ समझ में नहीं आता। उदाहरणतः 'अप्सरा' में कुमार का अचानक कनक को छोड़कर भाग जाना, और कनक की बात तक नहीं सुनना। यहाँ कुमार के भागने का जो कारण दिया गया है वह पर्याप्त नहीं है। इसी उपन्यास में हेमिल्टन के षड्यन्त्र के फलस्वरूप जब कुमार कैद हो जाता है तो उसे छुडाने के लिए कनक को अदालत में देखकर तथा यह सोचकर कि उसकी मुक्ति एक बाज़ारू स्त्री के द्वारा हो रही है, कुमार का सर्वांग क्षोभ और घृणा से मुरझा जाता है,[1] वह अपने को अपराधी सिद्ध करने का प्रयत्न भी करता है, पर अपराध से बरी होते ही 'राजकुमार का हाथ पकड़कर कनक बाहर निकलती है'[2]। कनक के साथ मोटर पर सवार होकर वह उसके घर जाता है और वहाँ कई दिनों तक कनक का आतिथ्य ग्रहण करता है। 'निरुपमा' में कमल का व्यवहार-परिवर्तन भी इसी प्रकार एक अबूझ पहेली बनकर रह गया है। वह कुमार को प्रेम करती है, पर ज्योंही उसे इस बात का पता चलता है कि कुमार से निरुपमा प्रेम करती है, वह अपना प्रेम त्याग देती है और आसमान-ज़मीन के कुलाबे मिलाकर कुमार और निरुपमा का विवाह करा देती है। 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' के कथानक तो इस प्रकार से रहस्यमय और असंगत घटनाओं से भरे हुए हैं।

कथानक का एक गुण रहस्योत्पादन भी है। सामान्यतः उपन्यासकार कथा के समयानुक्रम को विपर्यस्त कर कथानक में रहस्य की सृष्टि करते हैं। पर निराला इससे आगे बढ़कर जासूसी उपन्यासों से होड़ लेने का प्रयत्न करते दीख पड़ते हैं। 'अलका' में शोभा प्रभाकर अर्थात् विजय से बार-बार मिलती है और उससे प्रेम भी करने लगती है, पर प्रभाकर का रहस्य अन्त में खुलता है, जब विजय और शोभा को उपन्यासकार पति-पत्नी के रूप में मिलाता है। इसी प्रकार 'निरुपमा' में

---

१. अप्सरा, आठवीं बार १९६२, पृ० ६२१।

२. वही, पृ० ६३१।

यामिनी बाबू का मिस दुबे अर्थात् सुशीला के साथ शारीरिक सम्बन्ध तथा सुशीला को यामिनी बाबू से गर्भ भी है, इस रहस्य का उद्घाटन उपन्यास के अन्त में सहसा कमल द्वारा होता है। 'चोटी की पकड़' भी इस प्रकार की रहस्यमय घटनाओं से पूर्ण है। तात्पर्य यह कि अपने औपन्यासिक कथानकों में रहस्य की सृष्टि करने में भी निराला कृत्रिमता के शिकार हो गये हैं।

निराला के किसी भी उपन्यास का अन्त विश्वसनीय नहीं। वैसे तो विश्व के श्रेष्ठ उपन्यासों के सम्बन्ध में भी आलोचकों की यह शिकायत है कि उनका अन्त कृत्रिम हो गया है, पर निराला के उपन्यासों का अन्त तो हास्यास्पद और बच्चों का तमाशा होकर रह गया है। 'अप्सरा' का अन्त निराला की असफल शिल्प-योजना का एक कथनीय उदाहरण है। 'अलका' और 'निरुपमा' के अन्त भी अतिनाटकीय, कृत्रिम और अकलात्मक हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि निराला एक उच्च कोटि के कथानक-शिल्पी के रूप में हमारे सामने नहीं आते। उनके औपन्यासिक कथानक संयोगावृत घटनाओं पर आधारित, घटनाबहुल, कार्यकारण-शृंखलारहित और कृत्रिम हैं। इस अकुशल कथानक-योजना के कारण निराला के उपन्यास जीवन के स्वाभामिक प्रवाह को चित्रित करने में असफल रहे हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी निराला एक उच्चकोटि के उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने नहीं आते। उनके औपन्यासिक संसार के निवासी हमारे वास्तविक संसार के व्यक्तियों की तरह आचरण नहीं करते। 'निरुपमा' का नायक कुमार लंदन विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में डी० लिट्० है, पर बंगालियों के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण लखनऊ में उसे प्राध्यापक का पद नहीं मिल पाता और अन्त में वह जूता पॉलिश करने का पेशा अपनाता है। सन् १९३६ ई० में पक्षपात और भ्रष्टाचार का बाज़ार चाहे जितना गर्म हो, उत्तर प्रदेश में यह स्थिति कदापि नहीं थी कि एक अंग्रेज़ी के डी० लिट्० को किसी कालेज में प्राध्यापक का पद न मिले। 'अप्सरा' में अंग्रेज़ पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट हेमिल्टन कनक पर आशिक होकर उसके घर आता है और शराब पीकर, धोती पहनकर बंदर की तरह नाचता है। इस प्रकार एक अंग्रेज़ को बंदर का नाच नचाकर निराला ने आत्मतोष चाहे जितना प्राप्त कर लिया हो, उनका पात्र-चित्रण अकलात्मक तो हो ही गया है। इसी प्रकार 'अलका' में ग्रामवाला शोभा और विधवा वीणा का देखते-देखते आधुनिका में परिणत हो जाना भी विश्वसनीय नहीं बन पाया है।

हम 'अप्सरा' की कनक और कुमार को लें। ये सभी 'समतल' या 'चपटे' पात्र हैं। इनका विकास नहीं होता। कनक आरम्भ से अन्त तक एवं वेश्या-पुत्री बनी रहती है, अन्त में वह उपन्यासकार द्वारा ज़बरदस्ती कुल-वधू बना दी जाती है। उसे ऊँची शिक्षा मिली है, पर स्थान-स्थान पर उपन्यासकार ने उससे ऐसे कार्य कराये हैं जो उसकी शिक्षा के अनुरूप नहीं। विजयनगर में भी उसका आचरण वेश्या-जनोचित अधिक है, एक शिक्षित युवती के योग्य नहीं। कनक में एक प्रभावशाली पात्र बनने की

संभावनाएँ विद्यमान थीं, पर उपन्यासकार ने उनका तनिक भी लाभ नहीं उठाया। इसी प्रकार कुमार उपन्यास में एक निर्जीव व्यक्ति के रूप में सामने आता है। यद्यपि वह सुपरिंटेण्डेण्ट पुलिस का कॉलर पकड़कर उसे बित्ता-भर ऊँचा उठा लेता है, क्रिकेट में सेंचुरी बनाता है और रेलगाड़ी में हेमिल्टन तथा स्टेशन मास्टर को डाँटकर अपनी तेजस्विता का परिचय देता है, किन्तु उसके चरित्र में पाठकों के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाने योग्य कोई बात नहीं। समूचे उपन्यास में केवल रेलगाड़ी वाली घटना में ही कुमार के चरित्र का तेज कुछ मात्रा में व्यक्त हुआ, अन्यत्र तो वह ढुलमुलयकीन, दृढ़ निश्चयरहित, अकर्मण्य और जल्द आवेश में आ जाने वाले व्यक्ति के रूप में ही दिखाई पड़ता है।

'अलका' में भी निराला कोई सशक्त पात्र प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं। शोभा, विजय, अजित, स्नेहशंकर और मुरलीधर सब-के-सब समतल पात्र हैं। इनके चरित्रों को तर्कसंगत, शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक बनाने में उपन्यासकार ने विशेष श्रम नहीं किया है। 'निराला' के उपन्यासों में यदि कुछ पात्र प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं तो वे 'निरुपमा' के निरुपमा और देवी सावित्री हैं। निरुपमा में प्रेम, करुणा, सहानुभूति, लज्जा, शील आदि नारी-सुलभ गुण तो प्रचुर मात्रा में हैं ही, साथ ही उसमें दृढ़ आत्मसमर्पण और अपने निर्णय को कार्यान्वित करने की दृढ़ता भी है। पर 'निरुपमा' के नायक कुमार को उपन्यासकार दृढ़ और प्रभावशाली व्यक्तित्व दे पाने में समर्थ नहीं हो सका है।

निराला के चरित्र-चित्रण में मनोविज्ञान के बहुत कम दर्शन होते हैं। वैसे ही समतल पात्रों के चरित्रांकन में मनोविज्ञान का प्रवेश बहुत सीमित मात्रा में ही हो पाता है, निराला का कोई भी औपन्यासिक पात्र वर्तुल (round) नहीं। उनमें अन्तः-संघर्ष का प्रायः अभाव है। वे चिन्तनरत बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। उपन्यासकार ने आरम्भ में उन्हें जो व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है उसे वे अन्त-अन्त तक ढोते रहते हैं।

उपन्यास का तीसरा प्रमुख पक्ष है भाषा। भाषा अर्थात् शब्दों के प्रयोग द्वारा ही उपन्यासकार अपनी कलाकृति को रूपाकार प्रदान करता है। उपन्यास की भाषा की चरम सार्थकता इस बात में है कि वह उपन्यास में कहीं भी यथार्थ का भ्रम उत्पन्न करने में न चूके। उपन्यास पद्य में नहीं लिखा जाता, जिसका एकमात्र कारण यह है कि पद्य मनुष्य की स्वाभाविक भाषा नहीं। मनुष्य अपने जीवन में सामान्यतः गद्य का प्रयोग करता है। यद्यपि उपन्यास का गद्य वही नहीं होता, जिसे हम दिन-रात काम में लाते हैं, फिर भी उपन्यास की भाषा यथासम्भव अलंकरणरहित, स्वाभाविक, पात्रानुरूप और वस्तु-व्यंजक होती है। निराला के उपन्यासों की भाषा उपर्युक्त गुणों से रहित है। उनके उपन्यासों में प्रयुक्त गद्य अलंकार से बोझिल, शिथिल और कृत्रिम है। प्रकृति और मानव-सौंदर्य के अलंकृत और असन्तुलित वर्णन परिमाण में अनुपातरहित हो गये हैं। आन्तरिक भावों का उद्घाटन करते समय भी उपन्यासकार की दृष्टि जितनी अलंकरण और सजावट पर रहती है, उतनी मनोभावों,

अन्त:संघर्ष, भावात्मक संकट आदि के सूक्ष्म चित्रण पर नहीं। उदाहरणत: 'अप्सरा' के दूसरे परिच्छेद की निम्नलिखित पंक्तियाँ—"कनक धीरे-धीरे अठारहवें वर्ष के पहले चरण में आ पड़ी। अपार अलौकिक सौंदर्य, एकान्त में, कभी-कभी मनोहर रागिनी सुनी जाती, वह कान लगा उसके अमृत स्वर को सुनती, पान किया करती। अज्ञात एक अपूर्व आनन्द का प्रवाह अंगों को आपादमस्तक नहला जाता, स्नेह की विद्युत्-लता काँप उठती। ......" आदि। यह भाषा गद्य होने पर भी कविता की भाषा है। यदि उपर्युक्त संदर्भ का विश्लेषण किया जाए तो स्पष्ट हो जाएगा कि इसमें प्रेम के मनोभाव का चित्रण अप्रधान, भाषा की सजावट और कल्पना की क्रीड़ा प्रधान है। निराला के उपन्यासों में इस प्रकार की भाषा के शताधिक उदाहरण मिलते हैं। भाषा के प्रयोग में निराला का कवि बराबर उनके उपन्यास पर हावी हो जाता है, और कहीं-कहीं तो यह कविता अबूझ पहेली की तरह हो जाती है।

निराला की गद्य-शैली में संक्षिप्तता का गुण भी नहीं है। उदाहरणत: निम्न-लिखित गद्य खंड—

"नतीजा यह हुआ कि उनके जाने पर सरकार की राजभक्त रिआया की लिस्ट से, धर्मभ्रष्ट हिन्दू की तरह मैं भी जाति-च्युत किया गया [अर्थात् सरकार के परिवार से मेरी लुटिया-थाली अलग कर दी गई। साथ-साथ पूरे सेर-भर मिर्च की धार से पिताजी के सामने मेरे नाम पर छींक-फटकार दी गयी।]" (पृ० ५६)

इस गद्य-खंड के कोष्ठक में घिरे वाक्य निराला द्वारा किये गये शब्दों के अपव्यय के ज्वलंत उदाहरण हैं। तात्पर्य यह कि निराला के उपन्यासों में प्रयुक्त गद्य यथार्थ का वातावरण निर्मित करने में समर्थ नहीं है।

इस प्रकार हम चाहे कथानक योजना की दृष्टि से विचार करें या चरित्र-चित्रण और भाषा की दृष्टि से, निराला उच्चकोटि के उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने नहीं आते। उनके द्वारा कल्पित औपन्यासिक संसार पूर्णत: यथार्थ और विश्वसनीय नहीं है। कृत्रिम कथानक योजना, मनोवैज्ञानिक चित्रण के अभाव और कृत्रिमत: अलंकृत भाषा-शैली के कारण निराला के उपन्यास जीवन का प्रतिनिधित्व पूर्ण मात्रा में नहीं कर पाते।

फिर भी निराला के उपन्यासों की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। अपने उपन्यासों में निराला एक समाज-विद्रोही के रूप में हमारे सामने आते हैं। 'निरुपमा' का डी० लिट्० कुमार प्राध्यापक की नौकरी पाने पर हाथ धरे बैठा नहीं रह जाता। वह जूता पॉलिश करने का पेशा अपनाकर एक तरफ तो श्रम को सम्मान देता है और दूसरी तरफ समाज को चुनौती भी। 'अप्सरा' में निराला एक अभिजातवर्गीय युवक का वेश्यापुत्री से प्रेम ही नहीं दिखाते, वरन् दोनों का विवाह भी करा देते हैं। 'अलका' में विधवा वीणा का अजित से विवाह कराकर निराला विधवा विवाह का सबल समर्थन करते हैं। इस प्रकार निराला ने अपने उपन्यासों में समाज की प्रचलित मान्यताओं और रूढ़ियों को चुनौती दी है तथा उन पर प्रबल आघात किया है। यह उल्लेखनीय है कि सामाजिक रूढ़ियों के खंडन में निराला अपने युग के किसी भी उपन्यासकार की

अपेक्षा प्रगतिशील हैं । प्रेमचन्द जैसे उपन्यासकार भी, ऐसे अवसरों पर, जहाँ प्रचलित सामाजिक धारणा का विरोध करने का अवसर उपस्थित होता है, पीछे हट जाते हैं और स्वाभाविकता के मूल्य पर भी बद्धमूल सामाजिक रूढ़ियों पर प्रत्यक्ष आघात नहीं करते । वे 'रंगभूमि' में सोफिया और विजयसिंह के बीच तथा 'गोदान' में मेहता और मालती के बीच प्रेम दिखाकर भी उन्हें परिणय-सूत्र में बाँधने का साहस नहीं दिखाते । 'प्रतिज्ञा' में वे अमृतराय का विवाह विधवा प्रेमा से कराने का साहस नहीं कर पाते । तात्पर्य यह कि हिन्दू समाज की सड़ी-गली मान्यताओं को चुनौती देने में तथा उन पर आघात करने में निराला अपने युग के उपन्यासकारों में सबसे आगे हैं ।

निराला ने अपने उपन्यासों में ग्रामीणों पर ज़मींदारों के अत्याचार का चित्रण कर प्रखर सामाजिक चेतना का परिचय दिया है । 'अलका' के कई परिच्छेदों में रायबरेली के एक गाँव के किसानों पर होने वाले ज़मींदार और पुलिस के अत्याचारों का अत्यन्त यथार्थ और मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है । किसानों और मज़दूरों में उद्‌बुद्ध होती हुई राजनीतिक चेतना की झलक भी निराला ने इस उपन्यास में प्रस्तुत की है । ज़मींदारों के षड्‌यन्त्र तथा किसानों की अशिक्षा, मूर्खता, कायरता और दब्बूपन के कारण किस प्रकार किसान-मज़दूर आन्दोलन सफल नहीं हो पाता था, इसका भी बिल्कुल यथार्थ चित्र 'अलका' में प्रस्तुत किया गया है । 'निरुपमा' में भी रामपुर नामक गाँव के किसानों पर ज़मींदार के अत्याचार का सजीव वर्णन मिलता है ।

'निरुपमा' निराला का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है । यद्यपि कथानक, चरित्र-चित्रण और भाषा-सम्बन्धी त्रुटियाँ अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कम हैं । इस उपन्यास के तीन पात्रों—कुमार, कमल और यामिनी—को छोड़कर शेष का चरित्र-चित्रण अत्यन्त सजीव और प्रभावशाली है । निरुपमा और देवी सावित्री के चरित्रांकन में उपन्यासकार ने विशेष सूझ-बूझ का परिचय दिया है । निरुपमा में एक सुकुमार, भावुक, सहनशील और शीलवती बालिका का चरित्र साकार हो उठा है । उसे देखकर 'प्रसाद' की वह पंक्ति स्मरण हो आती है, जिसमें उन्होंने कहा है—

'नारी, तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पगतल में
पीयूष स्रोत-सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में'

वह निर्वात निष्कंप दीप-शिखा की तरह कहीं विचलित होती नहीं दीखती । अन्त में वह अपने दृढ़ निश्चय का भी परिचय देती है, पर इसके कारण वह अपने नारी-सुलभ (छायावादी दृष्टि से) गुणों से विचलित नहीं होती ।

देवी सावित्री, कुमार की माँ, एक सामाजिक विद्रोहिणी के रूप में प्रस्तुत

की गयी हैं। वे समाज की आलोचना की परवाह न कर अपनी समस्त सम्पत्ति गिरवी रखकर अपने बेटे को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश भेजती हैं। विदेश से लौटने पर कुमार नौकरी पाने में असमर्थ होकर लखनऊ की सड़कों पर जूता पॉलिश करने लगता है। उधर गांव वाले देवी सावित्री पर हर तरह का अत्याचार करते हैं। उनका सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया है। नाई, धोबी, हज्जाम और मज़दूर उनका कोई काम नहीं करते। सार्वजनिक कुओं पर उन्हें पानी नहीं भरने दिया जाता। सामाजिक त्योहारों और उत्सवों पर वे कहीं निमन्त्रित नहीं की जातीं। फिर भी वे हार नहीं मानतीं, झुकती नहीं, गिड़गिड़ाती नहीं, और किसी के सामने नत नहीं होतीं। सामाजिक अत्याचार के विष को वे बड़े धैर्य और साहस के साथ सह लेती हैं।

सामाजिक विद्रोहिणी के साथ-साथ देवी सावित्री में एक स्नेहशील माँ का व्यक्तित्व भी उभरा है। सामाजिक अपमान और अत्याचार के विष को वे शंकर की तरह पी जाती हैं पर दूसरों के लिए वे शिव ही बनी रहती हैं। देवी सावित्री निराला के औपन्यासिक साहित्य का सबसे सशक्त और प्रभावशाली पात्र है।

'निरुपमा' में नीलिमा और रामचन्द्र का चरित्र-चित्रण भी अत्यन्त स्वाभाविक तथा मधुर है। बाल-स्वभाव का ऐसा यथार्थ चित्रण हिन्दी उपन्यास-साहित्य में अन्यत्र शायद ही मिले।

'निरुपमा' में ग्रामीण जीवन का जैसा यथार्थ और विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह निराला के अन्य उपन्यासों में तो नहीं ही मिलता, प्रेमचन्द को छोड़कर हिन्दी के अन्य उपन्यासों में भी दुर्लभ है। ग्रामीण स्त्री-पुरुषों में फैले अंध-विश्वासों, सामाजिक रूढ़ियों तथा उन पर होने वाले अत्याचारों का यथार्थ वर्णन 'निरुपमा' में किया गया है। ग्रामीण महिला समाज का तो ऐसा यथार्थवादी और सूक्ष्म चित्रण प्रस्तुत किया है, जिसे देखकर 'निराला' की पर्यवेक्षण-शक्ति और यथार्थ की पकड़ को दाद देनी पड़ती है।

'निरुपमा' की भाषा भी निराला के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा कम अलंकार-बोझिल और यथार्थ चित्रण के अनुरूप है। इस प्रकार, सभी दृष्टियों से विचार करने पर, 'निरुपमा' निराला का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास सिद्ध होता है।

'प्रभावती' निराला का एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें काव्य-कुञ्जेश्वर महाराज जयचन्द के शासन-काल में कनिष्ठ सामन्तों के परस्पर द्वेष, कलह, विग्रह, षड्यन्त्र आदि का चित्रण किया गया है। पर इस उपन्यास से उपन्यासकार का जितना ध्यान भाषा की सजावट पर है, उतना तत्कालीन जीवन, सांस्कृतिक और राजनैतिक तथा सामाजिक स्थितियों के चित्रण पर नहीं। प्रकृति और मानव-सौंदर्य के अलंकृत वर्णन में उपन्यासकार की रुचि विशेष दिखाई पड़ती है। चरित्र-चित्रण, जिसके अभाव में ऐतिहासिक उपन्यास महत्त्वरहित हो जाता है, 'प्रभावती' में गौण महत्त्व का अधिकारी होकर रह गया है। इस उपन्यास में काव्यात्मक और अलंकृत

वर्णनों को इतना अधिक महत्त्व मिला है कि इसे ऐतिहासिक उपन्यास की अपेक्षा ऐतिहासिक गद्य-काव्य कहना अधिक उचित प्रतीत होता है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि 'निराला' एक उपन्यासकार के रूप में उस ऊँचाई को नहीं प्राप्त कर सके हैं, जिस ऊंचाई पर वे काव्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित हैं। 'निराला' एक सफल कवि, पर असफल उपन्यासकार हैं।

निराला का कहानी-साहित्य

रामगोपालसिंह चौहान

निराला का पहला कहानी-संग्रह सन् १९३३ में प्रकाशित हुआ था। यह हिन्दी-साहित्य का वह युग था जब छायावादी काव्य-प्रवृत्ति अपने चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर चुकी थी और प्रगतिवादी प्रवृत्ति जीवन के नए संदर्भों से पोषण प्राप्त कर आकार ग्रहण कर रही थी। अतः निराला के कहानी-साहित्य में छायावादी रूमानी आदर्श और प्रगतिवादी यथार्थ दोनों के तत्त्व मिलते हैं।

निराला ने कुल मिलाकर लगभग दो दर्जन कहानियाँ लिखी हैं। इनमें से 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' लम्बी कहानियाँ हैं। 'स्वामी शारदानन्द महाराज और मैं' शुद्ध संस्मरण है। 'कुल्लीभाट', 'देवी', 'चतुरी चमार', 'सुकुल की बीवी', 'क्या देखा', 'कला की रूपरेखा' आदि कहानियों में संस्मरण के तत्त्व की प्रधानता है क्योंकि इन कहानियों में निराला स्वयं एक प्रधान पात्र हैं; बल्कि वही सारी घटनाओं तथा अन्य पात्रों के क्रियाकलापों के केन्द्र हैं। ये शुद्ध संस्मरण न होकर कहानियाँ हैं; क्योंकि इनमें कहानीपन का गठाव और तन्त्र है। शेष शुद्ध कहानियाँ हैं। उनमें लेखक तटस्थ होकर कहानी कहता है।

निराला की समस्त कहानियों को यदि युग-वास्तव की पृष्ठभूमि में रखकर एक समवेत दृष्टि से देखा जाए तो उनकी कुछ ज्वलन्त विशेषताएँ सहज ही झलक उठती हैं और पूर्ववर्ती कहानी-साहित्य से अपना अलगाव भी स्थापित कर देती हैं।

निराला ने अपनी कहानियों में युग-यथार्थ की पृष्ठभूमि में युग-जीवन को तथा युग-जीवन के सन्दर्भ में व्यक्ति के जीवन को विभिन्न कोणों, प्रसंगों तथा स्थितियों में देखा है एवं भिन्न-भिन्न आयामों का चित्र प्रस्तुत किया है, जिससे व्यक्ति अपने व्यक्ति-रूप में तथा सामाजिक प्राणी के रूप में भी—दोनों ही रूपों में—भीतर-बाहर से स्पष्ट हो उठता है। उनकी कहानियों में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का धनी भी है और समाज-व्यवस्था का अंग भी। न तो वह समाज-व्यवस्था के बन्धनों से बँधकर अपने व्यक्तित्व को खो बैठता है और न समाज की धारा से अलग हटकर अपने व्यक्तित्व की रक्षा अथवा स्थापन में नितान्त काल्पनिक, शावुक आदर्शों में डूबा रहने वाला या त्रिशंकु अथवा द्रोही बन जाता है। उसके व्यक्तित्व में नएपन की ऐसी प्रखरता है जो समाज और उसके प्राणी के रूप में व्यक्ति के जीवन के संक्रमण की

आन्तरिक और बाह्य प्रक्रिया को उजागर करती है। उनमें युग तथा व्यक्ति के जीवन की महानता और क्षुद्रता, उसकी सामान्यता तथा असाधारणता, उसके जीवन का विस्तार और गहराई, उसके जीवन का द्वन्द्व और संक्रमणशीलता, पुराने विश्वासों की टूटन और नयी चेतना के उभार की कुलबुलाहट सभी कुछ सजीव हो उठा है। निराला ने अपनी कहानियों के माध्यम से मनुष्य-मनुष्य के बीच जाति, धर्म तथा वर्ग के कटघरे को निस्सार बताकर शुद्ध मानव के रूप में आपसी सम्बन्धों का नया मानवीय धरातल दिया है। उन सम्बन्धों में नयी मानवीय संवेदना के सूत्र जोड़े हैं। उन सम्बन्धों को जोड़ने के लिए आकर्षण, चरित्र तथा व्यक्तित्व की महानता, व्यक्तित्व के सौंदर्य-बोध तथा जीवनमूल्य के नए परिवेश तथा नए आयाम प्रदान किए हैं।

निराला ने अधिकांशतः दमित, दलित और उपेक्षित को अपना स्वर और संवेदन दिया है। चाहे वह दमित, दलित और उपेक्षित वर्ग हो अथवा व्यक्ति। चाहे वह समाज-व्यवस्था, सामाजिक और आर्थिक वैषम्य, सामाजिक वर्जनाओं, वर्ग-विशेष अथवा व्यक्ति-विशेष किसी से भी दबाया हुआ, पीड़ित और उपेक्षित हो।

निराला की कहानियों में स्वानुभूति का तत्त्व जितना अधिक है उतना कम कहानीकारों में मिलता है। सम्भवतः यही कारण है कि उनकी कहानियों में निराला के व्यक्तित्व का निरालापन साफ झलक उठता है। कुछ कहानियों में तो वह खुलकर सामने आए हैं। उन्होंने जिन भाव-बोधों और स्थितियों को स्वानुभूत किया है उन्हीं का चित्रण किया है। इसीलिए सम्भवतः निराला हिन्दी के उन इने-गिने कहानीकारों में हैं जिनकी कहानियों में साहित्य तथा साहित्यकारों की चर्चा इतने खुलकर और विशद रूप में हुई है, और शायद इसीलिए वे अपने पात्रों को इतनी आत्मीयता से प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं; क्योंकि उनकी स्थितियों को उन्होंने स्वयं जिया है।

निराला की कहानियों का युग ऐसा था जब चेतना के स्तर पर सामाजिक असन्तोष से विक्षुब्ध मानव वैयक्तिक उत्सर्ग, त्याग और बलिदान के भावुक आदर्श से बढ़कर असन्तोष के विरुद्ध संघबद्ध संघर्ष की सामाजिक चेतना की ओर बढ़ रहा था। सन् १९३० और उसके आस-पास के काल से देश के सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन ने एक नयी करवट लेना आरम्भ कर दिया था। देश के औद्योगीकरण से उत्पन्न मज़दूर समाज के एक संगठित वर्ग के रूप में उभर चला था। उसको नई चेतना से सम्पन्न कर रहा था मार्क्सवादी जीवन-दर्शन जो रूसी क्रान्ति से प्रेरणा प्राप्त कर देश के शिक्षित मध्यम वर्ग तथा मज़दूर वर्ग में फैल रहा था। अंग्रेज़ी शासन की दासता से राष्ट्रीय स्वाधीनता का आन्दोलन जनव्यापी होकर दिन-प्रतिदिन अधिक उग्र हो चला था और सन् '३० तक पूर्ण स्वतन्त्रता का लक्ष्य एक राष्ट्रीय लक्ष्य बन चुका था। कांग्रेस में उग्र विचारों का बहुमत हो गया था। औद्योगीकरण तथा पाश्चात्य प्रभाव ने नगर सभ्यता को एक नया उत्कर्ष प्रदान कर दिया था। यह सारी स्थिति रहन-सहन से लेकर विचारों तथा जीवन-मूल्यों तक में एक उत्क्रान्ति उत्पन्न कर रही थी। यह सारी स्थिति निराला की कहानियों के युग को एक नया संदर्भ प्रदान कर रही थी जिस संदर्भ में उस युग का जीवन हर स्तर तथा क्षेत्र में अपने को

नया स्वर देने के लिए कसमसा रहा था। निराला ने अपनी कहानियों में उस नए स्वर की कसमसाहट को एक नया अर्थ देने का प्रयास किया है।

निराला की कहानियों की समस्याएँ अधिकतर व्यक्ति के जीवन की समस्याएँ होते हुए भी जाति अथवा समाज की समस्याएँ हैं। उनमें चेतना के व्यक्तिमुखी से समाजोन्मुखी होने की पूरी प्रक्रिया को देखा जा सकता है। इस दृष्टि से देखने पर उनकी कहानियों के मोटे तौर पर तीन ग्रुप दिखायी पड़ते हैं—(१) वे कहानियाँ जिनमें छायावादी रूमानी भावुकता से प्रेरित सुधारवादी आदर्श के माध्यम से नए सामाजिक संदर्भों में उत्पन्न जीवन के नए वास्तविक प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। (२) वे कहानियाँ जिनमें समाधान की स्पष्टता के अभाव में पात्र या तो प्रतिशोध भावना से ग्रसित हैं या आध्यात्मिक विश्वासों में अथवा आध्यात्मिक विश्वासों के साथ जीवन-यथार्थ का समन्वय करने में भटकता है। (३) वे कहानियाँ जिनमें जीवन-यथार्थ की गति की दिशा के अनुकूल नया आदमी आकार ग्रहण करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार छायावादी रूमानियत से आरम्भ होकर प्रगतिवादी यथार्थ तक की यात्रा निराला की कहानियाँ तै करती हैं। उनमें छायावादी रूमानियत से असन्तोष और नए की खोज की ललक साफ़ झलकती है। उनकी कहानियाँ उनके छायावादी व्यक्तित्व से मुक्त होते हुए प्रगतिवादी व्यक्तित्व के विकास का दर्पण भी हैं। जिस सामाजिक असन्तोष के समाधान की खोज की इच्छा ने निराला को छायावादी कवि बनाया था, उसी असन्तोष के समाधान की खोज में छाया-वाद की अपर्याप्तता तथा अनुपयुक्तता ने उन्हें प्रगतिवाद की ओर उन्मुख किया था।

निराला ने कहानियाँ लिखना तब आरम्भ किया था जब छायावादी प्रवृत्ति अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गयी थी और नए संदर्भों में उभरते नए जीवन-यथार्थ के मूलभूत प्रश्नों को हल करने में उसकी सार्थकता संदिग्ध हो चली थी। यहाँ प्रकारान्तर होते हुए भी यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि छायावाद को काव्य-रचना की एक शैलीगत प्रवृत्ति अथवा जीवन से हटकर अतीन्द्रिय कल्पनालोक के भावनात्मक सौंदर्य की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति-भर मानना नितान्त भ्रामक है जैसा कि सामान्यतः माना जाता है कि वह सिर्फ़ इतिवृत्तात्मक शैली अथवा कथ्य की प्रतिक्रिया के परिणाम से उत्पन्न हुई है।

छायावाद से पूर्व नए सामाजिक संदर्भों में जीवन को नयी दिशा देने और युग-जीवन की संक्रमण-प्रक्रिया को नया मोड़ देने में प्राचीन जीवनादर्शों, जीवन-मूल्यों और सांस्कृतिक तत्त्वों को युगानुरूप संशोधित कर प्रस्तुत करने की सुधारवादी आदर्श की जीवन-दृष्टि एक सीमा के बाद अपर्याप्त और अनुपयुक्त प्रतीत होने लगी तो उसकी सहज प्रतिक्रिया के रूप में वैयक्तिक विक्षोभ और आक्रोश भरे विद्रोह के रूप में छायावाद का आविर्भाव हुआ, जो रचना-प्रक्रिया के परम्परागत रूप से लेकर कथ्य की परम्परा तक के विद्रोह की चेतना को लेकर विकसित हुआ।

छायावाद, अपनी पूर्व प्रवृत्ति के समान ही केवल काव्य की ही प्रवृत्ति नहीं थी; वरन् समूचे साहित्य की प्रवृत्ति थी और इसे प्रवृत्ति-भर मानना भी पूरी तरह सही

नहीं है । छायावाद अपनी पूर्ववर्ती प्रवृत्ति के समान ही जीवन को देखने, उसे रूपायित करने और अभिव्यक्त करने की एक जीवन-दृष्टि थी । यह जीवन-दृष्टि नाटक, उपन्यास, कहानी, काव्य सम्पूर्ण साहित्य की जीवन-दृष्टि थी । यह बात और है कि काव्य में यह जीवन-दृष्टि रूमानी भावुकता से प्रेरित होकर अमूर्त और सूक्ष्म होती चली गयी, जबकि साहित्य की अन्य गद्य की विधाओं में उसका सम्बन्ध जीवन-वास्तव से अधिक बना रहा । यह अन्तर कविता और गद्य के अपने आन्तरिक स्वभाव के अन्तर का ही परिणाम था ।

साहित्य में अभिव्यक्त जीवन-दृष्टि युग की जीवन-दृष्टि से अलग नहीं होती; बल्कि उसी का प्रतिविम्ब होती है, क्योंकि जीवन ही साहित्य में अभिव्यक्ति पाता है । प्राचीन आदर्शों के आधार पर सुधार प्रेरित आदर्शवादी जीवन-दृष्टि तथा छायावादी रूमानी भावुकता प्रेरित आदर्शवादी जीवन-दृष्टि को युग-जीवन की दृष्टि के रूप में सहज ही देखा जा सकता है । यह जीवन-दृष्टि तत्कालीन युग में व्यक्ति-सम्बन्धों, समस्याओं के प्रति दृष्टिकोणों, राष्ट्रीय चेतना आदि सभी में दृष्टिगोचर होती है । सभी में एक रूमानी भावुकता की झलक दिखायी पड़ती है ।

यों तो निराला की 'पद्मा और लिली', 'ज्योतिर्मयी', 'सानी', 'कमला', 'श्यामा', 'हिरनी', 'देवी', 'सुकुल की बीवी', 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'जानकी' ऐसी कहानियाँ हैं जो नारी पर आधारित हैं और कुछ ऐसी भी कहानियाँ हैं जिनमें नारी प्रमुख भूमिका अदा करती है जैसे—'क्या देखा', 'न्याय', 'दो दाने' इन कहानियों में प्रेम तथा विवाह में जाति-व्यवस्था, प्राचीन सामाजिक संस्कार आदि के बन्धनों से लेकर आर्थिक और सामाजिक उत्पीड़न तक की समस्याओं को लिया गया है । शेष 'अर्थ', 'परिवर्तन', 'भक्त और भगवान', 'चतुरी चमार', 'कला की रूपरेखा', 'सफलता', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानियों में सामाजिक समस्याओं अथवा स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति को रखकर व्यक्ति की पीड़ा अथवा सामाजिक व्यंग्य का चित्रण किया गया है ।

'पद्मा और लिली' कहानी की समस्या प्रेम-विवाह से सम्बन्ध रखती है जिसमें जाति-व्यवस्था और आर्थिक वैषम्य दोनों ही एक सीमा तक बाधक होते हैं । नायक राजेन्द्र एक जज का बेटा है और विलायत से बैरिस्टरी पास कर लौटने पर देश सेवा का कार्य करता है । वह क्षत्रिय है । नायिका पद्मा के पिता आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं । वह जाति की ब्राह्मण है । दोनों सहपाठी रहे हैं और परस्पर प्रेम करते हैं । पद्मा के पिता मरते समय उससे आग्रह कर गए कि वह अन्तर्जातीय विवाह न करे । पिता का मरते समय का यह आग्रह स्पष्ट करता है कि विवाह-सम्बन्धों में लड़के-लड़की के परस्पर प्रेम की महत्ता तथा जाति प्रथा के टूटने की भावी आशंका को उनकी बूढ़ी और अनुभवी आँखें देख रही थीं, जिसे उनके पुराने संस्कार स्वीकार नहीं कर सकते थे । पद्मा के पिता की इस आशंका में नए युग का नया यथार्थ झलक रहा है । यह उस युग की पुराने संस्कारों से ग्रस्त पकी पीढ़ी की वास्तविक चिन्ता थी और यह समस्या व्यक्ति की नहीं वरन् समाज की समस्या थी । पद्मा और राजेन्द्र दोनों या एक निराश

प्रेमी बनकर आत्महत्या कर सकते थे। यह जीवन से पलायन का शुद्ध छायावादी समाधान होता। दोनों पिता के अन्तिम आग्रह की अवहेलना कर जाति-बन्धन के संस्कारों को तोड़कर विवाह कर सकते थे। यह शुद्ध प्रगतिवादी समाधान होता। किन्तु दोनों अपने प्रेम का निर्वाह भी करते हैं और पिता के अन्तिम आग्रह का भी। दोनों अविवाहित रहकर देश-सेवा का व्रत ले लेते हैं। यह तत्कालीन नयी पीढ़ी के संस्कार तथा संघर्ष की यथार्थ स्थिति थी। पद्मा प्रेम और पिता के आग्रह का सम्मान करने के संस्कार के द्वन्द्व से ग्रस्त है। इस द्वन्द्व की सिन्थीसिस नए मानव-सम्बन्धों की स्थापना करती है। यह रूमानी भावुकतापरक शुद्ध अनुभूत्यात्मक प्रेम-सम्बन्ध है जो व्यक्तिगत से सर्वगत हो जाता है। देश-प्रेम के रूप में विस्तृत होकर मानवमात्र के प्रति हो जाता है।

यह आदर्श परम्परागत आदर्श से भिन्न है। निराला की कहानियों से पूर्व की कहानियों में अधिकांशतः परम्परागत संस्कारों की सीमा में ही आदर्श की स्थापना की गयी है। परम्परा से हटकर व्यक्ति के चरित्र की किसी नयी आदर्श स्थिति की परिकल्पना का उनमें अभाव है और न समाज को किसी नयी लीक पर परिचालित करने वाले चरित्र ही उनमें मिलते हैं। सम्भवतः इसी स्थिति से असन्तुष्ट होकर 'लिली' कहानी-संग्रह की भूमिका में निराला ने लिखा था—"मुझसे पहले वाले हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक इस कला को किसी दूर उत्कर्ष तक पहुँचा चुके हैं, मैं पूरे मनोयोग से समझने का प्रयत्न करके भी नहीं समझ सका। समझता, तो शायद उनसे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेता और पतन के भय से इतना न घबराता।" नए यथार्थ की अनिवार्यताओं को वाणी देने में पिछली कहानियों के पात्रों तथा कथ्य की अपर्याप्तता को निराला ने अनुभव किया था।

'ज्योतिर्मयी' कहानी में विधवा विवाह की समस्या को उठाया गया है। विधवा विवाह की समस्या उस युग की कहानियों का बड़ा ही आम और प्रचलित विषय हो गया था। ज्योतिर्मयी बाल विधवा है। वह विजय से प्रेम करती है और उससे विवाह करना चाहती है। पर संस्कारों को तोड़ने में साहस का अभाव बाधक है। विजय का मित्र वीरेन्द्र अपने मैनेजर को ज्योतिर्मयी का बाप बनाकर उससे कन्यादान कराकर दोनों का विवाह करा देता है। कहानी में न तो कोई नयापन है और न विशेषता। वीरेन्द्र का अपने मित्र के लिए किए गये त्याग का वर्णन रूमानी भावुकतापरक छायावादी शैली में किया गया है।

'सखी' कहानी में लीला नामक सखी के लिए किए गए त्याग का रूमानी वर्णन है। लीला एम० ए० की छात्रा है और ट्यूशन करके शिक्षा के खर्च का प्रबन्ध करती है। एक दिन गुंडे उसे घेर लेते हैं। एक युवक, जो आई० सी० एस० है, उसकी रक्षा करता है। लीला सहज रूप से उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। वह युवक लीला की सखी ज्योति से विवाह करना चाहता है, किन्तु जब ज्योति को लीला के आकर्षण का पता लगता है तो अपने को बीच से हटाकर उस युवक का लीला से विवाह करा कर भावुकतापरक त्याग का आदर्श प्रस्तुत करती है और वह युवक भी लीला से विवाह करना स्वीकार का ऐसा ही आदर्श प्रस्तुत करता है।

'न्याय' कहानी में पुलिस पर व्यंग्यात्मक चोट है। कहानी का नायक एक घायल व्यक्ति की रक्षा करता है, किन्तु पुलिस उसे ही उसके घायल करने के अपराध में गिरफ्तार कर लेती है। उसके चंगुल से उसकी सहपाठिनी प्रेमिका जैसे-तैसे चतुरता से उसे छुड़ाकर लाती है।

इन सभी कहानियों में व्यक्तिगत रूमानी छायावादी आदर्श प्रस्तुत किया गया है। सभी की नायिकाओं का चित्रण भी छायावादी चित्र-कल्पना-शैली में हुआ है, किन्तु समस्याएँ नितान्त निजी न होकर सामाजिक हैं। पात्रों में असन्तोष तो है किंतु विद्रोह का तीखापन नहीं है।

'श्यामा', 'सफलता', 'कमला', 'हिरनी', 'परिवर्तन', 'अर्थ', 'भक्त और भगवान', 'राजा साहब को ठेंगा दिखाया', 'जानकी', 'क्या देखा', 'सुकुल की बीवी', 'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी', 'प्रेमिका परिचय', 'कला की रूपरेखा' निराला के छायावादी व्यक्तित्व से प्रगतिवादी व्यक्तित्व के संक्रमण की परिचायक हैं। इन कहानियों में छायावादी रूमानियत से अपने को अलग करने का प्रयास साफ़ झलकता है, किन्तु नई दिशा के स्पष्ट बोध के अभाव में कहीं पात्र प्रतिशोध के मार्ग पर बढ़ता है, तो कहीं विचित्र ढंग से ईश्वर पर भरोसा कर इधर-उधर भटकता है, तो कहीं भक्ति और देश-प्रेम में अनोखा समन्वय देखता, तो कुछ कहानियों में लेखक समाज की भिन्न-भिन्न स्थितियों के प्रति व्यंग्यात्मक चोटें करके ही अपने विक्षोभ को शान्त कर लेता है। इन कहानियों में समस्याएँ जीवन के नए संदर्भों से उत्पन्न कुछ नये प्रकार की हैं और उनकी सामाजिक व्याप्ति भी अधिक विस्तृत है।

'श्यामा' कहानी में ज़मींदार द्वारा किसान के शोषण का आधार लिया गया है। "आठ रुपये बीघे के हिसाब से ज़मींदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिए थे। मैंने कई साल तक खेतों को खूब बनाया, खाद छोड़ी। जब खेत कुछ देने लगे, तब परसाल उन्होंने बेदखल कर दिया। पहले इजाफ़ा लगान बीघा पीछे पाँच रुपया माँगते थे। अपने पास इनना दम न था। खेत छोड़ दिए। पर किसान जाय कहाँ, क्या खाए ? फिर उन्हीं ज़मींदार दयाराम के पैरों नाक रगड़नी पड़ी।" किसान में उस शोषण को समझने की बेदारी तो आ चली है, भले ही उससे मुक्ति प्राप्त करने का उपाय उसे अभी न सूझा हो। लेकिन न जाने कितने नौजवानों ने ऐसे देशी-विदेशी शोषकों से शोषितों को मुक्ति दिलाने के लिए ऐसे लोगों की हत्या करने के आतकंवादी मार्ग को अपनाया था। बंकिम ने भी अपने ढंग से प्रतिशोध का मार्ग अपनाया। उसने ब्राह्मण होते हुए भी निम्न जाति की श्यामा से विवाह कर उसे समाज के सिर पर बैठा दिया। पढ़-लिखकर डिप्टी कलक्टर बना और उसी दयाराम ज़मींदार को श्यामा की आज्ञा से चपरासियों द्वारा अपमानित कर कोठी से निकलवा दिया, जिसके निर्मम अत्याचारों से ही श्यामा के बाप की मृत्यु हुई थी। इस प्रकार वह दयाराम से उसके अत्याचारों का प्रतिशोध ले लेता है। बंकिम संघर्षशील नहीं अपितु संघर्षाकुल मानव के रूप में सामने आता है। वह 'पद्मा और लिली' कहानी के नायक-नायिका राजेन्द्र और लिली से एक कदम आगे बढ़कर अन्तर्जातीय विवाह कर

पुराने संस्कारों को भी तोड़ता है; किन्तु अभी उसमें समाज को नयी व्यवस्था देने वाली चेतना का मानव नहीं उभर पाया है । अभी व्यक्तिगत रूप में प्रतिशोध लेने तक उसकी चेतना विकसित हुई है ।

'सफलता' कहानी भी इसी परम्परा की कहानी है । उसका नायक नरेन्द्र साहित्यकार है । उसके रूप में प्रकाशकों द्वारा निराला के शोषण की कहानी भी झलक उठती है । प्रकाशकों के शोषण से पीड़ित नरेन्द्र अपनी छोटी-मोटी घरेलू आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं कर पाता और न वैवाहिक जीवन सुखी बना पाता है । वह प्रकाशकों से प्रतिशोध लेने के लिए नाटक कम्पनी खोलकर रुपया कमाने की योजना बनाता है । आभा को संगीत की शिक्षा देता है और दोनों मिलकर कम्पनी चलाते हैं । संयोग से उसका प्रकाशक भी एक रंगशाला की स्थापना करता है और नरेन्द्र से अपनी रंगशाला में अभिनय प्रस्तुत करने का प्रस्ताव करता है; किन्तु नरेन्द्र प्रतिशोध भावना से प्रेरित होकर कड़ी शर्त लगाता है और प्रकाशक से कहता है— "बाबू धनीरामजी ! मैं छः महीने में एक किताब लिखता था पर उसके लिए आपने मुझे पन्द्रह रुपया सैकड़ा भी नहीं दिया ।" इस प्रकार के प्रतिशोध का अनौचित्य निराला के मन में भी उभरने लगा था, जो इस कहानी की नायिका के शब्दों से प्रकट है—"नरेन्द्र, तुम बुरा तो नहीं मानोगे ! मैं देखती हूँ दुःख बहुत थे ज़रूर, पर मन्दिर का वह दीप जलाने वाला जीवन मुझे बड़ा सुखमय लग रहा है ।"

'कमला' कहानी भी यद्यपि प्रतिशोध भावना पर आधारित है; किन्तु 'श्यामा' और 'सफलता' कहानी की प्रतिशोध भावना वैयक्तिक विद्रोह भावना से प्रेरित है, जबकि 'कमला' कहानी की प्रतिशोध भावना 'बुराई करने वाले के प्रति भी भलाई करो' की गांधीवादी भावना से प्रेरित है। कमला को उसका पति झूठे लांछन के कारण त्याग देता है । संयोगवश हिन्दू-मुस्लिम दंगों में पति की बहन मुसलमानों के जाल में पड़कर भ्रष्ट हो जाती है और जाति बहिष्कृत कर दी जाती है। कमला उसे अपने भाई के साथ विवाह के लिए स्वीकार कर अपने परित्यक्त किये जाने का बदला पति की जाति-बहिष्कृत बहन को आश्रय देकर लेती है; किन्तु पति के पश्चात्ताप करने और लाख मनाने पर भी उसके साथ नहीं जाती । इस प्रकार पति के साथ भलाई कर उसे नीचा दिखाकर प्रतिशोध लेती है। कमला के रूप में एक नया नारी चरित्र उभरता है जिसका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है जो पति द्वारा परित्यक्त होकर भी स्वयं अडिग बनी रह सकती है । उसका पति के साथ लौट आना, उसके व्यक्तित्व का पतन होना और दूसरा विवाह कर लेना युग की चेतना से आगे की बात होती । अतः कहानी का अन्त युग यथार्थ की सीमाओं में ही हुआ है ।

'हिरनी' कहानी भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिशोध भावना से प्रेरित कहानी है । एक रानी अपनी हिरनी नाम की दासी पर अमानवीय अत्याचार करती है । रानी बीमार हो जाती है । डॉक्टर कहता है कि गुस्से की गरमी दिमाग में चढ़ जाने से ही वह बीमार है । रानी को गरीब को सताने का बदला मिल गया । गरीब की आह उसे लग गयी । सामाजिक चेतना का तीखापन कहानी में नहीं है ।

'परिवर्तन' कहानी में जाति प्रथा पर चोट की गयी है। राजा महेश्वरसिंह का हृदय परिवर्तन कराकर उन्हें समाज-सुधारक बना दिया गया है; किन्तु उनका समाज-सुधारक होना वास्तविक हृदय-परिवर्तन का परिणाम नहीं वरन् प्रच्छन्न रूप से उनके क्षत्रिय-दर्प का परिणाम है। कहानी सामाजिक चेतना का कोई नया आयाम नहीं प्रस्तुत करती।

'अर्थ' कहानी यद्यपि अर्थ-प्रधान समाज-व्यवस्था पर व्यंग्य है, किन्तु व्यंग्य में तीखेपन और स्पष्टता का अभाव है। रामकुमार अपने मित्रों के बहकावे में आकर अपना सारा धन गवाँ बैठता है। वह ईश्वर पर भरोसा कर आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए सच्चे मन से राजा राम के नाम से चित्रकूट के पते पर पत्र लिखता है, किन्तु पत्र लौट आता है। तब वह स्वयं राम से साक्षात्कार करने के इरादे से चित्रकूट जाता है और राम की तलाश में भटकता हुआ सूखकर काँटा हो जाता है कि तभी संयोग से वहीं एक मित्र से भेंट हो जाती है और उसकी मदद से उसे नौकरी मिल जाती है। थोड़े ही दिनों में वह एक बड़ा उपन्यासकार बन जाता है। रामकुमार उसी में राम के दर्शन करता है और विश्वास करता है कि राम की कृपा से ही उसकी परेशानी मिटी है। कहानी की व्यंजना का संकेत है कि ईश्वर के भरोसे रहने से किसी की मनोकामना पूरी नहीं होती। मनुष्य ही मनुष्य का सहायक होता है और वही भगवान् है। किन्तु यह संकेत भी बड़ा ही उलझा हुआ और दूरस्थ है।

'भक्त और भगवान' भी कुछ-कुछ इसी परम्परा की कहानी है; किन्तु उसकी व्यंजना अधिक स्पष्ट, गहरी, व्यापक और प्रभावशाली है। हनुमान का एक भक्त अपनी पत्नी के लाल साड़ी पहने तथा सिन्दूर-रंजित रूप में हनुमान की मूर्ति के दर्शन करता है जो मानो उससे कह रही हो—"उठो, और मुझे समझो।" भक्त नहीं समझा और हनुमान की भक्ति में लीन रहा। उपेक्षा में उसकी पत्नी बीमार पड़कर मर गयी। वह फिर भी हनुमान की भक्ति में लीन रहा कि एक दिन उसने स्वप्न में हनुमान की वीर मूर्ति के दर्शन किये जिसने भारतवर्ष के मानचित्र का रूप ग्रहण कर लिया। दोनों की एकरूपता का चित्र उसके मानसपटल पर उभरा और निर्धन देशवासियों पर धनवानों द्वारा होने वाले अत्याचारों की चोट उसे हनुमान पर चोट हुई लगने लगी। हनुमान के वीर वेश के रूप में भारतवर्ष के दर्शन करने के स्वप्न की व्याख्या करते हुए स्वामी परमानन्दजी ने उसे बताया—"यह सूक्ष्म भारत है, इसका प्रसार समझ के पार है।" भक्त प्रश्न करता है—"ये गरीब मरे जा रहे हैं, इनके लिए क्या होगा ?" उसे उत्तर मिलता है—' इन्हें वही उभारेगा, जो वहाँ के राजा को उभारता है। तुम अपने में रहो, दूर मत जाओ।" उसे अपनी स्वर्गीय पत्नी के भी दर्शन होते हैं। हनुमान उससे कहता है—"यह मेरी माता देवी अंजना है।" अपनी पत्नी के रूप में हनुमान के दर्शन, हनुमान के वीर रूप में भारतवर्ष के दर्शन तथा देवी अंजना के रूप में पुनः पत्नी के दर्शन से समन्वित रूप में कहानी की व्यंजना स्पष्ट हो जाती है कि यह सब एक ही रूप के भिन्न रूप हैं। पत्नी, हनुमान और देश के प्रति प्रेम में कोई विरोध नहीं। देश-प्रेम और सांसारिक कर्त्तव्यों का

पालन ही सच्ची भक्ति है। राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास साक्षी है कि गर्म दल, विशेष रूप से क्रान्तिकारी दलों के आविर्भाव में काली की वीर मूर्ति में भारतमाता के दर्शन का कितना बड़ा योगदान रहा है।

'राजा साहब को ठेंगा दिखाया' कहानी भक्ति के पाखंड पर एक व्यंग्य है। एक राजा के मन्दिर का पुजारी वेतन न मिलने के कारण भूखा है। राजा तक उसकी पहुँच नहीं। नहर में नाव पर हवाखोरी के लिए निकले राजा साहब को जब वह दूर से ही संकेत द्वारा अपनी वेदना व्यक्त करता है तो राजा साहब के मुसाहिब राजा से कहते हैं कि यह आपको ठेंगा दिखाकर आपका अनादर कर रहा है। यह एक बड़ा विद्रोही है और राजा की आज्ञा से उसे खाने के स्थान पर मार मिलती है।

'जानकी', 'क्या देखा' तथा 'सुकुल की बीवी' नारी-जीवन की सामान्य समस्याओं पर आधारित कहानियाँ हैं। 'जानकी' अत्यन्त ही साधारण कहानी है। 'क्या देखा' में वेश्या में भी नारी-मन तथा सच्चे प्रेम की अनुभूति चित्रित है। 'सुकुल की बीवी' में अन्तर्जातीय तथा अन्तर्धर्मीय विवाह की समस्या को उठाया गया है। प्रकारान्तर से साहित्य-चर्चा भी इस कहानी का विषय बन गयी है। निराला स्वयं इन दोनों कहानियों में एक पात्र हैं; अतः ये कहानियाँ संस्मरण अधिक हैं। 'क्या देखा' में वेश्या के प्रति एक नई मानवीय संवेदना को प्रस्तुत किया गया है।

'श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी' कहानी में एक ऐसी नारी का चरित्र चित्रित है जो अवसर से लाभ उठाकर नेता और समाज की प्रतिष्ठित महिला बन जाती है और तब उसके वही सारे दोष अदोष हो जाते हैं जिनकी आशंका करने से ही पति उसे त्याग देता। शास्त्रिणीजी शास्त्रीजी की चौथी पत्नी हैं। कुँवारेपन में ही वे गर्भवती हो चुकी हैं। इसका लाभ मिला शास्त्रीजी को कि अधेड़ उम्र में जवान लड़की से शादी हो गयी। शास्त्रीजी अधेड़ हैं, इसका लाभ उठाती हैं शास्त्रिणीजी और दोनों एक-दूसरे को लाभ पहुँचाते हुए एक-दूसरे के विकास में सहायक बनते हैं। शास्त्रिणीजी समाज-नेत्री और प्रतिष्ठित महिला बन जाती हैं और शास्त्रीजी की वैद्यक खूब चल निकलती है और वह प्रतिष्ठित नागरिक बन जाते हैं।

'प्रेमिका परिचय' और 'कला की रूपरेखा' एक्सपोज़र कहानियाँ हैं। 'प्रेमिका परिचय' में प्रेम के दीवानों का एक्सपोज़र है। प्रेमकुमार नामक एक युवक की होने वाली पत्नी भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रेमकुमार को उसकी प्रेमिका बनकर मिलने के लिए बुलाती है, पर संकेत-स्थल पर मिलता कोई नहीं। हर बार मन मसोसकर लौट आते। अगली बार फिर नयी जगह पर मिलने का पक्का वायदा करते हुए पत्र आता और प्रेमकुमार को फिर बैरंग लौटना पड़ता। उन्हें अन्तिम पत्र यह मिला।

"तुम्हें गोमती में भी चुल्लू-भर पानी नहीं मिला।"

तुम्हारी
शान्ति।

शान्ति प्रेमकुमार की होने वाली पत्नी का उपनाम था।

'कला की रूपरेखा' में कांग्रेस का अपने स्वयंसेवकों के साथ उपेक्षा के व्यवहार का एक्सपोज़र है। एक मद्रासी स्वयंसेवक को जाड़े से बचने के लिए अपनी गर्म चादर देनी पड़ी थी। अपने घर वापस जाने के लिए मार्ग व्यय माँगने पर उसे उत्तर मिला—"कांग्रेस का यह नियम नहीं है।" यह कहानी आज भी कांग्रेस पर सटीक व्यंग्य करती है। इस कहानी में भी निराला स्वयं एक पात्र हैं और प्रकारान्तर से साहित्य-चर्चा इसका एक मुख्य विषय है। यह संस्मरण के अधिक निकट है।

'स्वामी सारदानन्द महाराज और मैं' तो शुद्ध संस्करण ही है। उसमें कहानीपन बिल्कुल भी नहीं है।

इन सभी कहानियों में निराला का समाज का आलोचक और द्रष्टा रूप विशेष रूप से उभरा है। स्रष्टा रूप भी यद्यपि कहीं-कहीं परिलक्षित होता है; किन्तु उनका स्रष्टा रूप 'देवी', 'चतुरी चमार', 'दो दाने', 'कुल्लीभाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' में विशेष रूप से उभरा है। इन कहानियों में नया आदमी और नया समाज स्पष्ट रूप से उभरता दृष्टिगोचर होता है।

'देवी' एक पगली की कहानी है, जो समाज से उपेक्षित और पीड़ित हो, अपने दुधमुँहे बच्चे को सूखी छाती से चिपकाए होटल के सामने जाड़ा, गर्मी, बरसात—हर मौसम में खुले में पड़ी रहती है। होटल में ठहरा एक लेखक उसे देखता है। उसको देखते हुए लेखक की पैनी संवेदनशील दृष्टि समाज के संदर्भ में देवी की स्थिति और देवी के संदर्भ में समाज-व्यवस्था, समाज-सुधारक, नेता, धर्म के ठेकेदार, साहित्यकार, समी को भीतर-बाहर से उनके रूप में देख जाती है। उसकी दृष्टि जीवन को एक नया अर्थ-बोध, संवेदन और मूल्य दे जाती है। यह अर्थ-बोध साहित्यकार के रूप में उसको साहित्य के प्रयोजन और साहित्यकार के दायित्व की नयी चेतना का पक्षधर बना देता है। वह पगली उसके लिए देवी बन जाती है। उसने उसको पागल बनाने वाले सामाजिक वैषम्य और उस पर कुंडली मारकर बैठे उसके तथाकथित ठेकेदार रक्षकों के चेहरों को अच्छी तरह पहचान लिया था। यह वही चेहरे तो थे जिन्होंने निराला को भी पागल बना दिया था। लेखक को वह पगली नेपोलियन से भी अधिक वीर प्रतीत होती है जो अडिग और निर्विकार भाव से दैवी और मानवकृत अत्याचारों और पीड़ाओं को सहन करती रहती है। वह सच्ची इन्सान है। इतना सब होने पर भी अपने बच्चों के प्रति उसका मातृत्व भाव तथा उसके प्रति सहानुभूति रखने वाले लेखक तथा कुछ अन्यों के प्रति उसका कृतज्ञता का मानवीय भाव नहीं मरता। लोग उसकी इस स्थिति को उसके कर्मों का भोग कहकर असलियत से आँख चुरा लेते हैं, लेकिन लेखक की अन्तर्दृष्टि ने असलियत को देख लिया। उसने देख लिया कि उसकी स्थिति उन कर्मों का भोग नहीं वरन् सामाजिक वैषम्य है। स्वयंसिद्ध समाज के नेता का जुलूस उसके सामने से निकल गया। भीड़ में उसका बच्चा कुचल गया। नेताजी जन-सेवा का ढिंढोरा पीटकर और दस हज़ार की थैली लेकर चले गए। भक्त-मंडली सामने से गुज़री और कर्मों के भोग पर सारी ज़िम्मेदारी डालकर चली गयी। कानूनी रक्षक

फ़ौज सामने से निकली और शान्ति-व्यवस्था के नाम पर शक्ति का आंतक जमाती हुई चली गयी। इस प्रकार लेखक ने समाज के इन तीनों पक्षों को उस पगली के संदर्भ में रखकर उनके दावों के झूठ की वास्तविकता को स्पष्ट कर दिया है। निराला उस उपेक्षिता को अपनी संवेदना देते हैं—"आज तक कितने वर्षा-शीत-ग्रीष्म इसने झेले हैं, पता नहीं। लोग नेपोलियन की वीरता की प्रशंसा करते हैं। पर यह कितनी बड़ी शक्ति है, कोई नहीं सोचता। सब इसे पगली कहते हैं, पर इसके परिवर्तन के लिए क्या वही लोग कारण नहीं हैं ?"

'दो दाने' कहानी में बंगाल के ऐतिहासिक अकाल की पृष्ठभूमि में मानव-निर्मित परिस्थितियों से विवश नारी की दो दानों के लिए शरीर का व्यापार करने की पीड़ा का मार्मिक चित्रण है। यह कहानी पूंजीवादी विषमतापूर्ण अर्थव्यवस्था पर आधारित समाज-व्यवस्था के प्रति एक तीखे आक्रोश को जन्म देती है और उसकी विडम्बना की अनुभूति ऐसे समाज को बदलने की चेतना प्रदान करती है।

'चतुरी चमार' मानव-निर्मित जाति-भेद पर आधारित ऊँच-नीच की विडम्बना से पीड़ित निम्न जाति में आत्म-सम्मान की नयी चेतना के प्रादुर्भाव की कहानी है। चतुरी उस उभरते आत्म-सम्मान का प्रतिनिधि है। एक बार चेतना आने पर वह आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए मिट सकता है पर झुक नहीं सकता।

निराला की दृष्टि में चतुरी महान् है क्योंकि वह समाज के लिए उपयोगी काम करता है और उसके मन में ऊँच-नीच के कटघरे नहीं हैं। यद्यपि वह पढ़ा-लिखा नहीं, परन्तु संत साहित्य का उसका ज्ञान किसी भी विद्वान से कम नहीं। जीवन नई करवट ले रहा था। गांधीजी के हरिजन आन्दोलन तथा मार्क्सवादी विचारों के प्रभाव से ऊँच-नीच के भेद-भाव की खाई मिट चली थी। निम्न के प्रति मानव-समानता पर आधारित एक नया दृष्टिकोण उभर चला था। परिणामतः निम्न जातियों में भी विकास के नए क्षितिजों का विस्तार होना स्वाभाविक था। उसमें सदियों से दबी पड़ी आगे बढ़ने की लालसा अंगड़ाई लेकर जाग पड़ी थी। यह लालसा चतुरी अकेले की नहीं समूचे उस वर्ग की है जो अब तक उपेक्षित रहा है। उसमें एक नया आत्मसम्मान जागता है। उसकी उम्र तो बीत गयी पर वह अपने लड़के को पढ़ाकर अपने पिछड़ेपन को दूर करने का प्रयत्न करता है। निराला उसके लड़के को पढ़ाते हैं। बेगार लेने की प्रथा दास प्रथा के अवशेष के रूप में प्रचलित थी। चतुरी से दो जोड़ी जूते लेना ज़मींदार का अधिकार था और जूते देना चतुरी का कर्तव्य। चतुरी सदियों की उस दासत्व परम्परा को एक झटके में तोड़ देता है। उसका ऐसा करना तो निम्न वर्ग में नयी चेतना के उभार का प्रतीक है। ज़मींदार आतंकित करने के लिए बेदखली और दमन का अस्त्र प्रयोग करता है। 'श्यामा' कहानी में किसान को 'विवश होकर' ज़मींदार के पैरों नाक रगड़नी पड़ी थी; किन्तु चतुरी चमार में जो नया आदमी जागा है वह नाक रगड़ने वाला नहीं है, यद्यपि उसकी यह चेतना सामूहिक शक्ति का रूप नहीं ले पाई है। इस नए अहसास के होते ही उसका निम्नत्व मिट जाता है और वह महान् हो जाता है। चतुरी भी महान हो गया।

दस कोस पैदल चलकर, भूखों रहकर उसने ज़मींदार से मुकदमा लड़ा, पर हार नहीं मानी। जब मुकदमे के फैसले में उसने सुना कि ज़मींदार को मुफ्त जूते देना उसका कर्तव्य नहीं—'अब्दुल अर्ज़' (वाजिबुल अर्ज़) में दर्ज नहीं—तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा, क्योंकि अब वह किसी का दास नहीं रहा।

'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' लम्बी कहानियाँ हैं। 'कुल्ली भाट' जीवनीपरक कहानी है। इसमें संस्मरण का भी पुट है। यद्यपि इस कहानी में समाज की किसी समस्या को आधार नहीं बनाया गया, फिर भी ग्रामीण जीवन इसके माध्यम से मुखरित हो उठा है। निराला स्वयं इस कहानी के एक पात्र हैं। उनके सम्पर्क से अनुकूल वातावरण पाते ही कुल्ली भाट में एक नया इन्सान जाग उठता है। उनमें एक मुसलमान महिला को घर ले आने का साहस आ गया, जिसे वह प्रेम करते थे। अछूत बच्चों की एक पाठशाला चलाने लगे और जनता की सेवा करने लगे। निराला को कुल्ली भाट में एक सच्चे इन्सान के दर्शन हुए थे—"कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है। इतने जम्बुकों में वह सिंह है। वह अधिक पढ़ा-लिखा नहीं, लेकिन अधिक पढ़ा-लिखा कोई उससे बड़ा नहीं।"

'बिल्लेसुर बकरिहा' भी जीवनीपरक लम्बी कहानी है। इस कहानी में नए सामाजिक संदर्भों में उभरे नए यथार्थ की समस्याओं का नयी दृष्टि से चित्रण किया गया है जिससे गतानुगत सामाजिक मान्यताओं के परिवर्तन की प्रक्रिया स्पष्ट हो उठती है। लेखक ने बिल्लेसुर को केन्द्र बनाकर कान्यकुब्जों में व्याप्त कुरीतियों का बड़ा व्यंग्यात्मक वर्णन किया है। बिल्लेसुर ने बकरियाँ पाल रखी हैं और उन्हें चराने नित्य गाँव के बाहर ले जाते हैं। गाँव के बाहर बने महावीरजी के मन्दिर में जाकर महावीरजी से बकरियों की रक्षा करने की प्रार्थना करना उनका नित्य का नियम है। लेकिन एक दिन उनकी एक बकरी गायब हो गयी। महावीरजी उसकी रक्षा नहीं कर सके।" बिल्लेसुर की आँखों में शाम की उदासी छा गयी......महावीरजी का मन्दिर दीखा। अँधेरा हो गया था। चबूतरे-चबूतरे मन्दिर की उल्टी प्रदक्षिणा करके पीछे महावीरजी के पास गये। लापरवाही से सामने खड़े हो गये और आवेश में भरकर कहने लगे—"देख, मैं गरीब हूँ। तुझे सब लोग गरीबों का सहायक कहते हैं। मैं इसीलिए तेरे पास आता था और कहता था—मेरी बकरियों और बच्चों को देखे रहना। क्या तूने रखवाली की ? बता, लिए थूथन-सा मुँह खड़ा है।" कोई उत्तर नहीं मिला। बिल्लेसुर ने आँखों से आँखे मिलाए हुए महावीरजी के मुँह पर वह डंडा दिया कि मिट्टी की तरह टूटकर बीघे-भर के फासले पर जा गिरा।" साथ ही बिल्लेसुर के ही नहीं वरन् निराला के भी पुराने विश्वास टूट गये।

'अर्थ', 'भक्त और भगवान' तथा 'बिल्लेसुर बकरिहा' में पुराने आध्यात्मिक विश्वासों के प्रति स्वयं निराला तथा उनके युग की चेतना के विकास के तीन स्तर स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ते हैं। इन तीनों कहानियों को एक साथ रखकर देखने में ही उनका महत्त्व स्पष्ट होता है। 'अर्थ' में भक्त ईश्वर पर सच्चा विश्वास रखता हुआ साधना करता है कि ईश्वर प्रसन्न होकर उसकी आर्थिक दशा सुधार देंगे। वह

अपना शरीर घुला डालता है, फिर भी ईश्वर उसकी सहायता को नहीं आते । उसकी भक्ति मूर्खतापूर्ण अन्धविश्वास की सीमा को छूती है । भक्ति के इस रूप के प्रति सारता और असारता का जो प्रश्न मन में कहीं उठा उसे निराला के ईश्वर-सम्बन्धी संस्कारों ने 'भक्त और भगवान' में एक नया समाधान और सार प्रदान किया, ईश्वर-भक्ति और देश-भक्ति का समन्वय प्रस्तुत करके । किन्तु सामाजिक यथार्थ के नए संदर्भों ने इस प्रकार के समन्वय की सारता और निःसारता के प्रश्न का पूर्ण समाधान नहीं प्रस्तुत किया । 'बिल्लेसुर बकरिहा' उसकी तीसरी कड़ी है जिसमें ईश्वर पर भरोसा कर बैठे रहने के संस्कार को झटका देकर तोड़ दिया गया । कहानी स्पष्ट व्यंजना देती है कि पुराने संस्कारों को तोड़े बिना नए युग को गढ़ने वाला नया आदमी सामने नहीं आयेगा ।

इस प्रकार निराला ने अपनी कहानियों में सन् '३० के बाद उभरते नए जीवन को विभिन्न कोणों से चित्रित किया है जिससे जीवन के क्रमिक विकास का एक स्पष्ट चित्र उभर उठता है । इन कहानियों में जाति, धर्म, ऊँच और नीच के कटघरों से मुक्त मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्वीकार कर नए मानवीय संवेदनशील सम्बन्धों की स्थापना की गयी है । इन कहानियों में नयी मानवता की गंध है ।

निराला के रेखाचित्र

डा० प्रेमप्रकाश भट्ट

निराला यथार्थ और आदर्श की द्विधा के लेखक हैं। उनके गद्य-साहित्य को देखते हुए यह बात और भी विश्वास के साथ कही जा सकती है। उनकी गद्य-रचनाओं में एक ओर 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा' उपन्यास हैं तो दूसरी ओर 'कुल्लीभाट' और 'बल्लेसुर बकरिहा' जैसी कृतियाँ हैं; इसी तरह, उनकी छायावादी कहानियाँ एक कोटि की हैं तो दूसरी ओर 'देवी' और 'चतुरी चमार' जैसी रचनाएं बिल्कुल भिन्न प्रकार की हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि निराला अपनी रचनाओं में कहीं तो छायावादी सौन्दर्य-बोध, रूमानी दृष्टि और आदर्शवादी विचारों से प्रभावित दीखते हैं और कहीं कठोर व्यंग्य-लेखक और सामाजिक यथार्थ के अप्रतिभ चित्रकार नज़र आते हैं। सर्वोपरि बात यह है कि एक बार यथार्थवादी रचना देने के बाद भी वे छोड़े हुए रोमांस की ओर बार-बार झुकते हैं—उस पुराने ढर्रे पर फिर से चलने लगते हैं। 'देवी' और 'चतुरी चमार' जैसी यथार्थवादी रचनाओं के बाद 'निरुपमा' व 'प्रभावती' जैसे प्रेम-मूलक उपन्यासों की ओर अभिमुख होने का यही रहस्य है।[1] निराला की विचारधारा में पाए जाने वाले आदर्श व यथार्थ के द्वन्द्व का सन्धान हमें उनके जीवन-दर्शन तक पहुँचाता है। डॉ० रामविलास शर्मा उनके अन्तर्विरोधों से भरे जीवन-दर्शन की जटिलता को समझने का आग्रह करते हुए कहते हैं—"निराला के जीवन-दर्शन में असंगतियाँ हैं जिन्हें समझे बिना उनके साथ न्याय नहीं किया जा सकता। वह एक ओर यथार्थ जीवन को माया कहते हैं तो दूसरी ओर इस मायामय यथार्थ जीवन से प्रेरणा लेकर महान् रचनाएँ भी हमें देते हैं। इस सत्य से कैसे इन्कार किया जा सकता है?"[2]

---

१. निराला, डॉ० रामविलास शर्मा, तीसरा सं०, पृ० १३७।
"नये ढंग के यथार्थवादी रेखाचित्रों का सिलसिला एकबारगी ही नहीं चल पड़ा। 'देवी' और 'चतुरी चमार' लिखने के बाद निरालाजी पीछे छोड़े हुए रोमांस की ओर बार-बार झुकते थे। 'निरुपमा' और 'प्रभावती' के नायक 'अप्सरा' और 'अलका' से मिलते-जुलते हैं..............[।]

२. निराला, डॉ० रामविलास शर्मा, तीसरा सं०, पृ० १६५।

निश्चय ही निराला के जीवन-दर्शन की असंगतियों को समझे बिना उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त जीवन-दृष्टि को लेकर कुछ कहना अपने में एक खतरे से खाली बात होगी । किन्तु, उनकी गद्य-रचनाओं को ध्यान में रखते हुए इतना तो निर्विवाद रूप से कहा ही जा सकता है कि उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण उनके रेखा-चित्रों में जितना मुखर हुआ है उतना अन्य रचनाओं में नहीं । अतएव उनके जीवन-दर्शन के यथार्थवादी पक्ष के उद्घाटन में ये विशेष रूप से सहायक सिद्ध होते हैं ।

निराला के रोमांस, आदर्शवाद और अद्वैतवाद को छोड़कर नग्न यथार्थ की ओर अग्रसर होने की अपनी एक कहानी है । उठती हुई तरुणाई में ही कई कुटुम्बी जनों की मृत्यु, एक बड़े परिवार के भरण-पोषण का भार, सम्मुख अनिश्चित भविष्य का अंधकार, साहित्य-क्षेत्र में उनके नये प्रयोगों का सम्मिलित तिरस्कार आदि ऐसी बाह्य परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण निराला को यथार्थ की कटुता के दंशन सहने पड़े । किन्तु कलकत्ते में रहते हुए उन्होंने सुख के दिन बिताये थे । मतवाला छोड़ने पर जब वे लखनऊ आकर रहे तभी उनकी रोमांस और वेदान्त की तन्द्रा टूटी । अपने इस परिवर्तन की सूचना वे स्वयं देते हैं—"लखनऊ में मुझे एक फायदा हुआ, कलकत्ते की मेरी चढ़ी आँख लखनऊ में झुक गई । मैं समतल पर आ गया ।"[1] इसके साथ-साथ उस समय के वायुमण्डल में प्रगतिवादी आन्दोलन के स्वर भी गूँजने लगे थे । छाया-वादी अप्सरालोक से उतरकर साहित्यकार माटी की सोंधी गन्ध की ओर भी आकृष्ट होने लगे थे । अतएव निराला में भी सामयिक परिस्थिति ने अपना प्रभाव उत्पन्न किया । इस नवीन प्रतिक्रिया को लक्ष्य करते हुए डॉ० रामविलास शर्मा कहते हैं—"किसी समय रवीन्द्रनाथ की कविता और स्वामी विवेकानन्द की दर्शन-सम्बन्धी रचनाओं ने उनके रोमांटिक कवि को जगाया था । सन् '३३ के आस-पास गोर्की के अध्ययन और प्रगतिवाद के नये आन्दोलन ने उनके ग्रामीण जीवन के अनुभव को साहित्य-सृजन के लिए एक अमूल्य निधि बना दिया ।"[2] यह अमूल्य निधि रेखा-चित्रों की रचना के समय उपयोग में आई ।

'देवी' का यथार्थवाद—रचना-क्रम से 'देवी' निराला की पहली यथार्थवादी कृति है । इसमें चित्रित पगली समाज के बीभत्स यथार्थ का एक जीवित रूप है । जिस समाज की वह अंग है वह धर्म, संस्कृति, राजनीति के छलावे से ग्रस्त है और इतने समीप के यथार्थ के प्रति अनजान है । आँखों के सामने फुटपाथ पर पड़े हुए प्रत्यक्ष को न देखकर धर्म, राजनीति व संस्कृति के अवास्तविक परोक्ष रूपों के सन्धान में जो समाज भटकता है, निराला की यह रचना उसकी आँखों में उँगली डालकर उसे प्रत्यक्ष के प्रति संवेदनशील बनाती है । हमारे सामाजिक ढाँचे का, हमारी सांस्कृतिक इकाइयों का, सभ्य जीवन की सतही चमक का यह कितना बड़ा खिलवाड़ है इसे लेखक के पगली के प्रति कहे हुए शब्दों में देखिये—"वह देश की सहानुभूति का

---

१. निराला, डॉ० रामविलास शर्मा, तीसरा सं० पृ०, १९ ।

२. वही ।

कितना अंश पाती है ?—हमारी थाली की बची रोटियाँ, जो कल तक कुत्तों को दी जाती थीं। यही हमारी सच्ची दशा का चित्र है। यह माँ अपने बच्चे को लेकर राह पर बैठी हुई धर्म, विज्ञान, राजनीति, समाज, जिस विषय को भी मनुष्यों ने आज तक अपनाया है उसी की, भिन्न रुचि वाले पथिक को शिक्षा दे रही है—पर कुछ कहकर नहीं। कितने आदमी समझते हैं। यही न समझना संसार है—बार-बार वह यही कहती है। उसकी आत्मा से यही ध्वनि निकलती है—संसार ने उसे जगह नहीं दी—उसे नहीं समझा; पर संसारियों की तरह वह भी है—उसके भी बच्चा है।"[१]

लेखक पगली की इस दशा के लिए उस सामाजिक व्यवस्था को दोषी समझता है जिसके भीतर अनिवार्य रूप से कई लोग पगली की-सी स्थिति में रहने को मजबूर हैं। समाज की रचना की जड़ में कहीं भारी दोष है जो दुर्भाग्यपूर्ण नियति को जन्म देता है। इसके चक्र में जो भी फँसेगा उसकी स्वाभाविक रूप से पगली जैसी दशा होगी। एक बार जड़ पकड़ लेने पर नियति उसे छोड़ेगी नहीं। पगली का चरित्र मानो ऐसे दुर्भाग्य में ग्रसित हुए लोगों का एक प्रतीक-चरित्र है जिनका दुख लेखक ने पगली में देखा है। पगली को लेकर कही हुई यह बात उस जैसे असंख्य अभागों पर सत्य घटित होती है—"ज्योतिष का सुख-दुःख का चक्र इसके जीवन में अचल हो गया है। सहते-सहते अब दुख का अस्तित्व इसके पास न होगा। पेड़ की छाँह या किसी खाली बरामदे में दुपहर की लू में, ऐसे ही एकटक कभी-कभी आकाश को बैठी हुई देख लेती होगी। मुमकिन, इसके बच्चे की हँसी उस समय इसे ठंडक पहुँचाती हो।"[२]

पगली मनुष्य का वह प्रतिरूप है जो जीवन व मृत्यु के प्रति प्रतिश्रुत रहता है। उसमें स्वयं की इतनी वशवर्तिता भी नहीं होती कि वह मृत्यु व जीवन का स्वतंत्र वरण कर सके। उसका समूचा अस्तित्व ही जैसे उसकी सबसे बड़ी विवशता है। फुटपाथ पर जीवन बिताकर उसने अदृष्ट के कठिन प्रहार झेले हैं और उन्हीं को झेलते हुए वह विदा हुई है। पगली के चतुर्दिक् जो समाज की सत्ता बिखरी पड़ी है, वह उसके केन्द्र में होने के कारण उसके खोखलेपन को प्रमाणित करती है। जिन मूल्यों व आदर्शों की प्राप्ति के लिए धर्म, राजनीति व समाज की संस्थाएँ खड़ी हुई हैं, वस्तुतः वे जीवन से दूर का ही नाता रखती हैं। जीवन की सत्ता इन सबसे निरपेक्ष व गहन है। उसको मापने के लिए आदर्शों व मूल्यों के मानदण्ड असमर्थ और पंगु हैं। कभी-कभी तो ये मृगमरीचिकाओं की सृष्टि करके सत्य को आवृत भी कर देते हैं। निराला की अन्तर्भेदी दृष्टि मृगमरीचिका के नीचे की असलियत को उद्घाटित कर देती है, और यह सब निराला व्यंग्य व विद्रूप की तीखी धार से करते हैं। उनका यह व्यंग्य अपने रूमानी सौंदर्य-लोक में भटकने वाले कवि के प्रति है, परलोक की चिन्ता में भजन-पूजन करने वाली भक्त-मण्डली के प्रति है, कदम मिलाकर सड़क

---

२. देवी, निराला, निरुपमा प्रकाशन, पृ० ४।

३. वही, पृ० ३।

पर मार्च करती हुई गोरी फौज के शक्ति-प्रदर्शन के प्रति है, और है उन सबके प्रति जो पगली के सामने से गुज़रते हुए उसके घोर कष्टपूर्ण जीवन को नहीं देखते बल्कि तथाकथित पूर्व जन्म के पापों में उसकी वर्तमान दशा के कारणों को ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं ।

व्यंग्य का यह भाव और भी गहरा हो जाता है जबकि लेखक अवान्तर घटना-प्रसंग के वर्णन से समाज के छल, प्रपंच और धोखे में सने हुए पक्ष को अपने प्रयत्न में सफल होते हुए चित्रित करता है । स्पष्ट ही हमारा आशय यहाँ होटल मैनेजर के आचरण से है । लेखक की यथार्थ-दृष्टि यहाँ क्रूर व घृण्य के प्रति हमारे मन में जुगुप्सा का भाव जगाती है और अन्याय से जूझने की शक्ति उभारती है । एक ओर पगली डबल निमोनिया की शिकार होकर मृत्यु के निकट पहुँचती है, दूसरी ओर गरीब नौकर का वेतन मारकर होटल मैनेजर भागता है । इन दोनों घटनाओं का वैसे परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है, पर लेखक पगली की मरणासन्न स्थिति से जगे हुए करुण-भाव को नेपथ्य में डालकर और प्रत्यक्ष में मैनेजर के शोषण को दर्शाकर जैसे भीतर घुमड़ते हुए दुःख को दृप्त विद्रोह की शक्ति दे देता है । वैसे यथार्थ की सम्पूर्णता इन दोनों पक्षों को साथ रखने से ही प्रकट हो सकती है । केवल दुःख, यातना, कष्ट और पीड़ाएँ ही यथार्थ के विषय नहीं हैं, इनके साथ-साथ शोषण, अत्याचार, अनाचार भी उसके अपरिहार्य अग हैं । निराला ने दोनों पहलुओं को साथ-साथ रखकर एक तो अपनी व्यापक दृष्टि का परिचय दिया है, दूसरे दोनों में कार्य-कारण संगति की भी वड़ी ही कलात्मक व्यंजना की है ।

'देवी' का कलेवर छोटा है, पर उसका व्यंग्य प्रखर व व्यापक रूप में झकझोरने वाला है । सन् '३३ के आसपास ऐसे साहसिक प्रयोग को लेकर साहित्य-क्षेत्र में आना, जबकि कविता में छायावाद और गद्य में आदर्शवाद का बोलबाला था, निराला जैसे समर्थ लेखक का ही कार्य था । भविष्य में जो प्रगतिवादी ढँग की रचनाएँ बड़ी संख्या में लिखी जाने लगीं, निराला की 'देवी' ने उनके लिए अपने यथार्थवाद के माध्यम से सशक्त प्रेरणा का ऐतिहासिक कार्य किया है ।

'चतुरी चमार' का यथार्थवाद—'देवी' के बाद निराला ने 'चतुरी चमार' की रचना की । 'चतुरी चमार' में वे 'देवी' की अपेक्षा अधिक आशावान्, अधिक संघर्षशील और अधिक जीवन्त चरित्र की सृष्टि कर सके हैं । पगली और चतुरी के चरित्रों की तुलना से हमारे इस कथन की पुष्टि हो सकती है । पगली यदि अपनी हीन दशा में निष्क्रिय रहकर पाठकों के मन में अपने प्रति करुणा और कारण रूप सामाजिक व्यवस्था के प्रति अशक्त आक्रोश जगाकर रह जाती है, तो चतुरी दूसरी ओर अपने शूद्रत्व की लाचारी में बंधा होने पर भी अपनी सीमाओं को तोड़ने के लिए भरसक प्रयत्न करने के कारण शक्ति और विद्रोह के भाव जगाने में सफल होता है । पगली यदि नियति की मार सहते समय का एक विवश क्रन्दन है, तो चतुरी प्रतिरोध के लिए उठने वाली दृप्त हुंकार है ।

'चतुरी चमार' का यथार्थवाद एक ओर भारतीय समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था

की उपयोगिता पर प्रश्नचिह्न लगाता है, तो दूसरी ओर शूद्रत्व मेटने के लिए तत्पर शोषित-वर्ग के उत्थित स्वाभिमान की ओर भी संकेत करता है। चतुरी का चरित्र इन दोनों पक्षों का प्रतिनिधि चरित्र है। उसकी सहिष्णुता, उसका विश्वास और उसकी मूक कर्मठता यदि शूद्रत्व के बद्धमूल प्रभावों का निदर्शन करती है तो उसका जाग्रत विवेक, महत्त्वाकांक्षा और संघर्ष करने की शक्ति उसमें जगी हुई नवीन मानवता की पुकार का परिचय हमें देती है। निराला का मानवतावादी दृष्टिकोण शूद्रों के प्रति सवर्णों के द्वारा किये हुए अत्याचारों की खुली निन्दा करता है। अपनी अन्य कृतियों में भी प्रसंग आने पर उन्होंने सवर्णों के दबाव से पीड़ित इस वर्ग का दर्द पहचाना है और उसे अपनी कठोर टिप्पणियों सहित व्यक्त किया है। 'कुल्ली भाट' में एक स्थान पर इतिहास के व्यापक सन्दर्भ में शूद्रों का जो सर्वकालिक शोषण हुआ इस विषय में उनके विचार द्रष्टव्य हैं—"ये पुश्त-दर-पुश्त से सम्मान देकर नत-मस्तक हो संसार से चले गये हैं। संसार की सभ्यता के इतिहास में इनका स्थान नहीं, ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भारद्वाज, कपिल, कणाद थे; रामायण, महाभारत इनकी कृतियाँ हैं; अर्थशास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं; अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्द्धन, पृथ्वीराज इनके वंश के हैं। फिर भी ये थे, और हैं।"[1] चतुरी भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी से इस सम्मान से वंचित होने वाला एक अभागा व्यक्ति है। उसकी हीन दशा का सबसे बड़ा प्रमाण वह दृश्य है जिसमें उसके सत्रह-वर्षीय लड़के अर्जुन पर लेखक के नौ-दस वर्ष के चिरंजीव अपना प्रभुत्व जताते हैं। वस्तुतः यह प्रसंग अपने में इतना सहज और निर्दोष है कि सवर्णों का आभिजात्य और शूद्रों की हीनता इससे ठीक-ठीक प्रकट हो जाती है। लेखक के चिरंजीव अर्जुन से 'ष' वर्ण का शुद्ध उच्चारण करने का असफल प्रयत्न करा रहे हैं और अर्जुन की असफलता पर खिलखिलाकर हँस रहे हैं। इतना ही नहीं, बीच-बीच में डपटते भी हैं —"गड़ेस-गड़ास करता है—साफ नहीं कह पाता—क्यों रे, रोज़ दातौन करता है ?" दूसरी डाँट इससे भी अधिक वज़नी है—"बोलता है, या लगाऊँ झापड़। नहा लूँगा, गरमी तो है।"[2] इस दृश्य का एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी लेखक स्वयं है। उसकी इस पर टिप्पणी देखिये—"मेरे चिरंजीव उसे उसी तरह देख रहे थे, जैसे गोरे कालों को देखते हैं।"[3]

बालकों में भी अनजाने ही ब्राह्मण की श्रेष्ठता और शूद्र की हीनता का तत्त्व प्रवेश हो जाता है। आखिर इस सबका निदान क्या है ? लेखक ने इस प्रश्न पर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्राचीन काल से चली आ रही इस वर्ण-व्यवस्था के बद्धमूल संस्कारों के कारण "चमार दबेंगे और ब्राह्मण दबायेंगे। दवा है, दोनों की जड़ें मार दी जाएँ, पर यह सहज-साध्य नहीं।"[4]

---

१. 'कुल्ली भाट', निराला, पाँचवाँ सं०, पृ० ६३।
२. 'चतुरी चमार', निराला, कि० म० प्र०, पृ० १३-१४।
३. वही, पृ० १३।
४. वही, पृ० ११।

इस शूद्रत्व की गहरी जड़ों का पोषण अज्ञान की खुराक से होता है। जब तक मनुष्य अपनी हस्ती से अनजान रहता है तभी तक उसमें हीन भावना शेष रहती है। जिस क्षण से उसे अपने अधिकारों का, अपनी गरिमा का बोध शुरू होता है उसी क्षण से उसकी हीनता क्षीण होने लगती है। वर्तमान शती के तीसरे दशक में देश भर में जो जन-आन्दोलन जगा, उसने दलितों व शोषितों में आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न की। चतुरी सरीखे व्यक्तियों में भी अपने अधिकारों की चेतना जगी और उसी अनुपात में उसका शूद्रत्व नष्ट हुआ। डॉ० रामविलास शर्मा इस परिवर्तन को लक्ष्य करते हुए कहते हैं—"जिस दिन चतुरी जैसे साधारण व्यक्ति को अपने अधिकार का, अपने मनुष्यत्व का ज्ञान हो जाता है उस दिन उसमें, असाधारण शक्ति आ जाती है। शूद्रत्व का कैसे अन्त होता है, निरालाजी ने यह तत्त्व चतुरी के जीवन से समझा दिया। अब्दुल अर्ज़ में जूतों के दर्ज न होने पर चतुरी को जो खुशी होती है, वह इसलिए कि उसकी दास-भावना मिट रही है।"[१]

चतुरी की स्थिति गाँव के एक साधारण श्रमिक की स्थिति है, जो दिन-भर के कठोर परिश्रम से ही भोजन जुटा पाता है। पर उस समय की ज़मींदारी-प्रथा में ऐसे निरीह व्यक्ति भी शोषण के शिकार होते थे। उसके गाँव—गढ़ाकोला—के किसानों पर ज़मींदार ने झूठे मुकदमे चलाये और अपने प्रभाव से उन पर डिग्री तक करवा दी। डिग्री से आंतकित होकर किसानों का संगठन टूटा और चतुरी अकेला रह गया। उसने ऐसी स्थिति में भी अस्त्र न डाले। ज़मींदार की विजय पहले से ही अनुमानित की जा सकती थी, पर चतुरी ने अपनी विपन्नता में भी शक्ति नहीं खोई। उसने पैसे के अभाव में सत्तू बाँधकर, रेल छोड़कर, पैदल दस कोस उन्नाव चलकर और पैदल ही लौटकर अपनी पेशियाँ पूरी कीं।

चतुरी की अन्याय से लड़ने की कटिबद्धता उसमें आई हुई प्रगतिशीलता की सूचना देती है। वह अपनी पराजय में भी इसीलिए प्रसन्न है कि उसने अपने ऊपर होने वाले शोषण की वास्तविकता को जान लिया है। 'चतुरी चमार' का कथ्य अपने में व्यापक सामाजिकता का आशय लिये हुए है। उसमें पिछली पीढ़ी का शोषण है तो आने वाली पीढ़ी की आशा भी है, ज़मींदारों का अन्याय है तो किसानों का संघर्ष भी है, कुल मिलाकर वह समाज के जीवित यथार्थ की वह झलक हमारे सामने रखता है जिसमें कि एक ही बिन्दु से अतीत और आगत प्रतिबिम्बित हो उठते हैं। वह बहुत-कुछ 'गोदान' के होरी से मिलता है जो कि जीवन-संग्राम में हारकर भी विजयी रहा है।

'चतुरी चमार' का यथार्थवाद चरस की पीनक में निर्गुण के पद गाकर रात काट देने वाले छोटी जाति के लोगों की अभावों से भरी ज़िन्दगी की मस्ती साकार कर देता है, गोश्त खाने के कारण लेखक के घड़े का पानी छोड़ने वाले गुरुमुख ब्राह्मण समाज की रूढ़िवादिता को प्रत्यक्ष करता है, और सबसे ऊपर वह लेखक के अलमस्त, फक्कड़ और रूढ़िभंजक व्यक्तित्व की झलक हमें देता है। सही बात तो यह है कि

---

१. 'निराला', डॉ० रामविलास शर्मा, पाँचवाँ सं०, पृ० १३।

निराला के व्यक्तित्व में भीतर-बाहर का जो खुलापन है, सीधी और खरी बात करने की जो शक्ति है; विनय और शिष्टता के पर्दों में छिपे हुए झूठ को नंगा करने का जो साहस है, उसी से उनको प्रस्तुत कृति यथार्थवादी साहित्य का आदर्श बन सकी है। कल्पना-सूत्र जोड़कर रची जाने वाली कृति, यथार्थ की सीधी प्रेरणा से लिखी जाने वाली कृति की तुलना में अधिक अलंकृत और कलात्मक हो सकती है, पर वह उस जैसी प्रखर और प्रेरक नहीं हो सकती। निराला ने अपनी इस रचना के द्वारा नये साहित्यिक आन्दोलन प्रगतिवाद को उभारा और पुष्ट किया है।

'बिल्लेसुर बकरिहा' का यथार्थवाद—निराला के रेखाचित्रों में 'बिल्लेसुर बकरिहा' बिल्कुल भिन्न प्रकार का है—उसकी यह भिन्नता न केवल उसके सुगुम्फित शिल्प के कारण है, बल्कि अपने प्रतिपाद्य विषय से व्यंजित होने वाले आशय में भी वह अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और अधिक तात्विक है। व्यक्ति बिल्लेसुर की गूढ़ प्रकृति के अनुरूप हो मानो सम्पूर्ण रचना का कथ्य भी जैसे गूढ़ हो गया है। बिल्लेसुर अपने सुख-दुख का एकान्त साक्षी है, बाहर-भीतर से सर्वथा एकाकी रहकर उसने अनुभवों की पंचाग्नि तपी है और स्वयमेव निष्कर्ष निकाले हैं। उसके जीवन का अकेलापन जैसे इस सत्य की पुष्टि करता है कि प्रत्येक व्यक्ति की सफलता-विफलता, हर्ष-विषाद और जय-पराजय उसके बिल्कुल निजी विषय हैं, इनमें कोई अन्य उसका सहभागी नहीं हो सकता। अतएव सहानुभूति की कामना में भटकना आत्म-प्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। बिल्लेसुर इस सत्य को अपने घट में उतारकर ही जीवन-पथ पर अग्रसर हुआ। इस यथार्थबोध को अक्षरशः पालन करने में उससे कभी चूक नहीं हुई। यही कारण है कि उसकी विचारणा में कभी ऊहापोह उत्पन्न नहीं हुआ। पर इस सबका अभिप्राय यह नहीं है वह आत्म-केन्द्रित व्यक्ति है। इतने अकेले और निस्सहाय रहने पर भी उसमें सामाजिकता का सजग बोध है। डॉ० नगेन्द्र इस तथ्य का विश्लेषण करते हुए कहते हैं—"इसीलिए जीवन में एकाकी होकर भी वह व्यक्तिवादी नहीं है। गाँव के उपहास और उपेक्षा का पात्र होकर भी वह यही सोचता है :

"क्यों एक दूसरे के लिए नहीं खड़ा होता ! जवाब कभी कुछ नहीं मिला। फिर भी जान रहते काम करना पड़ता है, यह सच है।" बिल्लेसुर के व्यक्तित्व का मूल्यांकन लेखक ने स्वयं ही बड़े सुन्दर और स्पष्ट शब्दों में किया है। सुनिए :

"हमारे सुकरात के ज़बान न थी, पर इसकी फ़िलासफ़ी लचर न थी। सिर्फ़ कोई इसकी सुनता न था; इसे भूल-भलैया से निकलने का रास्ता नहीं दिखा, इसलिए यह भटकता रहा।"[1]

बिल्लेसुर की सफलता का रहस्य उसके यथार्थवाद में है—ऐसे यथार्थवाद में, जिसमें लाभ की दृष्टि सर्वोपरि रहती है। निष्प्रयोजन और अनुपयोगी उलझावों के लिए उसके जीवन में कोई स्थान नहीं है। समय की प्रत्येक और जीवन की हर साँस

---

१. 'विचार और विश्लेषण', डॉ० नगेन्द्र, द्वि० सं०, पृ० १५६।

का उपयोग वह अपने निहित लाभ के लिए खर्च करता है । उसकी यह अटूट लगन और लक्ष्य-प्राप्ति की अपवादहीन निष्ठा उसे प्रगति-पथ पर अग्रसर रखती है। निराला शायद अवध प्रान्त के इस साधारण किसान में इसी चारित्रिक दृढ़ता और कठोर यथार्थवादिता का सन्धान कर उसे अपने वर्ग का प्रतीक-चरित्र बना देते हैं । भारतीय किसान की यह जातिगत विशेषता है कि अनेक विपत्तियों में भी वह अपना धैर्य नहीं खोता और अपने निश्चयों की प्राप्तियों में सतत् संघर्ष करता रहता है । पर साथ ही यथार्थवाद का एक दूसरा पहलू भी है जिसके कारण वह अपने इस धैर्य और शक्ति का अपेक्षित लाभ नहीं उठा पाता । वह दूसरा पहलू है उसके अन्धविश्वासों में, उसकी क्षुद्र ईर्ष्या में, उसकी खण्डित शक्तियों में, उसके छल-प्रपंचों में और उसके सामाजिक जीवन के बिखराव में । इस पक्ष का निदर्शन बिल्लेसुर बकरिहा के सम्पूर्ण कृतित्व में है । केन्द्रीय चरित्र—बिल्लेसुर—के चारों ओर जो सामाजिक सम्बन्धों का परिवेश है, उसके साथ जो उस परिवेश के संघात हैं, उनमें यह दूसरा पक्ष प्रकट हुआ है ।

बिल्लेसुर में भी अन्धविश्वास के वे सब लक्षण देखने को मिलते हैं जो अनपढ़ किसान में सहज ही पाये जाते हैं । जगन्नाथजी के दर्शन के दौरान बिल्लेसुर को जो स्वप्न हुआ था उस पर उसने अक्षरशः विश्वास किया और जमादार सत्तीदीन से गुरुमंत्र ले के ही माने । बिल्लेसुर स्वप्न का वर्णन इस प्रकार करता है—"मैं सोता था, सोता था, देखा मुस्स से एक आग जल उठी, उसमें तीन मुँह वाला एक आदमी बैठा था । उसने कहा, बिल्लेसुर, तू गरीब ब्राह्मण है, सताया हुआ है, लेकिन घबड़ा मत, तू जिसके साथ आया है, उसकी सेवा कर, उनसे यहीं गुरुमन्त्र लेले, तू दूधों-पूतों फलेगा । फिर देखता हूँ तो कहीं कुछ नहीं ।"[1] इसी प्रकार बकरियों की कल्याण-कामना के लिए उसने महावीरजी के मन्दिर में जाना उचित समझा ।…"महावीरजी के पैर छूकर, मन-ही-मन उसने कुछ कहा और फिर बकरियों का पीछा पकड़ा ।"[2] ऐसे ही अन्धविश्वास का उदाहरण बिल्लेसुर के बड़े भाई मन्नी के जीवन में भी देखने को मिलता है । विवाह की चिन्ता में रहने वाले तीस-वर्षीय मन्नी ने भी मांगलिक प्रस्थान से पूर्व अपने इष्टदेव की अभ्यर्थना आवश्यक समझी । मन्नी के खेतों के पास एक झाड़ी थी । विश्वास किया जाता था कि उसमें देवता झाड़खण्डेश्वर रहते हैं । "एक दिन शाम को मन्नी धूप-दीप, अक्षत-चन्दन, फूल-फल-जल लेकर गये और उकड़ूँ बैठकर उनकी पूजा करते न जाने क्या-क्या कहते रहे । फिर लौटकर प्रसाद पाकर लेटे और पहर रात रहते पुरवा की तरफ़ चल दिये ।"[3]

अन्धविश्वास का एक रूप शकुन पर आस्था रखने में भी देखा जाता है । बिल्लेसुर शुभ शकुन विचारकर ही महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए प्रस्थान करता था ।

---

१. 'बिल्लेसुर बकरिहा', निराला, पृ० २४ ।

२. वही, पृ० ३३ ।

३. वही, पृ० ४ ।

विवाह की बात पक्की करने के लिए जाते समय उसका शकुन-विचार देखिये—"दरवाज़े से निकलकर मकान में ताला लगाया और दोनों नथनों में कौन चल रहा है, दबाकर देखकर, उसी जगह दायाँ पैर तीन दफ़े दे-दे मारा, और दूध वाली हण्डी उठाकर निगाह नीची किये गम्भीरता से चले। थोड़ी दूर पर भरा घड़ा मिला। बिल्लेसुर खुश हो गये।..."[१] इन उदाहरणों से ग्रामीण जनता के विश्वासों का परिचय मिलता है। निराला ने इन विश्वासों का यथातथ्य वर्णन करके अपने चरित्रों को अधिक सजीव बनाया है।

लेखक ने ग्रामीण समाज की ईर्ष्या और असूयावृत्ति के उद्घाटन में भी अपनी यथार्थवादी दृष्टि का परिचय दिया है। किसी की उन्नति देखकर उससे डाह रखना और उसमें विघ्न पहुँचाना देहाती समाज की एक बड़ी कमी है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' में त्रिलोचन और दीनानाथ ऐसे ही चरित्र हैं जो बिल्लेसुर की प्रगति में बाधा डालकर अपनी-अपनी मनोवृत्ति का परिचय देते हैं। एक छल-प्रपंच रचने में निपुण है तो दूसरा हानि पहुँचाने में कुशल। दोनों अपनी-अपनी करतूतों से ग्रामीण समाज के दोषों के प्रतिनिधि हैं। गाँव का सामाजिक वायुमण्डल प्राय: ऐसे तत्त्वों को अनिवार्य रूप से अपने में समेटे रखता है। बिल्लेसुर को लेकर प्रचार पाने वाले इस प्रवाद में कि उसके पास सोने की कई ईंटें दबी पड़ी हैं, उस समाज की मनोदशा की झलक मिल जाती है। लेखक ने सावधानी के साथ अपने गहरे अनुभव व सूक्ष्म अवलोकन से ग्रामीण जीवन के मर्म को पकड़ा है और उसे समर्थ शब्दों में प्रकट किया है। निराला की इस विशेषता को डॉ० रामविलास शर्मा इन शब्दों में निरूपित करते हैं—"निराला का सामाजिक जीवन शहर में केन्द्रित नहीं है। उसकी शाखा-प्रशाखाएं दूर-दूर तक लखनऊ, उन्नाव और रायबरेली में फैली हुई हैं,......शहर के व्यवसायियों, छोटे-मोटे दूकानदारों, विद्यार्थियों, शिक्षकों आदि को वह इतनी अच्छी तरह नहीं जानते, जितनी अच्छी तरह वह छोटे-बड़े ज़मींदारों, पण्डे-पुरोहितों, गंगापुत्रों, कचहरी के कीड़ों, खेतिहर किसानों और शूद्रों को जानते हैं।"[२] इस वर्ग से उनका निकट का परिचय था, इसीलिए उसके चित्रण में उनको इतनी सफलता मिली। यथार्थ-वादी लेखक में एक प्रकार का नैतिक साहस होना चाहिए, जिसके बल पर सत्य के प्रकाशन में वह द्विधाग्रस्त न हो सके। निराला अपने में इस नैतिक साहस के प्रतीक थे। अतएव जहाँ कहीं भी अवसर आया उन्होंने खुले शब्दों में उसे प्रकट किया। निराला के सभी रेखाचित्रों में यह साफ़गोई, यह खुलापन देखने को मिलता है। विशेष रूप से उन कृतियों में जिनमें वे स्वयं पात्र बनकर आये हैं, यह गुण अधिक देखने को मिलता है—'कुल्ली भाट' और 'चतुरी चमार' में खासतौर से, 'बिल्लेसुर बकरिहा' में वे पात्र नहीं हैं, पर जहाँ अवसर आया है वहाँ उन्होंने बिना किसी झिझक के प्रसंग का निर्वाह किया है। जमादार सत्तीदीन की युवती स्त्री सन्तान-प्राप्ति

---

१. बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, पृ० ७६।
२. 'निराला', डॉ० रामविलास शर्मा, तीसरा सं०, पृ० २१।

के लिए व्रत, अनुष्ठान और तीर्थाटन सभी कुछ कर चुकी, पर सब निष्फल । लेखक के शब्दों में, "जब एक साल तक पुत्र-विषय में बाबा जगन्नाथजी ने कृपा न की तब सत्तीदीन की स्त्री का देवता पर कोप चढ़ा और वे दिव्य शक्ति को छोड़कर मनुष्य-शक्ति की पक्षपातिनी बन गईं; यथार्थवादी लेखक की तरह । बिल्लेसुर को बड़ी ग्लानि हुई ।......गुरुआइन का यथार्थवाद भी बिल्लेसुर को खला ।......"[1]

यहाँ लेखक ने अपेक्षित सूचना ठीक-ठीक और नपे-तुले शब्दों में दे दी । अधिक विस्तार देने पर एक तो वह व्यंजना न आ पाती जो इन शब्दों से आई है और दूसरे उसके भद्दा होने की भी सम्भावना थी । लेखक ने चरित्र, परिस्थिति, घटना और वातावरण सभी के प्रति तटस्थता बरती है, अपनी सहानुभूति को अनुशासन में रखा है । फलत: अभिव्यक्ति में भी एक प्रकार का खरापन आ गया है और भाषा संयत हो गई है । यथार्थ के यथातथ्य वर्णन में इस गुण से ही सफलता मिल सकती है, इसके अभाव में नहीं ।

'बिल्लेसुर बकरिहा' में निराला व्यंग्य-लेखक के रूप में नहीं दीखते, यहाँ तो वे हास्य-स्रष्टा ही नज़र आते हैं । इतर रेखाचित्रों में यह बात देखने को नहीं मिलती । इस अन्तर का स्पष्ट प्रभाव कथ्य के संप्रेषण-व्यापार पर पड़ा है । व्यंग्य में निहितार्थ अधिक चुभता हुआ होने के कारण जल्दी पकड़ में आ जाता है, पर हास्य में स्थिति इससे भिन्न होती है । वहाँ तो कथ्य हँसी की परतों में घुला हुआ रहता है । उसके बिखरे हुए सूत्रों को जोड़कर संश्लिष्ट रूप देने से ही वह पहचाना जा सकता है । प्रस्तुत कृति के कथ्य को ऊपर की पंक्तियों में इसीलिए गूढ़ कहा गया है । हिन्दी-साहित्य में भारतीय किसान की इतनी प्रामाणिक तस्वीर केवल प्रेमचन्द की रचनाओं में देखने को मिलती है । 'बिल्लेसुर बकरिहा' का लेखक प्रेमचन्द की परम्परा को काफी आगे ले जाता है ।

'कुल्लीभाट' का यथार्थवाद—'कुल्लीभाट' में निराला अप्रतिभ व्यंग्यकार और उत्कट साहसी लेखक के रूप में नज़र आते हैं । उनकी यह रचना अपने मर्मवेधी व्यंग्य के कारण न केवल हिन्दी-साहित्य में, वरन् उनकी अन्य कृतियों—'देवी', 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा'—में भी सर्वोपरि स्थान रखती है । इसका एक कारण है—और वह यह है कि इसमें, रूढ़ियों का उग्र विरोधी, सत्य पर से नकली कलई उतारने वाला, भीतर-बाहर से सपाट एक जैसा खरी बात बिना हिचक के कहने वाला विद्रोही लेखक निराला स्वयं एक प्रधान पात्र बनकर आया है । यथार्थवादी लेखक के हाथ में व्यंग्य का दुधारा अस्त्र होता है, जिसके प्रयोग से वह अपना रास्ता साफ़ करता है, ताकि सत्य की निर्बाध प्रतिष्ठा हो सके । निराला ने भी अपने इस अस्त्र के प्रहार से अन्धश्रद्धा की जड़ें हिलाई हैं और सड़ी-गली रूढ़ियों पर प्रबल आक्रमण किये हैं ।

---

१. 'बिल्लेसुर बकरिहा', निराला, दूसरा सं०, पृ० २६-२७ ।

निराला ने सबसे पहला आक्रमण जीवन-चरित लिखने वाले तथाकथित महापुरुषों पर किया है। ये लोग जीवन कम और चरित और अधिक लिखते हैं। महापुरुष के क्या लक्षण होते हैं, यह निराला तुलसीदास और अकबर की तुलना से स्पष्ट करते हैं—"···तुलसीदास पुरुष थे, महापुरुष नहीं; महापुरुष अकबर था—दीन-ए-इलाही चलाया, हर क़ौम की बेटी ब्याही, चेले बनाये।"[१] अर्थात् महापुरुष वह है जो आडम्बर रचकर गुरुडम चलाता है। निराला महापुरुष का चरित लिखने की अपेक्षा कुल्ली का चरित इसलिए लिखते हैं क्योंकि "जीवन-चरित जैसे आदमियों के बने और बिगड़े, कुल्लीभाट ऐसे आदमी न थे।"[२] कुल्ली का स्मरण लेखक को उस भूले हुए अतीत में ले गया जब इन्होंने सोलहवाँ साल पार किया था। तब लेखक की आँख में बंगाल का पानी था, अन्य सभी देश जंगल या रेगिस्तान लगते थे। बंगाली ठाट की सजधज के साथ लेखक ने ससुराल की ओर एक भरी दोपहरी में प्रस्थान किया तो लू के थपेड़ों ने लेखक को "वह प्रकाश दिखाया कि मोह दूर हो गया। लेकिन व्यक्ति-भेद है; रवि बाबू को आरामकुर्सी पर दिखा, हजरत मूसा को पहाड़ पर, मुझे गलियारे में, लू विरोध करती हुई कह रही थी—"अब ज्ञान हो गया है, घर लौट जाओ।" फिर भी पैर पीछे नहीं पड़े; बंगाल की वीरता और प्रेमाशक्ति बैक कर रही थी।"[३] इस उद्धरण में लेखक ने अपने ही ऊपर व्यंग्य किया है। अपनी ही हँसी उड़ाने में भी निराला दो डग आगे रहते हैं। ध्यान रहे कि 'देवी' में भी लेखक ने अपने छायावादी कवि-रूप पर व्यंग्य किया था। व्यंग्य की मार वस्तुतः थोथे मूल्यों, कोरे आदर्शवाद, छूँछी भावुकता और व्यर्थ के अहंकार और भावुक दुराग्रहों पर होती है, सम्बद्ध व्यक्ति तो केवल निमित्त-भर होते हैं।

निराला में बचपन से ही सामाजिक रूढ़ियों के प्रति अवज्ञा का भाव था। जिन रूढ़ियों के सम्मुख साधारण व्यक्ति नतशिर हो जाता है, निराला उन्हें तोड़ते हुए वीरत्व का अनुभव करते हैं। जनेऊ होने के बाद पतुरिया के लड़कों के हाथ पानी पीना जातिच्युत होने के लिए एक बड़ा सबूत था। आशा की जाती थी कि निराला भी जनेऊ के बाद इनके हाथ का पानी न पियेंगे। पर निराला ने खुलेआम पानी पीकर रूढ़ि को तोड़ा और इसमें वीरता का-सा अनुभव किया। लेखक के शब्दों में—"तीसरे या चौथे दिन पं० फ़तहबहादुर दुबे कुएँ पर नहाने का डौल कर रहे थे, एकाएक मैं पहुँचा। मुझे देखकर मुस्कराये। मेरे दिल में जैसे तेज़ तीर चुभा। बड़ा अपमान मालूम दिया। मैंने उनके पास पहुँचकर कहा—'भैया, पानी पिला दीजिये।" भैया प्रसन्न हो गये। डोल से लोटे में पानी लेकर मुझे पिलाने लगे। पिलाते वक़्त उन्हें गर्व का अनुभव हो रहा था। मुझे भी खुशी थी, जैसे कोई किला तोड़ा हो।"[४] एक

१. 'कुल्ली-भाट', निराला, पाँ० सं०, पृ० १०।
२. वही, पृ० १२।
३. वही, पृ० १८।
४. वही, पृ० ३६-३७।

आठ साल के बालक के मन में सामाजिक रूढ़ि को तोड़ने के कारण गर्व की अनुभूति का जागना इस बात का द्योतक है कि आरम्भ से ही उसकी मानसिक वृत्तियों का रुझान एक विशेष दिशा में सक्रिय था। निश्चय ही यह दिशा आदर्शों के कमल-वन की ओर नहीं ले जाती, बल्कि इसके विपरीत वह यथार्थ के उस अग्नि-पथ में डालती है जहाँ ज्वालाओं को भी चन्दन समझना पड़ता है। परिपक्वता प्राप्त करने पर यह मानसिक रुझान एक ऐसे व्यक्तित्व में परिणत हो गया है जो अपने जीवन-काल में ही अपनी घोर यथार्थवादिता के कारण निजंधरी नायक का-सा रूप ले बैठा।

और हो भी क्यों न? 'कुल्लीभाट' के अन्तर्साक्ष्य के आधार पर ही निराला के बीहड़ व्यक्तित्व में ऐसे अद्भुत प्रसंग सन्निविष्ट दीखते हैं, जिनमें से तथाकथित किंवदन्तियों के प्रचार पाने की पर्याप्त गुंजाइश है। निराला इसमें ऐसे भावुक प्रेमी पति हैं जो ससुराल के आँगन में लगे चिलबिल के पेड़ से अनुमान लगाते हैं कि उनकी नवोढा पत्नी सावन में इस पेड़ पर झूलते हुए गीतों में उन्हीं को लक्ष्य बनाती हुई गाती होगी, उन्हें उसके पद-निक्षेप में संसार के समस्त छंदों को परास्त करने वाला संगीत सुनाई पड़ता है, वही प्रेमिक अवसर आने पर पत्नी के बालों से आने वाली कड़वे तेल की चीकट गंध और उसकी सहवास की इच्छा की ओर इशारा करने से भी नहीं चूकता। ससुराल में भी निराला का व्यवहार शालीन और मृदुल होने की अपेक्षा खुला हुआ और कठोर ही दिखाई पड़ता है। उनके व्यवहार का यह खुलापन उनसे बचपन में पिता के द्वारा की हुई निष्ठुर ताड़ना का, पत्नी और सासुजी की कटूक्तियों का, राजा साहब के कूट व्यवहार का, कुल्ली की चतुराई का और सबसे अधिक अपनी भूलों का उभरा हुआ वर्णन कराता है। इस सबके मूल में निराला की यथार्थवादी दृष्टि काम करती है। ऊपर की पंक्तियों में निराला के बहुचर्चित व्यक्तित्व का उल्लेख हुआ है। तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो उनमें कोई अद्भुत विचित्रता नहीं थी, पर हमारा वर्तमान सामाजिक जीवन भीतर से इतना खोखला है, झूठ और प्रदर्शन में वह इतना रचा हुआ है कि सत्य के पक्षधर को वह विचित्र और अद्भुत समझने लगता है। निराला मानों अपने व्यक्तित्व में हमारे सामाजिक जीवन के ऊपर एक बड़े व्यंग्य थे।

'कुल्लीभाट' का यथार्थवाद निराला के निजी जीवन-प्रसंगों में कुल्ली के चरित्र में और लेखक के दृष्टिकोण में अनुस्यूत है। निराला के जीवन-प्रसंगों में आये हुए यथार्थवाद की ऊपर कुछ चर्चा हो गई है, अब यहाँ कुल्ली के चरित्र पर विचार कर लेना भी अनुपयुक्त न होगा। कुल्ली के जीवन की कहानी आदर्शवाद के आकाशी सोपानों से यथार्थ के गहरे गर्त में उतरने की कहानी है। इक्के में घूमते हुए दिन काटने वाले रसिक कुल्ली और पर-हित-चिन्तन में नंगे सिर तीखी धूप में गाँव-गाँव पैदल डोलने वाले कुल्ली के ये दो रूप उनके इस उतार के दो छोर हैं। इन दोनों छोरों के बीच का अन्तराल उनके यथार्थवादी परिवर्तनों से भरा हुआ है।

कुल्ली में आये इन परिवर्तनों की सूचना देते हुए लेखक कहता है—"सविनय-अवज्ञा आन्दोलन समाप्त हो चुका था। अछूतोद्धार की समस्या थी। इसी समय

डलमऊ गया। कुल्ली की पूर्ण परिणति थी। राजनीति और सुधार दोनों के पूर्ण रूप थे।"[१] कुल्ली के विषयी और विलासी जीवन से हटकर अकस्मात राजनीतिक कार्यकर्ता और समाज-सुधारक की भूमिका में आने की सूचना इन्हीं पंक्तियों से हमें मिलती है। पृष्ठभूमि में अछूतोद्धार और सविनय-अवज्ञा आन्दोलन का उल्लेख करके लेखक कुल्ली के जीवन में आए हुए इस परिवर्तन के कारणों की ओर संकेत करता है। परन्तु मात्र इन्हीं सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों से ही यह परिवर्तन न हुआ होगा। ऐसा लगता है कि जिस विलासिता के चक्र में कुल्ली आरम्भ में फँसे रहे, उसी की जाति ने, अथवा उससे सम्बद्ध दूसरे अप्रिय अनुभवों ने उनसे यह पथ छुड़ाया होगा। जीवन के यथार्थपरक अनुभव ही व्यक्ति के जीवन में इतने बड़े मोड़ ला सकते हैं। कुल्ली भी अपने इसी कोटि के अनुभवों से भिन्न दिशा में चल पड़े।

कुल्ली इस भिन्न दिशा में चलकर बड़े साहसिक कार्य करते हैं। अपनी मुसलमान प्रेयसी को खुले रूप से अपने घर में बिठाकर वे धर्म और सम्प्रदाय के पक्षधरों की अवज्ञा करते हैं; बस्ती के अछूत बच्चों के लिए पाठशाला चलाकर और उन्हीं में काम करके जातिवाद का खण्डन करते हैं; कस्बे के अधिकारियों की खरी आलोचना कर उनकी अफसरी पर चोट करते हैं और इस सारे विरोध के लिए वे समाज के तथाकथित सम्भ्रान्त वर्ग से बहिष्कृत होते हैं। समाज का यह उच्च वर्ग कुल्ली के सभी सेवा-कार्यों पर अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार प्रकट करता है—"अछूत लड़कों को पढ़ाता है, इसलिए कि उसका एक दल हो; लोगों से सहानुभूति इसलिए नहीं पाता; हेकड़ी है; फिर मूर्ख है, वह क्या पढ़ायेगा ?—तीन किताब भले पढ़ा दे। ······ खुल्लमखुल्ला मुसलमानिन बिठाए है। उसे शुद्ध किया है, कहता है, अयोध्याजी जाने कहाँ ले जाकर गुरु मंत्र भी दिला आया है।"[२]

कुल्ली का इतना विरोध इसलिए होता है क्योंकि वह समाज के अवास्तविक विश्वासों और आदर्शों पर चोट करता है, आदर्शवाद और नैतिकता के नीचे दबी पड़ी असलियत को प्रकट कर देता है। लेखक को अपने विरोध का कारण बताते हुए कुल्ली कहता है—"भीतरी रहस्य का मैं जानकार हूँ, क्योंकि यहीं का रहने वाला हूँ। भंडा फोड़ देता हूँ। इसलिए सब चौंके रहते हैं। वह मेम है, सरकार की तरफ से नौकर है, लेकिन बच्चा जनाने जाती है, तो रुपया लेती है, और एक की जगह सद-बदरु; मैंने एक धोबिन को कहा, बुलाए और रुपया न दे, ज़्यादा बातचीत करे तो देखा जायेगा। धोबिन ने ऐसा ही किया। मेम साहब नाराज़ हो गईं। यही हाल मवेशी डॉक्टर का है।"[३]

कुल्ली में यथार्थवादी व्यक्ति का वही साहस है जो सत्य के प्रति निष्ठा रखने के कारण उसमें आ जाता है। वह निर्भीकता से अपनी बात कह सकता है और तीव्र

---

१. कुल्ली-भाट, निराला, पृ० ८७।
२. वही, पृ० ९३।
३. वही, पृ० ९६।

स्वर में पाखण्डियों को फटकार सकता है। उनकी मुसलमानिन प्रिया को दीक्षा देने वाले अयोध्या के गुरुजी को कुल्ली लिखते हैं—"......जब आप शुद्ध की हुई मुसलमानिन को नहीं ग्रहण कर सकते, तब आप गुरु नहीं ढोंगी हैं, आपने व्यापार खोल रखा है। आपमें हृदय का बल नहीं, आप एक नहीं सौ उलटी माला जपिये। हिन्दुओं ने बराबर समाज को धोखा दिया है।"[1] अपने अन्तिम दिनों में कुल्ली के मुख पर एक दिव्य भाव आ गया था, एक स्थिर शान्ति दीखने लगी थी। जैसे जीवन के गहरे अनुभवों ने उन्हें मानों भीतरी सत्य के प्रति जागरूक बना दिया था, इसीलिए उनमें तटस्थ, उदासीनता एक गहरी शान्ति दीखने लगी थी। लेखक को कुल्ली की गहरी उसांस से लगा, जैसे कह रहे हों—"संसार में साँस लेने का भी सुभीता नहीं, यहाँ बड़ी निष्ठुरता है; यहाँ निश्छल प्राणों पर ही लोग प्रहार करते हैं; केवल स्वार्थ है यहाँ, वह चाहे जन-सेवा हो, चाहे देश-सेवा; इस सेवा से लोग अपनी सेवा कराना चाहते हैं; किसान इसलिए कांग्रेस में आते हैं कि ज़मींदार की मारों से, सरकार के अन्याय से बचें और ज़मीन उनकी हो जाय; ग़रीब इसलिए तारीफ करते हैं कि उन्हें कुछ मिलता है। पर इतना ही क्या सब-कुछ है? क्या इससे जीवन को शान्ति मिलती है?"[2]

'कुल्लीभाट' के चरित-नायक में लेखक ने एक गतिशील चरित्र की रचना की है, जो आरम्भ में समाज की ह्रासोन्मुखी शक्तियों का प्रतीक है और अन्त में जाकर प्रगतिशील शक्तियों का नियामक बन जाता है। उसमें जैसे एक शक्ति नष्ट होती है और दूसरी जन्म लेती है। अपने चरित-नायक के इस बदले हुए रूप के प्रति भी निराला उतने ही संयत और अनासक्त हैं जितने कि उसके आरम्भिक रूप के प्रति थे। वे केवल चरित्र में आए हुए परिवर्तन को बिना अपनी सहानुभूति में रंगे ठीक-ठीक उतार देते हैं। अपने व्यंग्य की चोट वे यथावसर दोनों रूपों पर तत्परता से करते हैं। अपनी रचना के प्रति इतना निस्संग भाव सच्चा यथार्थवादी लेखक ही रख सकता है। निराला का वस्तून्मुखी दृष्टिकोण ही उन्हें यथार्थ-चित्रण की शक्ति देता है, जिसके कारण वे अपने पर, अपने चरित्रों पर खरी टीका कर सके हैं। 'कुल्लीभाट' का कृतित्व इस बात का साक्षी है।

निराला के रेखाचित्रों का पूर्ण विवेचन उनकी चित्रण-शैली, कला-विधान, भाषा-प्रयोग, जीवन-दृष्टि और साहित्यिक उत्तरदायित्व का परिचय देता है। गद्य की अन्य साहित्य-विधाओं की तुलना में वे 'रेखाचित्र' में ही सर्वाधिक सफल हुए हैं। कविता के क्षेत्र में उनका मुक्त छन्द और गद्य में रेखाचित्र उनके साहित्यकार को जीवित रखेगा। 'रेखाचित्र' तो मानों उनके लिए अभिव्यंजना की प्रकृत भूमि है। यही कारण है कि कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना के वही स्थल पाठक को मोहते हैं जिनमें 'रेखाचित्र' कला की झलक मिलती है। रेखाचित्रकार निराला हिन्दी गद्य-लेखन के इतिहास में एक महान् कलाकार के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे।

---

१. कुल्ली-भाट, निराला, पृ० ६८।

२. वही, पृ० १०७।

निराला के निबन्ध

सरला शुक्ल

महाप्राण निराला के व्यक्तित्व को निकट से जानने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला; किन्तु साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य में अंकित होता है इस दृष्टि से कविवर का स्वरूप-दर्शन उनके गीतों, कहानियों एवं उपन्यासों में किया जा सकता है; परन्तु उनके स्वभाव की अक्खड़ता, सत्यवादिता, स्पष्टोक्ति, सिद्धांतप्रियता एवं सर्वोपरि रसज्ञता एवं मृदुता के जितने दर्शन उनके निबन्धों में होते हैं, उतने अन्यत्र नहीं। निबन्ध व्यक्ति के चिंतन एवं भावात्मक अनुभूति का लिखित रूप है। निबन्ध आकार में लघु, सुसंगत एवं आत्मसम्पूर्ण रचना है। निबन्ध चाहे वर्णनात्मक हो, चाहे विचारात्मक या भावात्मक, लेखक उसमें अपना हृदय खोलकर रख देता है। वह अपनी अनुभूति या चिन्तन को निस्संकोच पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता है। लेखक और पाठक के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाला निबन्ध सबसे सरल और प्रशस्त मार्ग है। निबन्धकार उपदेशक के रूप में स्वयं को श्रोतागणों से पृथक् करके विधि-निर्माण का प्रयास नहीं करता। वह तो केवल अपने विचार और भावनाएँ उन्मुक्त भाव से अपने निबन्ध में ग्रथित करता है जिसकी युक्तियाँ और तर्क पाठक को अभिभूत करते हैं। निबन्ध में दुराव का कोई स्थान नहीं। निबन्ध में आपसी बातचीत का आनन्द मिलता है और एक सौजन्यपूर्ण घरेलू वातावरण का सृजन होता है।

निराला के निबन्धों में उपरोक्त सभी तत्त्व विद्यमान हैं। अपने निबन्धों के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं कहा है—"लेखों में अज्ञान, हेकड़ी, असाहित्यिकता के भी निदर्शन हैं, मैं चाहता तो छपते समय कुछ अंशों में उनकी नोकें मार देता, पर, मनुष्य ज्ञान नहीं, इसीलिए दुर्बलता की पहचान मैंने रहने दी। इसका दर्शन दुर्बलता न होकर सबलता भी हो सकता है, कारण उस भाषा, उस प्रकाशन का एक कारण भी तब निकलेगा।" लेखक के ये वाक्य उसके जीवन तथा साहित्य के प्रति सच्चाई के द्योतक हैं। निबन्धकार अपने विचारों को यथातथ्य रूप में प्रकट करना ही अभीष्ट समझता है। ऐसा करने में कुछ लेखक या नेता उसके विरोधी या आलोचक हो जायेंगे इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं, वह चिन्ता की सीमा से परे चिन्तन में तल्लीन एक ऐसा साधक है जिसकी साधना खुलकर जनता के समक्ष आती है और सहज ही

गृहीत होती है। लेखक स्वीकार करता है—''भारत में विचार-शुद्धि के लिए धन ही नहीं, समाज, शरीर और मन भी देना पड़ता है, तब विश्वमानवता की पहचान होती है। हमारे पीड़ित, अशिक्षित, पतित, निराश्रय, निरन्न मानवों का तभी उद्धार होगा, तभी भारत की भारती जाग्रत कही जाएगी, तभी उसकी अपनी विशेषता सर उठाएगी।''

'प्रबन्ध-प्रतिमा' लेखक के विचारात्मक निबन्धों का संग्रह है जिसमें राजनीतिक, साहित्यिक एवं समाज के बहुविध विकास एवं चिन्तन की झलक मिलती है। लेखों की सूची विषय-विविधता की द्योतक है। चरखा, गांधीजी से बातचीत, नेहरूजी से बातें, महर्षि दयानन्द सरस्वती और युगान्तर, नाटक-समस्या, अधिकार-समस्या, साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म, रचना-सौष्ठव, भाषा-विज्ञान, बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ, सामाजिक पराधीनता, विद्यापति और चण्डीदास, कविवर श्री चंडीदास, कवि गोविंददास की कुछ कविता, कला के विरह में जोशी-बंधु, हिन्दी साहित्य में उपन्यास, वर्तमान हिन्दू समाज, प्रांतीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद, मेरे गीत और कला, बंगाल के वैष्णव कवियों की शृंगार-वर्णना, हमारा समाज—कवि के बहुमुखी चिन्तन के परिचायक हैं। इन सभी निबंधों में लेखक के व्यक्तित्व की सिद्धांतमयता सम्मुख आती है। कहीं भी वह किसी राजनीतिक नेता का, साहित्यिक रचयिता का या सामाजिक परम्परा का इसलिए विरोध नहीं करता कि उससे उसका कुछ व्यक्तिगत हानि या लाभ है; प्रत्युत इसलिए कि उसका उससे सैद्धान्तिक विरोध है। किसी एक व्यक्ति के एक रूप या सिद्धान्त से उसका विरोध हो सकता है तो उसका दूसरा पक्ष कविवर को आकर्षित भी कर सकता है जिसकी वे भरपूर सराहना करते हैं।

निराला का निबन्ध 'गांधीजी से बातचीत' अपने निरालेपन में अद्वितीय है। भाषा एवं राजनीति का दार्शनिक विवेचन करते हुए उनकी भाषा सहज ही गम्भीर एवं व्यंग्य-वाचाल हो जाती है। ''साहित्य की स्वतन्त्रता कभी भी बाहरी उपकरण को बहुत ज्यादा साथ नहीं ले सकती। बाहरी वस्तु सापेक्षवाद की तरह रहे, लेकिन किसी की अपेक्षा में वही रहता है जो सत्तावाला है या सत्ता स्वयं अपेक्षा में रहती है जब बहिर्मुख होती है—हमारे यहाँ ज्ञान सापेक्ष नहीं, निरपेक्ष है और 'मृते ज्ञानान्न मुक्तिः' यह सदा सत्य है। इस मन से जाँच करने पर महात्माजी की कुल क्रियाएँ एक सापेक्षता लिये हुए हैं। वे जैसे स्वतन्त्रता के लिए लागू होती हैं वैसे ही महात्मा गांधी के व्यक्तित्व-निर्माण के लिए। उदाहरण में हिंदी को लें। हिंदी राष्ट्रभाषा है। यह आवाज गांधीजी की बुलन्द की हुई है............पाठक यह भी जानते हैं कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बतानेवाले गांधी, तिलक के मुकाबले सर उठाते हुए देश के सामने आने वाले गांधी हिन्दी के प्रश्न पर स्वयं बदल गये हैं। उनके इस एक आवाज़ उठाने के साथ तमाम हिन्दीभाषी उनके साथ हो गये। नेता को यही चाहिए ....जिन्होंने हिन्दी के द्वारा हिन्दीभाषी पन्द्रह करोड़ जनता की भावनाजन्य स्वतन्त्रता बात की बात में मार दी। लोग लट्ठ की तरह बकने लगे—हिन्दी राष्ट्र-

भाषा है............ । वस्तु और विषय की यही पराधीनता है, गांधीजी की यही स्वाधीनता ।

इन्दौर में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व करने के बाद गांधीजी १९३५-३६ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के फिर सभापति होते हैं । यहीं इन्दौर में महात्माजी ने एक आवाज़ मारी—"कौन है हिन्दी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जगदीशचन्द्र वसु, प्रफुल्लचन्द्र राय ?"

बाद में महात्माजी लखनऊ आये हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय का 'दरवाज़ा खोलने' और निरालाजी ने सोचा, 'चूँकि महात्माजी लखनऊ में टिके हुए थे, इसलिए पता लगाना लाज़िमी हो गया कि उन्होंने यह आवाज लगाई या आवाज़कशी की । .... लेकिन मेरे लिए उस समय महात्माजी रहस्यवाद के विषय हो गये, कहीं खोजे ही नहीं मिले । अन्ततः निरालाजी की महात्माजी से भेंट हुई । कुछ अंश उद्धृत हैं—"कमरे के भीतर जाने के साथ मेरी निगाह महात्माजी की आँखों पर पड़ी । देखा, पुतलियों में बड़ी चालाकी है......... ।"

निराला—सभापति के अभिभाषण में हिन्दी के साहित्य और साहित्यिकों के सम्बन्ध में जहाँ तक मुझे स्मरण है आपने एकाधिक बार पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का नाम सिर्फ लिया है । इसका हिन्दी के साहित्यिकों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, क्या आपने सोचा था ?

महात्माजी—मैं तो हिन्दी कुछ भी नहीं जानता ।

निराला—तो आपको क्या अधिकार है कि आप कहें कि हिन्दी में रवीन्द्रनाथ ठाकुर कौन हैं ?

महात्माजी—मेरे कहने का मतलब कुछ और था ।

निराला—यानी आप रवीन्द्रनाथ जैसा साहित्यिक हिन्दी में नहीं देखना चाहते, प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर का नाती या नोबुल पुरस्कार प्राप्त मनुष्य देखना चाहते हैं, यह ?

मैंने स्वस्थचित्त हो महात्माजी से कहा—बंगला मेरी वैसी ही मातृभाषा है, जैसी हिन्दी । रवीन्द्रनाथ का पूरा साहित्य मैंने पढ़ा है । मैं आपसे आधा घंटा समय चाहता हूँ, कुछ चीज चुनी हुई रवीन्द्रनाथ की सुनाऊँगा और कला का विवेचन करूँगा, साथ ही कुछ हिन्दी की चीजें सुनाऊँगा । महात्माजी—मेरे पास समय नहीं है ।

मैं हैरान होकर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति को देखता रहा, जो राजनीतिक रूप से देश के नेताओं को रास्ता बतलाता है, बेमतलब पहरों तकली चलाता है, प्रार्थना में मुर्दे गाने सुनता है, हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का सभापति है; लेकिन हिन्दी के कवि को आधा घंटा वक्त नहीं देता—अपरिणामदर्शी की तरह जो जी में आता है खुली सभा में कह जाता है, सामने बगलें झाँकता है ।"

एक साहित्यिक के दृष्टिकोण से निराला ने खुलकर महात्माजी की आलोचना की । वही निराला महात्माजी के निधन पर १३ दिन तक उपवास करते रहे और किसी को कानों-कान खबर नहीं । बहुत दिन बाद बनारस के किसी दैनिक में अपने

उपवास का समाचार पढ़कर वे खिन्न हो गये। "मैंने प्रचार के लिए उपवास नहीं किया है। मैंने इसलिए उपवास किया है कि हमारे राष्ट्रपिता को हमारे ही एक भाई ने गोली से मार डाला। इससे हम पर बहुत बड़ा कलंक लग गया है। इस बात का मुझे बड़ा दुख है, मैं इसका प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। मेरे खयाल से दुष्ट व्यक्ति की हत्या भी निंदनीय है, गांधीजी तो महान् संत और राष्ट्रसेवक थे। उन्हीं के कारण हमारे देश को आज़ादी मिली। वे हमारे राष्ट्रपिता थे।" कविवर का हृदय सत्य को सहज और निरपेक्ष भाव से ग्रहण करने की क्षमता रखता था, तभी वे जीवनपर्यन्त साधना में संलग्न रहे। साधना उनकी मूक तथा आलोचना वाचाल थी, यद्यपि दोनों के मूल में कल्याणकारी निर्माणकर्त्री करुणा का उत्स था।

'कला के विरह में जोशी-बन्धु' तथा 'साहित्यिक सन्निपात' या 'वर्तमान धर्म' निबन्धों में उनकी सूक्ष्म विवेचना-शक्ति का परिचय तो मिलता ही है, साथ ही साहित्यिक आलोचना की व्यक्तित्व-प्रधान व्यंग्यात्मक शैली का भी दर्शन होता है। आधुनिक हिन्दी के उस प्रारम्भिक युग में किस प्रकार साहित्यिक मतवाद पनप रहे थे एवं खण्डन-मण्डन की प्राचीन शैली के नवीन संस्कार हो रहे थे, इसका अच्छा परिचय इन निबन्धों में मिलता है। 'विद्यापति और चंडीदास' निबन्ध में कवियों का सरस तुलनात्मक विवेचन किया गया है। साथ ही साहित्य को श्लीलता और अश्लीलता के मानदण्ड से ऊपर उठाने का प्रयास किया है।

'नाटक-समस्या', 'रचना-सौष्ठव' एवं 'भाषा विज्ञान' जैसे निबन्धों में निराला ने साहित्यकार, भावों का उदात्तीकरण, भाषा की अनुरूपता एवं परिष्कार पर अपने विचार प्रकट किये हैं। इसी संग्रह में एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध 'मेरे गीत और कला' भी है। इस निबन्ध में भी अनायास ही वे एक जगह अपने गीतों की स्वच्छन्दता का वर्णन करते हुए अपने व्यक्तित्व की बन्धनहीनता की चर्चा कर जाते हैं—"मैं खड़ी बोली का वाल्मीकि नहीं, न 'वाल्मीकि की प्रिये दास यह कैसे तुझको भाया' मेरी पंक्ति है, पर 'भयो सिद्ध करि उल्टा जापू' अगर किसी पर खप सकता है तो हिन्दी के इतिहास में एकमात्र मुझ पर। कबीर उलटबाँसी के कारण विशेषता रखते हैं पर वहाँ छन्दों का साम्य है, उलटबाँसी नहीं; यहाँ छन्द और भाव दोनों की उल्टी गंगा बहती है।

... ...

यह सब उलट-पलट मैंने जान-बूझकर नहीं किया, और यह उलट-पलट है भी नहीं, इससे सीधा और प्राणों के पास तक पहुँचता रास्ता छन्दों के इतिहास में दूसरा नहीं।

... ...

प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाय—शक्ति, सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुखानुशयता, मृदुलता और छन्द साहित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन का भी सम्बन्ध है तो यह निश्चित रूप से कहा जाएगा कि प्राणशक्ति उस भाषा में है।" अपनी भाषा और छन्द के अतिरिक्त कवि ने वर्ण-

विन्यास, पद-साहित्य आदि की भी विस्तृत आलोचना की है। अपने गीतों के उद्धरण देकर उनके अर्थ स्पष्ट किये हैं और यह प्रमाणित कर दिया है कि कला बन्धनहीन होने पर भी इसी सृष्टि की वस्तु है।

'बंगाल के वैष्णव कवियों का श्रृंगार-वर्णन' सरस शैली में लिखा हुआ विवरणात्मक निबन्ध है।

'अधिकार-समस्या', 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ', 'स्वाभाविक पराधीनता, 'हमारा समाज' आदि सामाजिक निबन्ध हैं जिनमें लेखक ने विभिन्न समस्याओं पर अपने दृष्टिकोण से विचार किया है। 'बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ' में वे लिखते हैं कि "अब वह समय नहीं रहा कि हम स्त्रियों के सामने वह रूप रखें, जिसके लिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'चित्र लिखे कपि देखि डराती' लिखा था......... पुरुष के अभाव में स्त्री हाथ समेटकर, निश्चेष्ट बैठी न रहे। उपार्जन से लेकर संतान-पालन, गृह-कार्य आदि वह सँभाल सके, ऐसा रूप, ऐसी शिक्षा उसे मिलनी चाहिए। पहले दोनों के भाव और कार्य अलग-अलग थे, अब दोनों के भाव और कार्यों का एक ही में साम्य होना आवश्यक है। इस तरह गार्हस्थ्य धर्म में स्वतन्त्रता बढ़ेगी। पराव-लम्ब न रह जाएगा। स्त्रियाँ भी मेधा की अधिकारिणी होंगी। हृदय और मस्तिष्क दोनों में एकीकरण होगा। .... संसार में जितने प्रकार की प्राप्तियाँ हैं, शिक्षा सबसे बढ़कर है। ...... अशिक्षित-अपढ़ होने के कारण ही हमारी स्त्रियों को संसार में नरक यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं—उनके दुखों का अन्त नहीं होता।"

उनके सम्पूर्ण निबन्धों में हम देखते हैं कि एक प्रबुद्ध साहित्यिक के नाते जो भी प्रश्न उनके सम्मुख आता है, चाहे वह सामाजिक हो, राजनीतिक या काव्य-भूमि से सम्बन्ध रखने वाला, सबका उपयुक्त हल ढूँढ़ निकालना, सब पर निरपेक्ष भाव से चिन्तन करना उनकी अनोखी सामर्थ्य है।

किसी भी व्यक्ति को उसके समस्त परिवेश में जानने का सबसे पूर्ण और मधुर माध्यम उसका साहित्य है। साहित्य की उस परिधि में उसका असीम और दुर्बोध अन्तर्मन भी स्पष्टता से एक सीमित परिधि में अवतीर्ण होता है। इस दृष्टि से निराला के निबन्ध उनके व्यक्तित्व के खुले पृष्ठ हैं।

निराला की काव्य-भाषा

अम्बाप्रसाद 'सुमन'

साहित्यकार या कवि की अर्थमयी भावमग्न चेतना जब उद्‌बुद्ध होकर मानस से बाहर प्रकट होना चाहती है तब वह शब्दों में नहीं, अपितु वाक्यों में ही अपने स्वरूप को उपस्थित करती है। अर्थ की यह सरस एवं चमत्कारमयी अभिव्यक्ति ही 'साहित्य' कहाती है। अर्थ और वाक्य का यह मेल ही तो 'साहित्य' नाम से विख्यात हुआ है। अर्थमयी चेतना का वैखरी रूप ही तो 'भाषा' है। कवि की यह चेतना जब रसमयी बन जाती है तो उसकी अभिव्यक्ति केवल 'भाषा' ही नहीं, अपितु 'काव्य-भाषा' कहाती है। इसीलिए सामान्य साहित्य-भाषा से काव्य-भाषा सदा अधिक सरस तथा प्रभावशालिनी होती है। उसके प्रभाव का मूल कारण उसका अपना सौंदर्य तथा रमणीयता है। काव्य-भाषा की रमणीयता वाक्यांशों तथा वाक्यों में आये हुए शब्दों की शक्तियों पर ही विशेषरूपेण निर्भर करती है। आचार्यों ने उन्हें अभिधा, लक्षणा, व्यंजना तथा तात्पर्य नाम से अभिव्यक्त किया है।

वाक्य से पद और पद से शब्द का स्वरूप समझा जा सकता है। एक प्रकार से शब्द ही 'वाणी' का पर्याय है। हमारे शास्त्रों में जो उपमान वाणी को प्राप्त हुए हैं उनमें से 'कामधेनु' और 'जलदांगना' नाम बड़े सार्थक हैं। शब्द-धेनु आदि-मानव-समाज से आज तक निरन्तर दुही जा रही है, किन्तु उसके दुग्ध में लेष-मात्र भी कमी नहीं आयी। काव्य-भाषा में तो यह जलदांगना अनेक रूपाकार रखकर विभिन्न ऊँचाई के भाव-प्रदेशों में अर्थ की वर्षा किया करती है। वाणी की इस वर्षा में स्नान करके विज्ञ सहृदय पाठक को आनन्द ही नहीं, अपितु लोकोत्तरानन्द प्राप्त होता है। इसीलिए वाणी की इस अर्थ-वर्षा का जल 'जल' नहीं, अपितु 'अमृत' है। महाकवि भवभूति ने वाणी का विशेषण 'अमृता'[1] लिखकर उपर्युक्त कथन का ही समर्थन किया था।

एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से पूछा कि जलों में जल कौनसा श्रेष्ठ है ? तो बीरबल ने बताया कि जमुना-जल। इस पर बादशाह अकबर ने झुँझलाते

---

१. 'वन्देमहि च तां वाणीं अमृतां आत्मनः कलाम्'—भवभूति।

हुए कहा—"बीरबल ! दुनिया तो श्रेष्ठता तथा पवित्रता की दृष्टि से जलों में जल 'गंगा-जल' बताती है और तुम जमुना-जल को सर्वोत्तम बता रहे हो ।" बीरबल ने फिर भी अपनी ही बात को दुहराते हुए निवेदन किया—"बादशाह सलामत ! जलों में जल तो जमुना-जल ही है । गंगा-जल 'जल' नहीं है, वह तो 'अमृत' है । जलों में उसकी गिनती करना अपने ऊपर पाप चढ़ाना है ।" इसी दृष्टि-बिंदु से यह कहा जा सकता है कि काव्येतर विधाओं की भाषाएँ यदि जल हैं तो काव्य-भाषा 'अमृत' है ।

वैसे तो पद-संयोजना से भाषा को कोमल, मधुर अथवा कठोर बनाया जा सकता है; किन्तु कुछ भाषाएँ अपनी प्रकृति के अनुसार स्वयं भी कोमल या कठोर हुआ करती हैं । अलीगढ़ जनपद की बोली कोमल है तो मेरठ जनपद की कठोर । ठीक उसी प्रकार कोई कवि यदि वैदर्भी रीति या माधुर्य गुण का प्रेमी है तो दूसरा गौड़ी रीति और ओज गुण का; और तीसरा पांचाली रीति और प्रसाद गुण का । ऐसा भी होता है कि वस्तु-सामग्री अर्थात् वर्ण्य विषय के अनुसार कवि की भाषाभिव्यक्ति विभिन्नरूपिणी बन जाती है; किन्तु फिर भी गीतकार कवि के गीतों में सर्वांगीण दृष्टि से एक विशेष स्वर भी सुनाई पड़ा करता है । यदि हम महाप्राण श्री निरालाजी के काव्य-ग्रन्थों—'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास', 'अनामिका' (नवीन), 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला', 'नये पत्ते', 'अपरा' और 'अर्चना'—का भाषा-रचना की दृष्टि से अध्ययन करें तो विदित होगा कि उनमें शब्द-संयोजना आवश्यकतानुसार कोमल, सरस और कठोर है। फिर भी हमारे इस कवि का अपना एक विशिष्ट स्वर है जिसकी शैली में ओज का प्राधान्य स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। इस महाप्राण कवि के शब्द-विन्यास को गौड़ी रीति के माध्यम से अभिव्यक्त होना ही अधिक प्रिय है ।

अर्थ से पृथक् शब्द में अपनी निजी एक कोमलता, मधुरता अथवा कठोरता हुआ करती है जिसका मूलाधार उस शब्द का वर्णविन्यास हुआ करता है । 'रवि' और 'मार्तण्ड' शब्द अर्थ में समान होते हुए भी श्रोता के मानस-पटल पर अपना प्रभाव पृथक्-पृथक् प्रकट करते हैं । 'रवि' माधुर्य को प्रकट करता है तो 'मार्तण्ड' ओज से परिपूर्ण है । 'मार्तण्ड' का व्यंजन-संयोग और टवर्गीय वर्ण का पुट अर्थ से पृथक् एक निराली ध्वन्यात्मक प्राणता तथा उग्रता प्रस्तुत कर रहा है । व र्णों और उनसे निर्मित शब्दों की ऐसी ध्वन्यात्मक प्राणता की प्रकृति का अध्ययन करने के उपरान्त ही तो काव्य-प्रकाशकार आचार्य मम्मट ने यह घोषित किया था कि जब काव्य में पद-विन्यास के समय प्रत्येक वर्ग के प्रथम वर्ग के साथ द्वितीय वर्ण का संयोग हो अथवा अन्य वर्णों के साथ 'र' का संयोग हो अथवा टवर्गीय वर्ण और श, ष द्वित्त्व के साथ आएँ और उनकी लम्बी-लम्बी समासान्त पदावली भी हो तो वह रचना ओज गुणपूर्ण कहाती है ।[1] टवर्गीय वर्णों के शब्दों में पौरुष और ओज रहता

१. "योग आद्य तृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययोः ।
टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यगुम्फ उद्धत ओजसि ।।"

—मम्मट, काव्यप्रकाश, सूत्र १०० ।

है । तभी तो 'वेणु' शब्द पुल्लिग और उसका पर्यायवाची 'बाँसुरी' शब्द स्त्रीलिंग है ।

वर्णों को ध्वनि के आधार पर हम यदि गहरी और पैनी निगाह से देखें तो पर्यायवाची दो शब्द भी अपना अलग-अलग अर्थ रखते हैं । शब्दार्थमर्मी कुशल कवियों के लिए 'पानी' और 'जल', 'लड़ाई' और 'युद्ध', 'शंकर' और 'रुद्र' तथा 'निर्मल' और 'स्वच्छ' का एक अर्थ नहीं है । इसीलिए वेदार्थ-मर्मी यास्क मुनि ने कहा है कि शब्द में से अर्थ इस प्रकार झलक देता है जिस प्रकार बारीक तथा झीने वस्त्र में से शरीर की कान्ति दृष्टिगोचर हुआ करती है । मुनीश्वर यास्क के लिए अर्थ देवता है और भागवतकार के लिए अर्थ अव्यक्त ओंकार है । उनका वैखरी रूप ही व्यक्त-शब्द ब्रह्म है[1] । किस शब्द में वर्णविन्यासोद्भूत ओज और किसमें माधुर्य है, इसे महाकवि निराला की लेखनी पूर्णरूपेण परख लेती है । वह समुचित तथा समुपयुक्त शब्दों में अर्थ को अभिव्यक्त करना जानती है । नर और नारी अथवा पुरुष और प्रकृति के रूप और सम्बन्ध को उपस्थित करने वाले चित्र कवि ने 'तुम और मैं' शीर्षक कविता में जिस शब्दार्थ-कौशल के साथ चित्रित किये हैं, वे सम्पूर्ण हिन्दी-साहित्य में अप्रतिम हैं । नर का ओज एवं पौरुष और नारी की सरसता एवं कोमलता जिन प्रतीकों एवं उपमानों से व्यक्त की जा सकती है, उनके समुपयुक्त पर्यायवाची शब्दों को कवि ने चुन-चुनकर प्रयुक्त किया है । ओज और माधुर्य का एक साथ आनन्द यदि सच्चे शब्द-कौशल में कहीं प्राप्त किया जा सकता है तो निरालाजी की इन निम्नांकित कुछ पंक्तियों में—

तुम तुङ्ग हिमालय श्रृंग,
और मैं चंचलगति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास,
और मैं कान्त-कामिनी कविता ।
... ...
तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य,
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि ।
तुम नाद वेद ओङ्कार सार,
मैं कवि श्रृंगार शिरोमणि ।

शुद्ध गौड़ी रीति, पुरुषा वृत्ति और ओज गुण की पदावली की महाप्राणता यदि कोई देखना चाहता है तो उसे महाप्राण निरालाजी की 'राम की शक्ति पूजा' शीर्षक कविता को अवश्य पढ़ना चाहिए । उसे पढ़कर पाठक को विदित हो जाएगा कि निरालाजी के नाम के पहले 'महाप्राण' विशेषण क्यों जोड़ा जाता है—

राघव-लाघव—रावण वारण—गत युग्म प्रहर,
उद्धत लंकापति - मर्द्दित-कपिदल - बल-विस्तर,

१. "शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः"
—श्रीमद्भागवत, ३-१२-४८ ।

अनिमेष राम विश्वजिद् दिव्य शरभङ्ग-भाव,—
विद्धाङ्ग बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर रुधिर-स्राव,
रावण - प्रहार - दुर्वार विकल वानर - दल-बल—
मूर्च्छित-सुग्रीवाङ्गद - भीषण - गवाक्ष-गय-नल—
वारित-सौमित्र - भल्लपति - अगणित-मल्ल-रोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि - क्षुब्ध हनुमत् - केवल-प्रबोध,
उद्गीरित-वह्नि-भीम - पर्वत-कपि-चतुः प्रहर—
जानकी-भीरु - उर आशाभर - रावण - संवर।

'तुलसीदास' नामक खण्ड-काव्य में कविवर निरालाजी ने परुषा तथा कोमला वृत्तियों का गगा-जमुनी सम्मेलन प्रदर्शित किया है। अपने स्वभाव के अनुसार उसमें भी कवि परुषा वृत्ति की ओर ही अधिक झुका हुआ मालूम पड़ता है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही निरालाजी अपनी भावमयी चेतना को इन शब्दों में प्रकट करते हैं—

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य,
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मंडल।

संयुक्त व्यंजन एवं दीर्घ समासों की पदावली वीर, भयानक और रौद्र रसों का स्वरूप उपस्थित करने में सफल सिद्ध होती है, श्रृंगार और करुण रस के लिए समासरहित सरल पदावली ही उत्तम ठहरती है। इसे निरालाजी के अंतस् का कवि अच्छी तरह जानता है। इसीलिए 'अनामिका' और 'गीतिका' नामक काव्य-पुस्तकों की अनेक कविताएँ आपको ऐसी मिलेंगी जिनकी भाषा पांचाली रीति अर्थात् कोमला वृत्ति से परिपूर्ण है। सारांश यह है कि उनकी पद-रचना असमस्त, सरल और प्रसाद गुणयुक्त पायी जाती है। 'प्रिया से' शीर्षक कविता के पद-विन्यास का सारल्य देखिए—

मेरे इस जीवन की है—
तू सरस साधना कविता।
मेरे तरु की है तू—
कुसुमित प्रिये कल्पना-लतिका।।

—'अनामिका' से

पत्थर तोड़ती हुई एक मज़दूरनी का करुण चित्र कवि ने वैसी ही सरल शब्दावली में चित्रित किया है—

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।

—'अनामिका' से

'गीतिका' की निम्नांकित चार पंक्तियाँ भी समासहीन सरल पदरचना में अभिव्यक्त हैं क्योंकि इनका रस श्रृंगार है—

सोचता उन नयनों का प्यार ।
अचानक भरा सकल भण्डार ।।
आज और ही और संसार ।
और ही सुकृत मंजु पावन !

कवि की उद्‌बुद्ध चेतना का चित्र जब शब्दरूपा कला के माध्यम से कविता का रूप धारण करता है, तब ऐसे विलक्षण क्षण भी आते हैं कि वाच्यार्थधारिणी अभिधा-शक्ति हार मानकर बैठ जाती है, उस समय कुशल कवि के मानस की प्रतिभा का वेगवान् बल पाकर शब्द वाष्प की भाँति ऊपर को उठता है और फिर जलद की भाँति भारी होकर ऐसी अर्थ-वर्षा करता है कि उसके उपरान्त कवि-चेतना के चित्र इन्द्र-धनुष की तरह स्वतः ही मधुर रूप में दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ऐसे मधुर चित्र लक्षणाशक्ति चित्रित किया करती है। काव्यशास्त्र के बीसियों अलंकारों की जननी यही लक्षणा-शक्ति है। लक्षणा ही तो नेत्रों को कमल, मीन, खंजन, मृग आदि कहती है। काव्य-रचना के मार्ग में जहाँ लक्षणा थककर बैठ जाती है, वहाँ व्यंजना-शक्ति के सहारे ही कवि की कला प्रकट होती है। वास्तव में भाषा का अर्थ-जगत् उसका लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ ही है। कवि मानस का सीमातीत सूक्ष्म अर्थ व्यंजना (ध्वनि) के ही साथ आता है। इसीलिए प्रतिभाशाली कुशल कवि अपने भावों को व्यंजना के माध्यम से विस्तृत बनाया करते हैं और शब्द की गागर में अर्थ का सागर भरा करते हैं। कवि की सन्ध्या-सुन्दरी अम्बर-पथ से किस प्रकार चली है, उसकी रूप-सज्जा और कवि के शब्दों का व्यंजना-व्यापार निम्नांकित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

अलसता-की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली ।
सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बाँह
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली ।

उक्त पंक्तियों में शब्द अपने अभिप्राय की प्रधानता का परित्याग करके कुछ विशेष अर्थों को व्यक्त कर रहे हैं। इसीलिए यह शब्द-योजना ध्वनि-काव्य कहलाने की अधिकारिणी है। सन्ध्या की सखी नीरवता (शान्ति) है। मैत्री एक-सी प्रकृति वालों में ही हुआ करती है; अतः इससे ध्वनित है कि सन्ध्या स्वभाव से शान्त प्रकृति वाली है। सखियाँ प्रायः कुमारियों की ही होती हैं, विवाहिता नारियों को सखियों की उतनी आवश्यकता नहीं होती। अतः सखी का साथ में होना यह व्यंजित करता है कि सन्ध्या-सुन्दरी अभी कुमारी ही है। सखी (नीरवता) के कन्धे पर बाँह डालना यह भी प्रकट करता है कि सन्ध्या-सुन्दरी अभी मुग्धा नवयौवना है और स्वभाव की अल्हड़ है। सखी के कन्धे पर बाँह डाले हुए आना यह भी ध्वनित करता है कि सखी (नीरवता) के साथ संध्या सुन्दरी की बड़ी गहरी मित्रता है। संध्या के लिए 'छाँह' का उपमान प्रस्तुत करने से यह व्यंजित है कि संध्या-सुन्दरी शरीर में बड़ी पतली है। अम्बर-पथ से नीचे उतरने में संध्या ने सखी के कन्धे का सहारा लिया है; अतः वह सुकुमारी एवं कोमलांगना है। हिन्दी भाषा की उर्दू शैली में कहें

तो यह कहा जा सकता है कि शाम एक नाज़नी और नाज़पर्वरदह् है। सन्ध्या-सुन्दरी न तो भूलोक की नारी है और न उसे कभी इस पृथ्वी पर चलने का काम ही पड़ा है, जिससे उसका शरीर सबल और कठोर बनता अथवा कठोरता सहने का अभ्यासी होता। उक्त पंक्तियों में महाकवि निरालाजी ने मानवीकरण के द्वारा छायारूपिणी संध्या को कुमारी का रूप देकर कमाल कर दिया है। यहाँ अनेक वस्तु-ध्वनियों का सम्मेलन दिखाई पड़ रहा है। श्री निरालाजी के ऐसे ही ध्वनिपरक चित्रों पर मुग्ध होकर श्री जयशंकर 'प्रसाद' जी ने निरालाजी के काव्य के सम्बन्ध में लिखा था—"चित्रों की रेखाएँ पुष्ट, वर्णों का विकास भास्वर है। दार्शनिक पक्ष गंभीर और व्यंजना मूर्तिमती है।"

निरालाजी ने अपनी कविताओं में व्याकरण-सम्बन्धी कुछ विशेष प्रयोग भी किये हैं। ऐसे प्रयोग कर्त्ता और क्रिया के रूपों से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। निरालाजी के मत से 'तुम' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है—(१) अपने से बड़े के लिए सम्मानार्थ में और (२) समान आयु अथवा समान पद वाले के अर्थ में। जब सम्मानार्थ में 'तुम' का प्रयोग होता है तब निरालाजी भूतकालीन क्रिया को अनुनासिक बना देते हैं, जैसे—'तुम जाती थीं।' किन्तु जब समानता के अर्थ में प्रयोग किया जाता है तो वे लिखते हैं—'तुम जाती थी।' अर्थात् सहायक क्रिया अनुनासिकता से रहित प्रयुक्त की जाती है। 'गीतिका' के ६१वें गीत में कवि ने लिखा है—"कण्ठ की तुम्हीं 'रही' स्वर-हार।" यहाँ 'रही' के स्थान पर हिन्दी व्याकरणानुसार 'रहीं' होना चाहिए था। इसे हम भाषा के क्षेत्र में कवि का एक क्रान्तिकारी चरण-न्यास ही कह सकते हैं। 'मार दी तुझे पिचकारी'—(गीतिका, छन्द ५५), 'जग धोका तो रो क्या ?'—(गीतिका, छन्द ४६), '(जब) चाह, तुम्हें चहते।'—(गीतिका, छन्द २१) आदि निरालाजी के भाषा-विषयक ऐसे ही अपने प्रयोग हैं। इनका कारण संगीत के स्वर भी हो सकते हैं जिनमें बँध जाने के कारण कवि को वैसा लिखने के लिए बाध्य होना पड़ा होगा। बंग-साहित्य से प्रभावित होने के कारण निरालाजी ने अपनी कविताओं में संगीत को कवित्वमय और कवित्व को संगीतमय बनाने की अधिक चेष्टा की है। इसीलिए कहीं-कहीं अर्थ-बाधकतावाले पद-विन्यास की परवाह उन्होंने नहीं की। बँगला भाषा के प्रभाव के कारण ही उनकी कविताओं में क्रिया-पदों का प्रायः लोप पाया जाता है। सारांश यह है कि उनके वाक्य-विन्यास पर बंग-शैली का स्पष्ट प्रभाव प्रतिलक्षित होता है।

महाकवि निराला की भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों से परिपूर्ण साहित्यिक खड़ीबोली है जिसे संगीत के मंच पर सुशोभित करके शृंगार की मधुरिमा और वीर का ओज प्रदान किया गया है। इसीलिए खड़ीबोली की कर्कशता निरालाजी की कविताओं में नहीं है। उनकी रचनाओं में जहाँ बौद्धिक तत्त्व अधिक है वहाँ भाषा जटिल और दुरूह हो गई है, किन्तु हृदय-तत्त्व की प्रधानता प्राप्त करके वह संस्कृत की ललित एवं कोमलकांत पदावली की स्वरलहरी से अभिमण्डित भी हो गई है। वह कोमलकान्त पदावली विशेषतः अभिधात्मक शब्दों को लेकर ही चली है।

बँगला भाषा के कुछ शब्द बड़े सुन्दर ढंग से निरालाजी ने अपनी कविताओं में प्रयुक्त किये हैं। फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों को तो वे बड़े विचार के साथ ही प्रयुक्त करते हैं। उन शब्दों के प्रयोग से भाषा प्राणवन्त ही बनी है।

कलामर्मज्ञ कुशल कवि की सबसे बड़ी पहचान यह है कि वह सदा पूर्ण समर्थ एवं अर्थव्यंजक शब्दों का ही प्रयोग किया करता है। संज्ञा शब्दों के साथ अनेक विशेषण शब्दों का प्रयोग कवि की असमर्थता तथा अल्पज्ञता का द्योतक है। सच्चे कवि उच्छिष्ट-भोजी नहीं होते और विशेषणों का अधिक प्रयोग भी नहीं करते। शब्द-मर्मी कुशल कवि 'नील कमल' के स्थान पर 'इन्दीवर' और 'पूर्णमासी के चन्द्र' के स्थान पर 'राकेश' लिखना अधिक कलापूर्ण मानता है। यह बात हमें निरालाजी की काव्य-पुस्तकों में भी मिलती है। अनुप्रासमयी शब्द-योजना के तो वे पूर्णतः सफल कवि हैं :

वसन वासनाओं के रँग रँग।

—अनामिका, पृ० ३१

... ...

नीरज-नीलनयन, बिम्बाधर।

—अनामिका, पृ० १०७

... ...

तरु की तरुण-तान शाखें।

—अनामिका, पृ० १४३

अन्त में सारांश रूप में यही निवेदन किया जा सकता है कि निरालाजी की लेखनी ने खड़ीबोली हिन्दी को नवीन संगीत शली के गीत प्रदान किये हैं।

निराला की भाषा

कैलाशचन्द्र भाटिया

महाप्राण निराला का आविर्भाव उस युग में हुआ था जबकि काव्य-भाषा के पद पर ब्रजभाषा प्रतिष्ठित थी। वैसे तो काव्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली का प्रयोग यत्र-तत्र मध्यकाल से होता चला आ रहा था, पर व्यवस्थित रूप से इसका प्रयोग श्री अयोध्या प्रसाद खत्री के समय से हुआ। काव्य-भाषा के रूप में ब्रजभाषा का बोलबाला होते हुए भी निराला ने खड़ीबोली को ही स्टैंडर्ड भाषा के रूप में स्वीकार किया और उसको यथार्थ में स्टैंडर्ड रूप में प्रस्तुत करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। गीतिका की भूमिका में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है,…"फिर खड़ीबोली केवल बोली में ही नहीं खड़ी हुई, कुछ भाव भी उसने ब्रजभाषा संस्कृति से भिन्न अपने कहकर खड़े किये हैं यद्यपि वे वहिर्विश्व की भावना से संश्लिष्ट हैं।……मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है।"[१]

काव्य में भाषा का विशेष महत्त्व है। शब्द और अर्थ का समन्वित रूप ही काव्य माना है। 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'। (भामह : काव्यालंकार, १ : १६)। दोनों में कौन प्रधान है और कौन अप्रधान यह निर्णय करना कठिन है। दोनों का अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर है। शब्द ब्रह्म है 'वाग्वै सम्राट् परम ब्रह्म'। इस शब्द ब्रह्म की जितनी साधना निराला ने की है उतनी किसी अन्य कवि ने नहीं।[२] रवि, सूर्य, मार्तण्ड आदि शब्द समानार्थक होते हुए भी भिन्न वर्ण-योजना से भिन्न अर्थ-व्यंजना से युक्त हैं। भाषा के प्रति जितनी सजगता निराला के काव्य में है उतनी अन्यत्र नहीं।

---

१. निराला, गीतिका की भूमिका से।

२. "हमारे शब्द-शास्त्र के पारदर्शी ऋषियों ने त्रिस्वरात्मक ओंकार के बिन्दु को शब्दसृष्टि का मूल बताया है। इस बिन्दु से उत्पन्न वैदिक शब्द-भण्डार पूर्ण माना जाता है। परन्तु शब्द और भण्डार का अस्तित्व जबकि आँखों के सामने है तो विचार की बाहरी दृष्टि से उसकी पूर्णता बाल्य और युवावस्था के बाद ही सिद्ध होती है।"

—निराला, चयन, प्रथम सं०, पृ० १६।

महाकवि ने जहाँ एक ओर अपने इस कथन (जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव तदनुकूल भाषा[1] और प्रकाशन से व्यक्त होता है उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है) के अनुसार 'उत्ताल-तरंगाघात-प्रलय-घन-गर्जन-प्रबल' आदि शब्दावली द्वारा बाण की शैली के साथ विद्वत् मंडली में धाक जमा दी है वहाँ दूसरी ओर 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता से बोलचाल की भाषा के रूप को प्रस्तुत कर जनमानस में उद्‌घोष किया। निराला का संस्कृत भाषा और साहित्य का गंभीर ज्ञान ही उनके काव्य-कृतित्व का मूलाधार है जिसमें उनकी नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने एक अद्‌भुत वैचित्र्य उत्पन्न किया है।

भाषा के विभिन्न रूपों की दृष्टि से निराला का स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। निराला की दृष्टि में "भाषा बहुभावात्मिका रचना की इच्छामात्र से बदलने वाली देह है। इसीलिए रचना और भाषा के अगणित स्वरूप भिन्न-भिन्न साहित्यिकों की विशेषताएँ ज़ाहिर करते हुए देख पड़ते हैं। रचना युद्धकौशल है, भाषा तदनुरूप अस्त्र।"[2] निराला ने पारंगत साहित्यिक वीर की भाँति समुचित प्रयोग किया है।

भाषा की दृष्टि से सम्पूर्ण निराला साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है :

पद्य-साहित्य

गद्य-साहित्य—उपन्यास—अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, चोटी की पकड़, काले कारनामे, चमेली।

—चार कहानी-संग्रह।

—दो रेखाचित्र।

—आलोचना तथा निबन्ध-साहित्य।

काव्य-भाषा की दृष्टि से 'परिमल', 'अनामिका', 'तुलसीदास' और 'गीतिका' की भाषा अत्यधिक समृद्ध एवं संस्कृत की तत्समता से बोझिल है, जबकि 'अणिमा', 'बेला', 'नये पत्ते'[3] आदि की भाषा प्रायः सरल एवं मुहावरेदार है।

निरालाजी की भाषा-संबंधी विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डालने के पूर्व यह भी उल्लेखनीय हैं कि निराला की दृष्टि में 'काव्य-भाषा' का विशेष स्थान है। विशेष भावों की अभिव्यक्ति के लिए उनको सहस्रों शब्द गढ़ने पड़े जो संगीत, ताल

---

१. निरालाजी ने अपने १२-८-३७ के श्री जानकीवल्लभ शास्त्रीजी के पत्र में लिखा था, "जो गहन भाव सीधी भाषा, सीधे छन्द में चाहता है, वह धोखेबाज है, उसे भाषा का ज्ञान नहीं, वह भाव क्या समझेगा?" निराला, जीवन और साहित्य, पृष्ठ ३०३।

२. निराला, भाषा-विज्ञान, प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० ८६।

३. नया साहित्य—निराला अंक में प्रकाशित संस्मरण में निरालाजी ने स्वयं स्वीकार किया है, " 'बेला' में नये प्रयोग, 'नये पत्ते' में मुहावरे और 'अर्चना' में प्रौढ़ भाषा का स्वरूप है।"

एवं लय के साथ खड़ीबोली में खप सकें ।[1] शब्दों के इस महान् शिल्पी एवं पारखी के काव्य में अनायास ही 'भाषा' के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाली अनेक भावमय पंक्तियाँ यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं :

१. भाषा तुम पिरो रही हो शब्द तौलकर
किसका यह अभिनन्दन होगा आज ।

—'तरंगों के प्रति'

२. खुलकर अति प्रिय नीरव भाषा ठण्डी उस चितवन से ।

—'बहू'

३. मलिन दृष्टि के भाषा-हीन भाव से

—'रास्ते के फूल से'

४. मौन मधु हो जाय
भाषा मूकता की आड़ में ।

—'मौन'

५. प्रेम भाव बिना भाषा का
तान तरल कम्पन वह बिना शब्द अर्थ की
वह भाषा छिपती छवि सुन्दर
कुछ खुलती आभा में रंग कर ।

—'तुलसीदास'

भाषा-संबंधी ये उपमान ही कवि की दृष्टि में भाषा के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं । आपने अपने कुछ निबन्धों में तो भाषा के महत्त्व को विशेष रूप से प्रतिष्ठित किया है ।

"जीवित रहने के लिए संसार के प्रत्येक कर्म-चतुर मनुष्य और उसकी भाषा से हमें नाता नहीं तोड़ना है तो हमें उसकी भाषा की प्रगति पर भी वही नज़र रखनी चाहिए जो एक जौहरी हीरे पर रखता है ।"[2]

"दूसरे मनुष्यों की भाँति भाषा में भी प्राण होते हैं । मनुष्य बोलता है या भाषा बोलती है, इसका निर्णय करना ज़रा कठिन काम है । जिन पाँच तत्त्वों से शरीर बनता है, उनमें भाषा को ही अधिक सूक्ष्म कहा जा सकता है, क्योंकि इसका आकाश तत्त्व से संबंध है और प्राण आकाश तत्त्व ही का आध्यात्मिक रूप है । उधर भाषा से ही प्राणों का परिचय मिलता है । भाषा या प्राणों का प्रवाह स्वभावतः पूर्णता की ओर होता है ।"[3]

---

१. 'शब्दों का ढलना—एक दूसरे रूप में बदलना अनिवार्य है यदि कोई भाषा अपना भण्डार पूर्ण रखने का इरादा रखे तो ।'

—चयन, पृष्ठ १९ ।

२. निराला, चयन, पृष्ठ १८ ।

३. वही, पृष्ठ १९ ।

संस्कृत की तत्समता :

संस्कृत के पुराने अप्रचलित शब्दों का पुनः प्रयोग, संस्कृत की धातुओं की सहायता से नवीन शब्दों को गढ़ने का कार्य विशेष रूप से निराला ने किया है। संस्कृतनिष्ठ भाषा से निराला का काव्य भरा पड़ा है :

पीताभ अग्निमय, ज्यों दुर्जय
निर्धूम, निरभ्र दिगन्त प्रसर ?

उनकी यह शैली काव्य तक ही सीमित हो यह बात नहीं, 'हिरनी' शीर्षक कहानी का प्रारम्भ ही इस प्रकार होता है :

"कृष्णा की बाढ़ बह चुकी है, सुतीक्ष्ण, रक्त-लिप्त, अदृश्य दाँतों का लाल जिह्व योजनों तक क्रूर, भीषण मुख फैलाकर प्राण-सुरा पीती हुई मृत्यु तांडव नृत्य कर रही है। सहस्रों गृह-शून्य, क्षुधा-क्लिष्ट, निःस्व, जीवित कंकाल साक्षात् प्रेतों-से इधर-उधर घूम रहे हैं। आर्तनाद, चीत्कार, करुणानुरोधों में सेनापति अकाल की पुनः-पुनः शंख-ध्वनि हो रही है।"

उनकी भाषा में प्रयुक्त 'अशनिपात से शायित', 'दिवकुमारिका', 'प्रस्रवण', 'उद्गीरण', 'संगर', 'स्रस्त', 'कार्मुक', 'तमिस्र', 'अब्द', 'तूर्ण' आदि शब्द निस्सन्देह दुर्बोधता ला देते हैं।

१.२ कहीं-कहीं तुक के लिए तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे 'अवगुण्ठन' के साथ-साथ 'सुखलुण्ठन' तथा 'विस्मय-लुण्ठन' भी तथा 'कीर्ण कारिणी' के साथ 'शीर्ण सारिणी तथा 'तीर्ण तारिणी'।

१.३ कहीं-कहीं फ़ारसी-अँग्रेज़ी के प्रचलित शब्द के स्थान पर भी निरालाजी को शब्द गढ़ना पड़ा तो संस्कृत की तत्समता का आश्रय लिया है, जैसे 'तनिमा'।

१.४ अत्यधिक तत्समता एवं समासप्रियता के कारण अस्पष्टता भी आ जाना स्वाभाविक है। ऐसे स्थलों को कवि ने स्वयं टिप्पणियों में स्पष्ट किया है, जैसे :

'हर्ष-अलि हर स्पर्शशर'—आनन्द रूपी भौंरा स्पर्श का चुभा तीर हर रहा है। (तीर के निकालने से भी एक प्रकार का स्पर्श होता है जो और सुखद है। तीर रूप का चुभा तीर है।) इस संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल[1] ने लिखा है यह "जो अर्थ कवि को स्वयं समझाना पड़ा है, वह उन पदावलियों से ज़बरदस्ती निकाला जान पड़ता है।"

निराला की भाषा के संबंध में टिप्पणी देते हुए आचार्य चतुरसेन लिखते हैं, "वे जब आवेश में भावमग्न हो विचार-प्रवाह करते हैं तो भाषा को उसका बोझ वहन करना दूभर हो जाता है, वह लड़खड़ाने और अटकने लगती है। उनकी कविता का आनन्द लेना दुर्लंघ्य गौरीशंकर शैलशिखर पर चढ़ने के समान साहस और परिश्रम-साध्य है।[2] यह बात स्पष्ट दृष्टिगत होती है जहाँ निराला संस्कृत की तत्समता के साथ-साथ समास-पद्धति भी अपना लेते हैं।

---

१. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० २००२, पृ० ६२५-२८।
२. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ६५६।

समासान्त पदावली :

उनके काव्य में 'क्लेशयुक्त', 'नयन-निर्झर', 'हँसी-हिंडोले', 'अलि-अलकों', 'विरह-विटप', 'पल्लव-पलने', 'चित-चकोर', 'कामना-कुसुम', 'कुसुम-कपोलों', 'पल्लव-पर्य्यंक', 'कर्म-कुसुम' आदि सामासिक पदों की कमी नहीं है जिनसे उनका काव्य अनुप्रास एवं समासों के हिंडोले में झूलता रहता है। उनकी यह समास-शैली बढ़ती ही गई है। कहीं-कहीं सरल तथा छोटे-छोटे समास हैं, पर ओजपूर्ण स्थलों पर ये क्लिष्ट सामाजिक पद हैं :

विच्छुरित-वह्नि-राजीवनयन-हतलक्ष्य-वाण
उद्धत-लंकापति-मर्द्दित-कपि-दल-बल-विस्तर

कहीं-कहीं लम्बे-लम्बे समास होते हुए भी एक अलौकिक प्रवाह बना हुआ है जिसमें पाठक बहता ही जाता है।

इस संबंध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी[1] का कथन द्रष्टव्य है।

"उन्होंने हिन्दी पद-विन्यास को भी अधिक प्रौढ़ तथा अधिक प्रशस्त बनाने का सफल प्रयास किया है। अत्यन्त सार्थक शब्द-सृष्टि द्वारा निरालाजी ने हिन्दी को अभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की है।......शब्द-संगीत परखने और व्यवहार में लाने में वे आधुनिक हिन्दी के दिशानायक हैं। अनुप्रास के वे आचार्य हैं।"

अनुप्रासमयता :

निरालाजी एक साथ अनुप्रास, रूपक तथा समास का निर्वाह करते हैं, जिसकी कुछ झाँकियाँ सामासिक पदों में दिखाई गई हैं। सबसे प्रथम तो यह स्मरणीय है कि महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अपना उपनाम 'निराला' भी 'मतवाला' पत्र से तुक मिलाते हुए रखा था। उनके काव्य में 'मार्ग-मृतिका-मलिन' तथा 'धन से, धान्य से, धरा का, कृषि फल' आदि पंक्तियों की कमी नहीं, कहीं-कहीं तो एक ही-से उपसर्गों की झड़ी लग जाती है :

निःस्पृह, निःस्व, निरामय, निर्मम
निराकांक्ष, निर्लेप, निरुदगम,
निर्भय, निराकार, निःसम, शम
माया आदि पदों की दासी। —आराधना, पृष्ठ ५०।

सन्धियुक्त शब्दावली :

निराला के काव्य में संस्कृत के तत्सम शब्दों का सामासिक रूप तो प्रायः मिलता ही है, पर सन्धि रूप में कहीं-कहीं मिलता है, जैसे :

गर्जितोर्मि, शरदिन्दु, तिर्यग्दृग, मज्जनावेदन, चेतनोर्मियों, कलमषोत्सार, सरितोपम, चित्सिन्धु आदि उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के द्वितीय चरण की भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए डॉ० श्रीकृष्ण लाल ने

---

१. नन्ददुलारे वाजपेयी, बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ १४१।

लिखा है, "एक समृद्ध भाषा-शैली का विकास होने लगा, जिसमें संस्कृत तत्सम तथा ध्वनि-व्यंजक शब्दों का प्राधान्य था। वह चमत्कारपूर्ण और आलोकमय विशेषणों तथा चित्रमय और ध्वन्यात्मक शब्दों का युग था।" डॉ० लाल के इस उद्धरण से तीन प्रमुख विशेषताएँ उक्त युग की भाषा में प्राप्त होती हैं जो निराला की भाषा में भी विशेष रूप से विद्यमान हैं :

१. आलोकमय विशेषण—आलोकमयता।

२. चित्रमयता।

३. ध्वन्यात्मकता।

आलोकमय विशेषण :

प्राय: निराला ने संस्कृत की पद्धति से ही विशेषणों का प्रयोग किया है, जैसे सौन्दर्य-गर्विता सरिता।

विशेषणों के प्रयोग में अनुप्रास का भी प्राय: ध्यान रखा गया है, जैसे, सुरभि-समीर, मुग्ध-मौनमय। साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है, 'टलमल पद', 'भुक्खड़ फ़ालोवर'। कहीं-कहीं संस्कृत शब्द का विशेषण संस्कृत द्वारा तथा उर्दू की शैली में लिखे गये शब्द का विशेषण भी उसी शैली में दिया गया है, जैसे :

नायाब चीज़, फल सर्वश्रेष्ठ।

चित्रमयता :

निराला ने कविता के लिए 'चित्रभाषा' और सस्वर शब्दों की आवश्यकता का अनुभव किया और सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये। 'वसन्तागम' कविता में सारी प्रकृति वसन्त के आने पर हर्षित है, लताएँ प्रसूनों से भर जाती हैं, मलयानिल मन्द-मन्द गति से बहता है, भौंरे गुन-गुन करने में लीन हैं। गीतिका में ऐसे शब्द-चित्र भरे पड़े हैं। कुछ चित्र उपस्थित हैं :

अलस पग मग में ठगी-सी रह गई।

श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन।

झुक-झुक तन-तन, फिर झूम-झूम, हँस-हँस झकोर

पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहे लकुटिया टेक।

स्वरमय किसलय-निलय विहगों
के बजते सुहाग के तार।

अनेक व्यापारों का चित्र :

जुही मुस्कराई, नागन बल खाई आई।
मन्द गन्ध से पुरवाई डस गई सुहाई।

करते चढ़ते, बढ़ते-अड़ते
झुक पड़ते हैं वीर बुझार ।

शारीरिक सौन्दर्य पर एक चित्र :

जो तुलसीदास, वही ब्राह्मण कुल-दीपक,
आयत-दृग, पुष्ट-देह-गत भय,
अपने प्रकाश में निःसंशय,
प्रतिभा का मन्दस्मित परिचय, संस्मारक ।

—'तुलसीदास' से

सांगीतिक नादात्मकता : ध्वन्यात्मकता :

भाषा में ध्वन्यात्मक शब्दावली का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। ध्वन्यर्थ-व्यंजक शब्दों की संयोजना हिन्दी-साहित्य में आदि-काल से ही प्रारम्भ हो गयी थी। आधुनिक काल में निराला, पन्त आदि कवियों ने इस ओर फिर से विशेष ध्यान दिया। निराला का सम्पूर्ण काव्य ऐसे ध्वन्यात्मक पदों से भरा है, फिर भी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है :

नूपुर की ध्वनि :

नूपुरों में भी रुनझुन-रुनझुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा चुप, चुप, चुप ।

निर्झर की ध्वनि :

झरझर निर्झर गिरि सर में
मरु तरु-मर्मर सागर में

—बादल से (परिमल)

झरझर रव भूधर का मधुर प्रपात

युद्ध की हुंकार :

भेरी झरर-झरर, दमामे
घोर नकारों की है चोप
कड़-कड़-कड़ सन्-सन् बन्दूकें
अररर अररर अररर तोप।

अश्वों की हेषा। भर भर। रथ का घर्घर। घंटों की घन घन ।

द्विरुक्ति :

शब्द-चित्र प्रस्तुत करने तथा ध्वननशीलता उत्पन्न करने के लिए तो द्विरुक्ति का प्रयोग होता ही है, पर अतिरिक्त बल प्रदान करने के लिए भी द्विरुक्ति का प्रयोग

होता है । निराला के काव्य में यह प्रवृत्ति विशेष दृष्टिगत होती है, जैसे :

बार-बार गर्जन ।

सुन सुन घोर वज्र हुंकार ।

मधुर मधुर अधर

काले काले बालों से

तीन बार भी :

गाती यमुना, मुझे सुनाती धीरे धीरे धीरे,
कलकल कुलकुल कलकल टलमल टलमल

—शरत्पूर्णिमा की विदाई

वह संध्या-सुन्दरीपरी सी
धीरे धीरे धीरे

—संध्या सुन्दरी

भावानुसार भाषा :

निराला ने सौन्दर्य पक्ष के उद्घाटन में सर्वत्र कोमल वर्णों का ही प्रयोग किया है, जैसे तवर्ग, पवर्ग तथा र, ल आदि वर्ण । भाषा पर असाधारण अधिकार होने के कारण निराला 'ण' वर्ण[1] का प्रयोग करते हुए भी कोमलता को नष्ट नहीं होने देते :

आओ मधुर-सरण मानसि, मन
नूपुर-चरण-रणन जीवन नित
बंकिम चितवन चित चारु मरण

कठोर वर्णों के द्वारा ओजमय भाषा का स्वरूप :

स्वर्ण धराव्यापी संगर का
छाया विकट कटक उन्माद ।
भीमघोष गम्भीर अतल धँस ।
टलमल करती धरा अधीर ।

शब्दों के मध्य में वर्णों की आवृत्ति,

लगाये ऊपर चन्दन ।
करते समय नदीशनन्दिनी का अभिनन्दन ।

---

१. 'वर्ण-विचार' पर निराला ने विस्तृत विवेचन अपने निबन्ध 'मेरे गीत और कला' में प्रस्तुत किया है ।

—निराला, प्रबन्ध प्रतिमा, पृ० १९७ ।

तरंगों पर आरोपित चंचल-नायिका का चित्र :

चंचल-चरण बढ़ाती हो, किससे मिलने जाती हो ?
तैर-तिमिर-तल भुज-मृणाल से सलिल काटती,
आपस में ही करती हो परिहास
हो मरोरती गला शिला का कभी डाँटती,
कभी खिलाती जगती तल को त्रास ।

— परिमल' से

मनोवैज्ञानिक स्थलों की भाषा :

तुलसीदास की भूमिका में कृष्णदासजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, "मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण उसका ध्येय है, अतः उसे अपनी भाषा बहुत-कुछ स्वयं गढ़नी पड़ी है। किस सरलता से उसने छोटी-छोटी बातों को लेकर बड़े-बड़े मानसिक घात-प्रतिघातों को अपनी वाणी द्वारा सजीव कर दिया है……" इस प्रवृत्ति के प्रमाण में तुलसीदास का एक छन्द यहाँ दिया जा रहा है :

जब आया फिर देहात्मबोध
बाहर चलने का हुआ शोध
रह निर्विरोध, गति हुई रोध-प्रतिकूला
खोलती मृदुल दल बन्द सकल
गुदगुदा विपुल धरा अविचल ।

भाषा का चलता रूप :

प्रगतिवादी धारा में लिखी गई निराला की तीन प्रसिद्ध पुस्तकें 'अणिमा', 'वेला' और 'नये पत्ते' हैं। इन संग्रहों की भाषा के संबंध में श्री गिरीशचन्द्र तिवारी ने लिखा है, "इन तीनों की भाषा साधारण के अत्यधिक नज़दीक है। 'अणिमा' के इन गीतों की भाषा प्रायः सरल है और साथ ही गद्यानुसार भी। इसकी भाषा उर्दू के शब्दों से भी प्रभावित है, प्रान्तीय भाषाओं में खासकर उर्दू में यह प्रकरण है और ज़ोरों से चल रहा है। इसके बाद 'वेला' में भाषा की सरलता और मुहावरेदारी और बढ़ती गई है।"

वस्तुतः यह बात नहीं है कि भाषा का सरल तथा चलता हुआ रूप निरालाजी की बाद ही की रचनाओं में मिलता हो, प्रारम्भिक रचनाओं में भी ऐसे उद्धरण मिलते हैं :

हिल हिल
खिल खिल
हाथ हिलाते
तुझे बुलाते
विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ।

मिली-जुली भाषा का रूप :

पर हैं प्रोलेटेरियन झगड़े जहाँ
मियाँ बीवी के क्या कहना है वहाँ
नाचता है सूदखोर जहाँ कहीं ब्याज डूबता
नाच मेरा क्लाइमेक्स को पहुँचता ।

उर्दू शब्द :

लोक में प्रचलित उर्दू शब्दों को बहिष्कृत करने की वृत्ति निराला की नहीं थी, यद्यपि संस्कृत की तत्समप्रियता की ओर उनका झुकाव पर्याप्त था । उनके काव्य में फतहआब, दग़दग़ा, ग़ैर, हक़, ज़्यादा, बाग़, खूब, होशियार, तस्वीर, सिर्फ़, तूफ़ान, नाराज़ आदि सहज शब्दों का प्रचलन है ।

व्यंग्य-प्रधान काव्य 'कुकुरमुत्ता' में उर्दू के शब्दों का विशेष रूप से आधिक्य है :

एक थे नव्वाब,
फ़ारस से मँगाये थे गुलाब,
ज़बाँ पर लफ़्ज़ प्यारा

इस प्रकार इसमें तहज़ीब, चमन, खुशनुमा, फ़व्वारे, सुर्ख़, फ़ीरोज़ी, ज़र्द, सफ़ेद, आसमानी, रंगोआब, ख़्वाब आदि मिलते हैं ।

अंग्रेज़ी शब्द :

लोक में प्रचलित अंग्रेज़ी शब्द भी निराला के काव्य में पर्याप्त मिलते हैं, जैसे लार्ड, कैमरा, रेल, ग्रेड, कारनेट, क्लारीओनेट, ड्रम, फ्लूट, गिटार, बालडान्स, रोमांस, पीस, प्रोग्रेसिव, क्वेट आदि ।

निराला के कहानी-संग्रह 'चाबुक' में मुझको पर्याप्त अंग्रेज़ी शब्द मिले हैं । 'सुकुल की बीवी' कहानी-संग्रह में भी इस परंपरा का निर्वाह मिलता है । उक्त दोनों संग्रहों में से कुछ अंग्रेज़ी शब्द द्रष्टव्य हैं :

सब-डिवीज़न, पोइट्री, लेक्चर्स, लिटरेचर, स्क्रू, ब्लेक, ब्रिज, गार्जियन, ब्रांडी, कोट-पेंट, स्लीपर, मेस, रोमैंटिक, परगेटिव, डबल फ़ोर्स, सेंटेंस, कालम, नोट, पैराग्राफ, गेट, मोटर, ड्राइवर, कालेज, डिक्शनरी, फेल, नम्बर, प्रोफ़ेसर, टैक्सी, पम्प, इन्सपेक्टर, ड्यूटी, मैट्रीक्यूलेशन, पाउडर, क्रीम, सिनेमा, स्टार, कैप-हैट, फीस, आइडिया, पिकेटिंग, सब्जेक्ट, कमेटी, प्रेस रिपोर्टर आदि उल्लेखनीय हैं । कहीं-कहीं कृदन्तीय रूप भी मिलते हैं जैसे, आमलेट के सिलसिले में 'बायल्ड' तथा 'हाफ़ बायल्ड' । 'सवलेप', 'गुरुडम' शब्द भी उल्लेखनीय हैं । एक स्थान पर बहुवचन रूप 'लेक्चर्स' भी मिलता है ।

इस प्रकार निराला की भाषा में हिन्दी के सभी रूपों के दर्शन होते हैं । महाकवि को जब जिस भाव को व्यक्त करने की आवश्यकता होती थी, सरस्वती का वही रूप उनके समक्ष नाचता-गाता प्रस्तुत हो जाता था । महाप्राण निराला के संबंध में संस्मरण लिखते हुए डॉ० उदय नारायण तिवारी ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं, "जब वे अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं अपनी मातृभाषा बैसवाड़ी में वार्तालाप करते

हैं, बंगला में बोलते समय भी वह प्रसन्न ही रहते हैं क्योंकि वह भी उनके लिए मातृभाषावत् ही है, किन्तु जब वे किंचित् रुष्ट हो जाते हैं तो संस्कृतगर्भित हिन्दी का प्रयोग करने लगते हैं, जब वीर भाव का आवेग आता है तो आप उर्दू-ए-मुअल्ला में भाषण करने लगते हैं, किन्तु जब विशेष रौद्रभाव के आवेश में आते हैं तो अंग्रेज़ी बोलने लगते हैं।" संक्षेप में यह निराला की विभिन्न मानसिक भूमियों का विश्लेषण है। इस प्रकार मातृभाषा बैसवाड़ी के कारण साहस एवं दृढ़ता, रवीन्द्र, विवेकानन्द की भावुकता उनके व्यक्तित्व में समा गयी थी। अंग्रेज़ी भाषा पर पूर्णाधिकार होते हुए भी निराला ने राष्ट्र की सेवा के निमित्त 'खड़ीबोली' को ही काव्य-भाषा के माध्यम के रूप में अपनाया और अपने सहारे से नाममात्र की 'खड़ीबोली' को वस्तुत: खड़ा कर दिया।

निराला की अलंकार-योजना

युगलकिशोरसिंह 'श्याम'

काव्य में सौन्दर्य-सर्जना करने वाले प्रसाधनों में अलंकार ही सर्वोपरि हैं। किंतु अलंकार काव्य के बाह्य आभूषण नहीं, वे तो उसके अवयव ही हैं, जो कर्ण के कवच-कुंडल के सदृश उसके साथ ही उत्पन्न होते हैं, और उसके सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते हैं। इन अलंकारों की तुलना पेड़ों और लताओं के मनोहारी पुष्पों से की जा सकती है जो उन्हीं पेड़ों-लताओं से उत्पन्न होकर उनके प्रकृति रूप-लावण्य को और भी चमत्कृत कर देते हैं। वे पुष्प शोभा के बाह्य उपकरण नहीं कहे जा सकते। सारांश यह है कि अलंकारों को काव्य-सौन्दर्य का बाह्य प्रसाधन मानना एक बहुत बड़ी साहित्यिक भ्रान्ति है। अलंकार काव्य की आत्मा के रूप में भले ही न मान्य हों, किन्तु वे काव्य के अति-सुन्दर अवयव अवश्य हैं।

अलंकारों के बिना कविता-कामिनी का रूपविन्यास रसिकों के चित्त को लुभा ही नहीं सकता। वामन ने तो स्पष्ट घोषणा ही कर दी—'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्' —अर्थात् काव्य का ग्रहण ही अलंकारों से होता है। अलंकारों का महत्त्व इसलिए भी अधिक है, चूँकि उसमें लाक्षणिकता का विशेष पुट रहता है। अधिकांश अलंकारों के मूल में लक्षणा ही होती है; और जहाँ पर प्रयोजनवती लक्षणा होती है, वहाँ पर व्यंजना भी अनिवार्य रूप से रहती ही है, क्योंकि लक्षणा का प्रयोजन ही व्यंग्यार्थ का रूप धारण कर लेता है। तात्पर्य यह कि अलंकारों के प्रयोग से काव्य में लाक्षणिकता एवं व्यंजकता का समावेश होता है और इस प्रकार उत्तम काव्य की सृष्टि होती है। उदाहरण के लिए रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों में क्रमशः सारोपा और साध्यवसाना लक्षणा ही तो होती है। अतः यह निर्विवाद है कि अलंकारों के बिना काव्य में चारुता, मनोरंजकता, वक्रता एवं चमत्कारिता आ ही नहीं सकती; और केशव की ये अमर पंक्तियाँ भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करती हैं :

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजई, कविता, बनिता, मित्त॥

यह सब कहने का तात्पर्य यह है कि सुकवि के काव्य में अलंकारों की विद्यमानता अनिवार्य है। हिन्दी के प्राचीन काव्य की तो बात ही निराली है, आधुनिक

युग की कविता-कामिनी भी अलंकारों से ही सामाजिकों तथा रसिकों के चित्त को लुभाती और ललचाती है। निराला आधुनिक युग के एक महाकवि हैं। उनकी प्रेयसी कविता रानी भी अपने अमूल्य अलंकारों के कारण ही सहृदयों के हृदयों की हारिका बनी हुई है। निराला का काव्य-रत्नाकर अनेक उत्तमोत्तम अलंकार-रत्नों से जगमगा रहा है। उन्हीं में से कुछ विशेष प्रभावान् रत्नों की चयनिका पाठकों की भेंट करना मेरे इस निबन्ध का एक मात्र प्रयोजन है।

सर्वप्रथम अलंकारों की रानी उपमा के ही दर्शन निराला-काव्य में क्यों न कर लें? 'परिमल' की 'उसकी स्मृति' शीर्षक कविता में कवि को किसी सुन्दरी रमणी की स्मृति होती है और फिर भावावेश में वह उपमाओं की लड़ी-सी (मालोपमा) गूँथ देता है। उस रमणी की मधुर मुस्कान की अनेक उपमाओं का आनन्द लीजिए :

मृदु सुगन्ध-सी कोमल दल फूलों की,
शशि-किरणों की-सी वह प्यारी मुस्कान
स्वच्छन्द गगन-सी मुक्त, वायु-सी चंचल;
खोई स्मृति की फिर आई-सी पहचान;

यहाँ 'सुगंध-सी कोमल' निराला की निराली उपमा है। उसकी चाल की उपमा लघु लहरों से दी गई हैं :

लघु लहरों की सी चपल चाल वह चलती

उस सुन्दरी के लहराते उरझे काले बाल कवियों की मृदुल कल्पना के जाल जैसे मनोमोहक प्रतीत होते हैं :

मन्द पवन के झोंकों से लहराते काले बाल
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के-से जाल

केश-कलाप की कल्पना-जाल से दी गई नवीन उपमा कितनी सटीक है!

और पुन: स्वयं उस लावण्यवती की उपमा मानस मन्दिर की प्रतिमा से दी गई है :

वह विचर रही थी मानस की प्रतिमा-सी

यह उपमा भी अपनी नवीनता एवं मधुरता से मन को मुग्ध कर लेती है।

उस गोरी बाला की एक और उपमा का रसास्वादन कीजिए :

क्या जाने किसके लिए यहाँ आई थी
वह सुर-सरिता-सैकत-सी गोरी बाला।

यह उपमा भी निराला की एक नवीन और मौलिक उद्भावना है। 'सुर-सरिता-सैकत-सी' में अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है।

उस कविता की अंतिम पंक्तियों में रूपकातिशयोक्ति, विभावना (प्रथम) तथा विरोधाभास की त्रिवेणी हृदय को बरबस मुग्ध कर देती है :

वह कली सदा को चली गई दुनिया से,
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त।

उस नायिका तथा उनकी विरुदावली के उपमान क्रमशः कली और सौरभ हैं। सिर्फ इन्हीं का उल्लेख किया गया है। अतः रूपकातिशयोक्ति है। कारण रूप कली की अनुपस्थिति में भी कार्यरूप सौरभ का दिगंत में प्रसार होने से प्रथम विभावना है। कली के अभाव में सौरभ की उपस्थिति विरोध कथन जैसी मालूम पड़ती है, किन्तु यहाँ विराट् की मिथ्या प्रतीति है। किसी विशिष्ट-गुण-सम्पन्न व्यक्ति के निधन के पश्चात् भी उसकी कीर्ति-लता अपनी सुगन्ध से विश्व को आप्लावित रखती ही है। इसी प्रकार ध्यानपूर्वक देखने पर विरोध का शमन हो जाने के कारण विरोधाभास है।

इन्हीं पंक्तियों में प्रकारान्तर से अन्योक्ति भी सिद्ध की जा सकती है। किन्तु मुझे यहाँ रूपकातिशयोक्ति का रूप ही प्रधान जैसा लगता है। किसी सुन्दरी नव बाला का कली से सुन्दरतर उपमान और हो ही क्या सकता है? सुन्दरी बाला के लिए कली का उपमान काव्य में सुविख्यात और लोकप्रिय भी है।

मालोपमा का सौन्दर्य 'विधवा' शीर्षक कविता में भी देखने को मिल जाता है :

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

इष्टदेव के मन्दिर की पूजा, शांत दीप-शिखा, क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा और टूटे तरु की छूटी लता से भारतीय विधवा की उपमाएँ कितनी सम्यक् एवं मर्मस्पर्शिनी हैं! इनमें भारतीय विधवा जीवन की सारी कारुणिकता, विवशता एवं शुचिता साकार हो उठी है। इनको हृदयंगम कर हृदय करुणा-विह्वल हो जाता है। ये उपमाएँ भी निराला की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। इनमें निराला की काव्य-प्रतिभा मानों शतशः मुखरित हो उठी है।

कविता-कामिनी के परिधान पर उपमा के दो-चार नयनाभिराम छींटे और भी देखिए :

आँखें अलियों-सी
किस मधु की गलियों में फँसी

—'जागो फिर एक बार'

बाल-रवि-किरणों से हँसते नव नीलोत्पल

—'पंचवटी प्रसंग'

अब अलंकारराज रूपक की रूप-छवि का अवलोकन कीजिए। 'गीतिका' के एक गीत में एक सूखी डाल और पार्वती का रूपक कितना उपयुक्त है!

सूखी री यह डाल वसन बासंती लेगी ।
देख रहती करती तप अपलक,
हीरक-सी समीर-माला जप,
शैल-सुता अर्पण-अशना,
पल्लव - वसना लेगी—
वसन वासन्ती लेगी ।
हार गले पहना फूलों का,
ऋतुपति सकल सुकृत कूलों का
स्नेह सरस भर देगा उर-सर
स्मरहर को वरेगी
वसन वासंती लेगी ।

इस सांगरूपक के साथ-ही-साथ 'हीरक-सी समीर-माला' में उपमा और 'स्नेह' में श्लेष के सौन्दर्य की अनुभूति भी कीजिए ।

एक दूसरे गीत में भारत माता का एक सुन्दर रूपक (सांगरूपक) देखिए :

भारति, जय, विजय करे !
कनक, शस्य-कमल धरे ।
लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर - जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु - अर्थ - भरे ।
तरु - तृण - लता वसन,
अंचल में, खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल - कण
धवल - धार - हार गले ।

रूपक के कतिपय निदर्शन और भी लीजिए :

जीवन - प्रसून वह वृत्तहीन
खुल गया उषा-नभ में नवीन
धाराएँ ज्योति-सुरभि उर भर
बह चलीं चतुर्दिक कर्म-लीन ।—'परिमल' की 'प्रभाती'

गगन घन-विटपी, सुमन क्षत्र - ग्रह, नव ज्ञान
बीच में तू हँस रही ज्योत्स्ना-वसन-परिधान
कौन तुम शुभ्र किरण-वसना ?
मंदमय भर अङ्ग - गंध मृदु
बादल अलकावलि कुंचित ऋजु,
तार हार, चन्द्रमुख, मधुऋतु
सुकृत पुंज अशना—

'रहा तेरा ध्यान' शीर्षक इस गीत में प्रकृति का चित्रण प्रेयसी के रूप में किया गया है।

उपर्युक्त रूपकों में सूखी डाल, भारत-भूमि, प्रकृति आदि का मानवीकरण (Personification) किया गया है। यह मानवीकरण पाश्चात्य साहित्य में एक अलंकार के रूप में मान्य है, जिसे आधुनिक कवियों ने हृदय से अपना लिया है। निराला-काव्य में मानवीकरण के सुन्दर उदाहरण अतिशयता से मिल जाते हैं। एक सुन्दरी के रूप में संध्या का मानवीकरण देखिए :

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।

अवश्य ही यहाँ रूपक और उपमा की योजना के कारण मानवीकरण की शोभा और भी निखर उठी है। इसी प्रकार के सुन्दर मानवीकरण 'यमुना के प्रति', 'तरंगों के प्रति', 'जलद के प्रति', 'शेफालिका', 'नर्गिस' आदि कविताओं में बिखरे पड़े हैं। आधुनिक काव्य में मानवीकरण तथा प्रकृति के प्रति तादात्म्य भाव की प्रधानता है भी।

निराला-काव्य में अन्योक्तियों की तो भरमार ही जैसी है। 'वनबेला' शीर्षक कविता में कवि ने वनबेला के व्याज से साहित्यिकों के उपेक्षित एवं संघर्षमय एकाकी जीवन की ओर ही तो संकेत किया है, जो विश्व को शान्ति, शीतलता और आनन्द का दान करता है।

बोला मैं—बेला, नहीं ध्यान
लोगों का जहाँ खिली हो बनकर वन्य गान !
जब ताप प्रखर
लघुप्याले में अतल की सुशीतलता ज्यों भर
तुम करा रही हो यह सुगन्ध की सुरा-पान !

इसी प्रकार इसी कविता में राजपुत्र के व्याज से महत्त्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों के सुख एवं विलासमय जीवन पर व्यंग्य किया गया है।

'कुकुरमुत्ता' में भी अन्योक्ति और व्यंग्य की ही प्रधानता है। गुलाब का फूल पूँजीपति शोषकों का, और कुकुरमुत्ता देशी संस्कृति के प्रेमी सामान्य मानव का प्रतीक है। दो-चार पंक्तियाँ लीजिए :

अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।

'गीतिका' के एक गीत में निराला ने अभिसारिका और उसके प्रियतम के माध्यम से परमात्मा की अनुभूति के लिए जीवात्मा की व्याकुलता भरी चेष्टाओं की

ही व्यंजना की है। कैसी सुन्दर ग्रन्योक्ति हैं !

मौन रही हार—
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार,
... ...
शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहाँ जाऊँ ?
उन चरणों को छोड़, और
शरण कहाँ पाऊँ ?
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार
प्रिय पथ पर चलती; सब कहते शृंगार।

'जुही की कली' शीर्षक कविता में जुही की कली ग्रौर मलयानिल के बहाने किसी वियोगिनी नायिका ग्रौर उसके प्रवासी प्रियतम के मधुर पुनर्मिलन के संबंध में ग्रन्योक्तियाँ की गई हैं :

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी, स्नेह-स्वप्न मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बंद किए, शिथिल, पत्रांक में,
वासन्ती निशा थी;
विरह-विधुर-प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।

ग्रन्योक्ति का ग्रानन्द समूची कविता पढ़कर लीजिए। 'उल्लेख' ग्रलंकार की भी निराला की रचनाग्रों में कुछ कम योजना नहीं है। परिमल की 'तुम ग्रौर मैं' शीर्षक कविता में ग्रादि से ग्रन्त तक 'उल्लेख' की ही प्रधानता है। कुछ पंक्तियाँ लीजिए :

तुम तुङ्ग - हिमालय - शृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास
और मैं क्लांत-कामिनी-कविता।
तुम प्रम और मैं शान्ति,
तुम सुरा-पान-घन अन्धकार
मैं हूं मतवाली भ्रान्ति।

इन पंक्तियों में परमात्मा ग्रौर ग्रात्मा के सम्बन्ध को ग्रनेक रूपों में प्रदर्शित किया गया है। एक ग्रौर उदाहरण 'ग्रनामिका' की 'प्रिया से' शीर्षक कविता से लीजिए :

मेरे इस जीवन की है तू सरल साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना लतिका,
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय है तू कमल कामिनी
मेरे कुंज-कुटीर-द्वार की कोमल चरण-गामिनी,

यहाँ कवि अपनी प्रेयसी कविता का अनेक प्रकार से वर्णन कर रहा है।

'परिमल' की 'माया' और 'नयन' शीर्षक कविताओं में सन्देह अलंकार का निराली छटा का रस-पान कीजिए :

तू किसी के चित्त की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता?
या किसी दुख दीन की है आह तू
या किसी तरु की तरुण बनिता-लता?
यक्ष विरही की कठिन विरह-व्यथा
या कि तू दुष्यन्त-कान्त शकुन्तला?
या कि कौशिक-मोह की तू मेनका
या कि चित्त-चकोर की तू विधु-कला?

सारी कविता बड़ी सुन्दर है। कवि माया के स्वरूप का चमत्कारपूर्ण सन्देहात्मक वर्णन कर रहा है।

मद भरे ये नलिन-नयन मलीन हैं;
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी;
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं?

यहाँ नेत्रों के संबंध में कवि की सन्देहात्मक उक्तियाँ कितनी सरस हैं!

अब कुछ अन्य प्रमुख अलंकारों के नाम देकर उनके उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ।

परिकरांकुर :

कवि अपनी प्रेयसी कविता से कहता है :

प्रिये, छोड़ कर बन्धन मय छन्दों की छोटी राह!
गज गामिनि, वह पथ तेरा संकीर्ण कण्टकाकीर्ण
कैसे होगी उससे पार!

—'प्रगल्भ प्रेम' (अनामिका)

'गजगामिनी' का, साभिप्राय प्रयोग होने से उसमें 'परिकरांकुर' है।

विरोधाभास :

क्या जाने वह कैसी थी आनन्द सुरा अधरों तक आकर
बिना मिटाये प्यास गई जो सूख जलाकर अंतर!

—'प्रगल्भ प्रेम' (अनामिका)

इन पंक्तियों में विरोध की मिथ्या प्रतीति है। प्रेम की आनन्द-मदिरा से किसी की प्यास थोड़े मिटती है? वह तो और हृदय वाटिका को जला ही देती है,

फिर भी उसी जलन से आनन्द की अनुभूति होती है। यही है प्रेम की अलौकिकता।

'परिमल' की 'जलद के प्रति' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियों में एक ही साथ अपह्नुति, काव्य-लिंग, परिकरांकुर और अनुमान का जमघट-सा लग गया है :

जलद नहीं, जीवनद, जिलाया
जबकि जगज्जीवनामृत को।
तपन-ताप-संतप्त तृषातुर
तरुण-तमाल-तलाश्रित को।

यहाँ सत्य जलद को छिपाकर असत्य का प्रतिपादन करने से अपह्नुति है। प्रथम पंक्ति में जो कथन किया गया है उसका कारण शेष पंक्तियों में स्पष्ट करने से काव्यलिंग है। 'जीवनद' का प्रयोग साभिप्राय होने से परिकरांकुर भी है। प्रथम दो पंक्तियों में 'ज' की और अंतिम दो पंक्तियों में 'त' की बार-बार आवृत्ति से वृत्यानुप्रास की योजना स्पष्ट ही है।

'परिमल' की 'यमुना के प्रति' शीर्षक कविता में 'स्मरण' अलंकार की शोभा विशेष दर्शनीय है। यमुना और उसकी लहरियों को देखकर कवि को नटनागर श्याम, गोपांगनाओं और उनकी मनोमुग्धकारिणी लीलाओं की स्मृति हो आती है। इस कविता की कुछ सरस पंक्तियाँ देखिए :

यमुने तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान
पथिक-प्रिया सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान ?
बता कहाँ अब वह वंशीवट ?
कहाँ गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दा धाम ?
कहाँ छलकते अब वैसे ही
ब्रज-नागरियों के गागर ?
कहाँ भीगते अब वैसे ही
बाहु, उरोज, अधर, अम्बर ?

कहाँ तक गिनाऊँ ? सारी कविता स्मरण-अलंकारों की एक मनोहारिणी मंजूषा है जिनका दर्शन कर हृदय लोट-पोट हो जाता है।

इसी कविता में 'उदाहरण' अलंकार का एक सुन्दर निदर्शन देखिए :

आप आ गया प्रिय के कर में
कह, किसका वह कर सुकुमार
विटप-विहग ज्यों फिरा नीड़ में
सहम तमिस्र देख संसार ?

उत्प्रेक्षा अलंकार की एक सुन्दर बानगी से अपने चित्त को प्रफुल्लित

कीजिए ।

'पंचवटी प्रसंग' में शूर्पणखा अपने सुन्दर स्वरूप की सम्भावना करती है :

वायु के झकोरे से वन की लताएँ सब
झुक जातीं—नज़र बचाती हैं,
अंचल से मानों हैं छिपाती मुख
देख यह अनुपम स्वरूप मेरा ।

इन्हीं पंक्तियों में उपमानों—लताओं—का कथन होने तथा उपमेय शूर्पणखा के सुन्दर स्वरूप से उनके लज्जित या अपमानित होने से तृतीय प्रतीप की बाँकी छटा भी दर्शनीय है ।

इसी पंचवटी-प्रसंग कविता में अत्युक्ति के दो सुन्दर उदाहरण लीजिए । शूर्पणखा अपने रूप-लावण्य की अत्युक्ति करती है :

(१) **सृष्टि-भर की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्यभाग**
खींच कर विधाता ने भरा है इस अंग में

(२) **और यह भी सत्य है कि**
ऐसी ललाम वामा चित्रित न होगी कभी

द्वितीय उदाहरण में अनन्वयोपमा भी ध्वनित हो रही है ।

पाश्चात्य-साहित्य के एक अलंकार 'ध्वन्यर्थ-व्यंजना' (onomotopoeia) की सुन्दर योजना भी निराला की 'गीतिका' के एक गीत में देखने ही योग्य है :

मौन रही हार—
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार
कण-कण कर कङ्कण, प्रिय
किण-किण रव किङ्किणी,
रणन रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रङ्गिणी;

इन पंक्तियों में ध्वनियों से ही अभिसारिका की मधुर चेष्टाओं की मानों व्यंजना-सी हो जाती है ।

'प्रगल्भ प्रेम', 'आकुल-तान' जैसे पद भी पाश्चात्य साहित्य के विशेषण विपर्यय (Transfered epithet) के सुन्दर नमूने हैं ।

अन्त में 'पंचवटी-प्रसंग' की इन दो पंक्तियों को लीजिए :

विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में ।

इस अवतरण में अत्युक्ति और अतिशयोक्ति का सुन्दर समन्वय है । शूर्पणखा के नेत्रों की अत्यधिक प्रशंसा होने से अत्युक्ति और अयोग्य में योग्यता के प्रतिपादन से सम्बन्धातिशयोक्ति भी है ।

कितने अलंकारों के नाम गिनाऊँ ? निराला की रचनाएँ अलंकार-रत्नों की सुन्दर मंजूषाएँ हैं। उन रत्नों की अनन्तता में मेरा लघु हृदय विहग श्रांत और आनन्द-विह्वल होकर खो जाता है, और उनकी प्रखर प्रभा से उसकी आँखों में चकाचौंध-सी लग जाती है। इसीलिए वह कुछ ही रत्नों का संचय करने में समर्थ हो सका है, जो सहृदय पाठकों के कर कमलों में, एक तुच्छ भेंट के रूप में सादर और सप्रेम समर्पित है।

निराला की छन्द योजना

शिवप्रसाद गोयल

अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति-गति आदि से सम्बन्वित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य-रचना छंद कहलाती है ।[1] कविता-कामिनी की प्राणप्रतिष्ठा के लिए जहाँ प्रभविष्णु भाव-राशि एवं नूतन उद्भावनाओं की आवश्यकता होती है, वहाँ उसके बाह्य स्वरूप की अवतारणा, उसका सशक्त सुन्दर वेश-विन्यास, उपयुक्त छन्द-सज्जा पर आश्रित रहता है ।

निराला अनुपम काव्य-शिल्पी थे । वे काव्य-रूप के विचार-सरणि के, अभिव्यंजना-शिल्प के वाद-विशेष के किसी साँचे-विशेष में ढलकर नहीं चले । उनकी दृष्टि में नियमों को मानना गुलामी का चिह्न है । वे हिन्दी भाषा और साहित्य के अग्रदूत थे, उसे सब बंधनों से मुक्त कर उसकी प्राण-प्रतिष्ठा करने आए थे, वैभव-वैविध्य के उच्च सोपान पर पहुँचाने आए थे । वे किसी प्रकार की संकीर्ण रूढ़ियों के बंधन में न बँध पाए, सीमाओं का अतिक्रमण कर, विरोधों से लड़कर, अपने स्वरूप को, अपने काव्य को, काव्य के अवयवों को वे विराट् से विराट्तर भाव-भूमि पर प्रतिष्ठित कर गए । डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के शब्दों में "निराला का कलाकार एक विराट् वट-वृक्ष के समान है जो पुरातन सांस्कृतिक अतल से अपना मानसिक भोजन पाकर, अपनी विशाल भुजाओं से चारों दिशाओं से नवीन तत्त्व ग्रहण कर अपने नभ-स्पर्शी शीर्ष के महिमाजन्य सौन्दर्य से, अन्य कवियों को नीचे छोड़कर ऐहिक, आमुष्मिक तथा आध्यात्मिक चिंतनाओं के जटा-जाल को गह्वर करता हुआ खड़ा है ।[2] जब हम उनकी छन्द योजना पर विचार करते हैं तो वहाँ इसी तथ्य को सक्रिय पाते हैं । परम्परागत छन्द-योजना की संकीर्णता से निकलकर उन्होंने अपने काव्य में छन्द-विषयक अनेक प्रयोग किए । अनेक परम्परागत छन्दों में हेर-फेर करके तथा कहीं-कहीं दो या दो से अधिक छंदों को जोड़कर निराला ने उनकी काया ही पलट दी और नए-नए छन्दों का निर्माण कर डाला ।

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० ३२१ ।

२. निराला का साहित्य और साधना, पृ० २२८ ।

हिन्दी में यद्यपि मात्रिक, वर्णिक, गणवृत्त, तुकान्त, अतुकान्त, भिन्न तुकान्त, सभी प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु आधुनिक काल के, विशेषतः छायावाद-युग के, कवियों को मात्रिक छन्द ही विशेष रूप से प्रिय रहे हैं। मात्रिक छंद खड़ी-बोली के लिए तो बहुत ही उपयुक्त और सफल सिद्ध हुए हैं। निरालाजी ने भी मुख्य रूप से मात्रिक छन्दों को ही अपनाया है, किन्तु उनके मात्रिक छन्द प्रायः रूढ़ परम्परागत छन्द नहीं हैं, स्वयं अपने द्वारा गढ़े और सँवारे हुए छन्द हैं। उनके छन्दों को स्थूल रूप से निम्नलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं :

(१) सममात्रिक सान्त्यानुप्रास
(२) अर्द्धसम मात्रिक सान्त्यानुप्रास
(३) विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास
(४) मुक्त छंद
(५) संगीत रागाश्रित गीत तथा
(६) हिन्दीतर काव्य-परम्परा के छन्द

सममात्रिक सान्त्यानुप्रास छंद :

छायावादी कवियों को यह छंद विशेष रूप से प्रिय रहा है। 'परिमल' के प्रथम खण्ड की रचनाओं में निरालाजी ने इसी छंद को अपनाया है और प्रायः छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन किया है। इसीलिए 'परिमल' की भूमिका में उन्होंने कहा है—"प्रथम खंड में सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं, जिनके लिए हिन्दी के लक्षण-ग्रंथों के द्वारपालों को 'प्रवेश-निषेध' या 'भीतर जाने की सख्त मुमानियत है' कहने की ज़रूरत शायद न होगी।[1] इन छन्दों के प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या सम रहती है तथा प्रथम-द्वितीय और तृतीय-चतुर्थ चरणों में अन्त्यानुप्रास (तुक) मिलता है, जैसे :

वह नयनों का स्वप्न मनोहर हृदय-सरोवर का जलजात,
एक चन्द्र निस्सीम व्योम का, वह प्राची का विमल प्रभात,
वह राका की निर्मल छवि, वह गौरव रवि, कवि का उत्साह
किस अतीत से मिला आज वह यमुने, तेरा सरस प्रवाह ?[2]

निराला ने इनमें कहीं-कहीं सुविधानुसार परिवर्तन करके नवीन प्रयोग भी किए हैं। फारसी की बहर फायलातुन, फायलातुन, फायलातुन फायलुन के आधार पर निराला द्वारा निर्मित २७ मात्राओं के सममात्रिक सान्त्यानुप्रास छंद के नवीन प्रयोग का एक उदाहरण लीजिए :

भेद कुल खुल/जाय वह सू/रत हमारे/दिल में है।
देश को मिल/जाय जो पूँ/जी तुम्हारे/मिल में है।।[3]

---

१. परिमल, भूमिका, पृ० ८।
२. वही, यमुना के प्रति, पृ० ५१।
३. बेला, गीत, पृ० ५६।

इसमें तीन सप्तकों की आवृत्ति तथा दो लघु और दो गुरु का प्रयोग है ।

अर्द्धसम मात्रिक सान्त्यानुप्रास छंद :

अर्द्धसम मात्रिक छंद का प्रथम-तृतीय तथा द्वितीय-चतुर्थ चरण समान होता है । यद्यपि छायावादी कवियों ने अर्द्धसम मात्रिक छन्दों का पर्याप्त प्रयोग किया है, किन्तु निराला के छंद-सम्बन्धी प्रयोग छायावादी रचनाओं में अपना अलग महत्त्व रखते हैं । प्राचीन छंदों के रूपों में परिवर्तन करके उन्हें उन्होंने नये ढंग पर प्रस्तुत किया, साथ ही छंदों के अर्द्धसम मात्रिक और अक्षर-मात्रिक मुक्त छंदों का भी प्रथम प्रयोग उन्हीं के द्वारा हुआ ।

१३-१५ मात्राओं के अर्द्धसम सान्त्यानुप्रास छंद का उदाहरण निराला की 'खून की होली' नामक रचना में देखिए जिसकी शैली उर्दू के छंदों के निकट है :

युवक जनों की है जान, (१३ मात्राएँ)
खून की होली जो खेली (१५ मात्राएँ)
पाया है लोगों में मान, (१३ मात्राएँ)
खून की होली जो खेली ।।[१] (१५ मात्राएँ)

१५-१० मात्राओं के अर्द्धसम मात्रिक छंद का प्रयोग निराला की 'तिलांजलि' नामक कविता में देखिए :

धूसर सांध्य समय (१५ मात्राएँ)
विष भरता क्रन्दन । (१० मात्राएँ)
अन्तरिक्ष से झरता है (१५ मात्राएँ)
निस्तल अभिनन्दन ।।[२] (१० मात्राएँ)

१२ मात्राओं के बाद यति और अन्त में दो गुरु युक्त कुंडल छंद को अर्द्धसम मात्रिक रूप देकर निराला ने नवीनता प्रदान की है :

जननि जनक जननि जननि (६, ६ मात्राएँ)
जन्मभूमि भाषे । (६, ४ मात्राएँ)
जागो नव अम्बर भर (६, ६ मात्राएँ)
ज्योति स्तर बासे ।[३] (६, ४ मात्राएँ)

विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास छंद :

निरालाजी ने 'परिमल' के दूसरे खण्ड की रचनाओं को विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ कहा है । उनके अनुसार यह छंद ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चलता है । विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास छन्द के चारों चरणों के लक्षण समान नहीं होते, किन्तु उनके अन्त में तुकें मिलती चलती हैं । यह छन्द ६ चरणों का भी हो सकता

---

१. नये पत्ते, खून की होली ।
२. वही, तिलांजलि ।
३. गीतिका, गीत ७८ ।

है, जैसे अमृतधुनि या कुंडलिया छन्द । इसके सब चरण छोटे-बड़े भी हो सकते हैं, जैसे मुक्त छन्द में, किन्तु इसमें अन्त्यानुप्रास की योजना आवश्यक है ।

निराला का 'तुलसीदास' और 'कुकुरमुत्ता' तथा 'परिमल' के दूसरे खण्ड की रचनाएँ विषममात्रिक सान्त्यानुप्रास कविताएँ हैं । पंतजी ने भी इस छन्द का प्रयोग किया है, किन्तु उनके छन्दों में स्वर की क्रमिक लड़ियाँ या सम मात्राएँ अधिक मिलती हैं और निराला के छन्दों में बहुत कम । 'तुलसीदास' काव्य के छन्दों के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम चरणों में १६-१६ मात्राएँ हैं तथा तीसरे और छठे चरणों में २२-२२ मात्राएँ । तृतीय और षष्ठ चरण की तुकें मिलती हैं तथा साथ ही तीन-तीन पंक्तियों में १६-१६ मात्राओं के बाद भी तुकें मिलती हैं, देखिए :

बिखरी छूटीं शफरी अलकें,
निष्पात नयन नीरज पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता
निःसम्बल केवल ध्यान मग्न,
जागी योगिनी अरूप लग्न
वह खड़ी शीर्ण प्रिय भाव-मग्न निरुपमिता ।[1]

'परिमल' के दूसरे खण्ड की रचनाओं में प्रयुक्त विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास छन्दों के चरणों की मात्राएँ प्रायः असमान हैं, किन्तु तुकें मिलती चलती हैं, जैसे :

भैरवी भेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझसे पंजा,
लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरूँगा माँ
मैं अपनी अंजलि भर-भर,
उँगली के पोरों में दिन गिनता ही जाऊँ क्या माँ—
एक बार बस और नाच तू श्यामा ।[2]

छान्दसिक नवीनता की दृष्टि से 'राम की शक्तिपूजा' उनकी मौलिक शिल्प-कला का निदर्शन है । इस रचना का आधार तीन-तीन अष्टकों का संयुक्तीकरण है जिनकी पुनरावृत्ति से रचना में ओज और भास्वरता आ गई है ।[3] रचना के नाम के आधार पर इस छन्द का नाम भी शक्तिपूजा छन्द किया गया है । इसमें रोला के भी अनेक चरण हैं । यह विषम-मात्रिक छन्द का ही एक प्रयोग है ।

कुछ विद्वानों ने निरालाजी के विषम-मात्रिक सान्त्यानुप्रास और मुक्त छन्द

---

१. तुलसीदास, निराला, छंद ८३, पृ० ५२ ।
२. परिमल, निराला, आवाहन, पृ० १३७ ।
३. आधुनिक हिन्दी काव्य में छंद योजना, डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल, पृ० २९० ।

को समान माना है ।[1] किन्तु निरालाजी ने स्वयं इन दोनों छन्दों के अलग-अलग वर्ग किये हैं ।[2] मुक्त छन्द को निरालाजी ने सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त कहा है, तुक और मात्राओं के बन्धन से भी मुक्त, किन्तु विषम-मात्रिक छन्द में ये बन्धन होते हैं। मध्यानुप्रास निरालाजी के विषम-मात्रिक और मुक्त-छन्द दोनों में मिलते हैं ।

मुक्त-छन्द :

मुक्त छन्द हिन्दी काव्य को निरालाजी की एक महत्त्वपूर्ण देन है । मुक्त छन्द के प्रयोग के सम्बन्ध में हिन्दी काव्याकाश में निरालाजी का उदय एक धुमकेतु के समान हुआ जिसे देखकर काव्यमर्मज्ञ महारथी सहसा चौंक पड़े । सन् १६१६ में उनकी कविता 'जुही की कली' की रचना इसी छन्द में हुई । इस छन्द-प्रयोग का परिहास करते हुए काव्य-जगत् में इसे 'रबड़ छन्द', स्वच्छन्द छन्द, केंचुआ छन्द, 'कंगारू छन्द' आदि कई नाम दिये गए और यह छन्द काव्य-जगत् में गहन चर्चा का विषय बन गया । इस अभिनव छन्द-प्रयोग को लेकर उस समय निरालाजी का चारों ओर डटकर विरोध भी हुआ ।

मुक्त छन्द का निरालाजी द्वारा प्रयोग यद्यपि हिन्दी के लिए नया था किन्तु अंग्रेज़ी और यहाँ तक कि बंगला में भी उसका प्रयोग पर्याप्त पहले से हो रहा था । अंग्रेज़ी में अमरीकन कवि वाल्ट ह्विटमैन ने इस छन्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया और वहाँ इस छन्द को Free Verse या Verse Libre नाम दिया गया । अंग्रेज़ी से यह छन्द बंगला में रवीन्द्रनाथ टैगोर और माइकेल मधुसूदन के काव्य में आया और बंगला से प्रभावित होकर निराला ने इसका हिन्दी में सर्वप्रथम प्रयोग किया । इस प्रकार निराला इस छन्द के आविष्कारक न होते हुए भी हिन्दी में प्रथम प्रयोक्ता थे ।[3] और गहन विरोध के होते हुए भी उन्होंने अपने काव्य में सफलतापूर्वक इस छन्द का प्रयोग किया ।[4]

निराला ने मुक्त छन्द का सम्बन्ध वेदों से स्थापित किया है ।[5] गायत्री मंत्र को उन्होंने आर्यों की स्वच्छन्द प्रकृति का सबसे बड़ा परिचायक माना है । सम्भव है, मुक्त छन्द के प्रयोग में निरालाजी बंगला से प्रभावित न होकर वेदों से प्रभावित हुए

---

१. (क) आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प, डॉ० कैलाश वाजपेयी, पृ० १६४
   (ख) निराला की काव्यसाधना; वीणा शर्मा, पृ० ७६-८० ।
२. परिमल, निराला, भूमिका ।
३. काव्य का देवता : निराला, विश्वम्भर मानव, पृ० २०६, ११ ।
४. Nirala has made a distinct contribution to the technique of verse in Modern Hindi poetry. In the face of opposition he has successfully experimented 'Verse Libre'.
   —Modern Hindi Literature,
   Dr. Indra Nath Madan, page 76.
५. परिमल, निराला, भूमिका, पृ० १२-१५ ।

हों, किन्तु प्रतीत यह होता है कि मुक्त छन्द के विदेशी प्रभाव के कारण अपना घोर विरोध होते हुए देखकर उन्होंने खोज की और उसका मूल वेदों में पा लिया हो।

मुक्त छन्द क्या है, इस सम्बन्ध में बहुत भ्रम हैं। प्रायः भिन्न तुकान्त या अतुकांत छन्दों को मुक्त छन्द समझ लिया जाता है, किन्तु केवल अतुकान्तता से मुक्त छन्द नहीं रचा जाता। अतुकान्तता वर्णिक, मात्रिक तथा गणवृत्तों में भी मिलती है, किन्तु वे सब एक सीमा में बँधे हुए हैं, अतः मुक्त छन्द नहीं हैं। गणवृत्तों में गणों की श्रृंखला, मात्रिक वृत्तों में मात्राओं की समता और वर्णवृत्तों में वर्णों का एक विशेष क्रम या समानता मिलती है। इस प्रकार के नियमों में बँधकर चलने वाले छन्द मुक्त छन्द नहीं हैं। श्री जयशंकर प्रसाद, रूपनारायण पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, शियारामशरण गुप्त तथा पंतजी ने इन भिन्न तुकान्त और अतुकान्त छन्दों का प्रयोग किया है, किंतु वे सब मक्त छन्द की कोटि में नहीं आते।

मुक्त छन्द के सम्बन्ध में निरालाजी कहते हैं कि "मुक्त छन्द तो वह है, जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है।......मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-साहित्य उसकी मुक्ति।"[1] छन्द और मुक्तछन्द में विभेद करते हुए अन्यत्र उन्होंने कहा है, "छन्द भी जिस तरह कानून के अन्दर सीमा के सुख में आत्म-विस्मृत हो सुन्दर नृत्य करते, उच्चारण की श्रृंखला रखते हुए श्रवण-माधुर्य के साथ-ही-साथ श्रोताओं को सीमा के आनन्द में भुला रखते हैं, उसी तरह मुक्त छन्द भी अपनी विषम गति में एक ही साम्य का अपार सौंदर्य देता है, जैसे एक ही अनन्त महासमुद्र के हृदय की सब छोटी-बड़ी तरंगें हों, दूर-प्रसारित दृष्टि में एकाकार, एक ही गति में उठती और गिरती हुई।"[2] मुक्त छन्द पदों, गीतों, प्रगीतों और वर्ण-वृत्तों से तो भिन्न है ही, अपने ही क्षेत्र में भी वह कई प्रकार के ढाँचों से भी भिन्न होता है। अन्त में तुक न मिलने मात्र से भी कोई छन्द स्वच्छन्द नहीं हो जाता। मुक्त छन्द सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होता है। पंक्तियों का आकार छोटा-बड़ा होना भी मुक्त छन्द का लक्षण नहीं है। स्वयं निराला का विख्यात काव्य 'कुकुरमुत्ता' मुक्त छन्द का उदाहरण नहीं है। उसके चरण विषम अवश्य हैं, पर उसमें भी तुकें मिलती चलती हैं, जैसे :

अबे सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पायी खुशबू रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट।

इस प्रकार मुक्त छन्द गणों, मात्राओं और शब्दों की समानता वाले अतुकांत छंदों से ही भिन्न नहीं होता, वह उन छोटे-बड़े आकार वाले चरणों के छंद से भी भिन्न होता है जिनके अंत में तुकें मिलती चलती हैं। मुक्त छंद न तो छंद के बंधन

---

१. परिमल, निराला, पृ० १६।

२. वही, पृ० १६।

को अपनाता है और न तुक के आग्रह को। वह केवल लय पर आधारित रहता है। मुक्त छंद में चरण विषम रहते हैं, वह अतुकांत होता है तथा उसका मुख्याधार किसी प्रकार की लय है, जैसे निम्नलिखित उदाहरण में :

मुक्ति नहीं जानता मैं, भक्ति रहे काफी है।
सुधाकर की कला में अंशु यदि बनकर रहूँ
तो अधिक आनन्द है
अथवा यदि होकर चकोर कुमुद नैश गंध
पीता रहूँ सुधा इंदु-सिंधु से बरसती हुई
तो सुख मुझे अधिक होगा ?
इसमें संदेह नहीं,
आनन्द बन जाना हेय है,
श्रेयस्कर आनन्द पाना है।[1]

निराला ने परम्परागत छंदों के प्रचलित ढाँचों पर कुठाराघात करके अपने घोर विरोध से तनिक भी विचलित न होते हुए मुक्त छंद की नई लीक डालकर बड़े जीवट से काम लिया। छंद-प्रयोग के क्षेत्र में यह एक क्रांतिकारी चरण था। उनकी 'जुही की कली', 'अनामिका', 'नये पत्ते', 'संध्या-सुन्दरी', 'भिक्षुक', 'विधवा', 'पंचवटी-प्रसंग', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'जागो फिर एक बार', 'शेफालिका' आदि मुक्त छंद में लिखी अमर कविताएँ हैं।

संगीत रागाश्रित गीत :

मुक्त छंद के निर्भीक प्रयोक्ता होते हुए भी काव्य में छंद और संगीत की ओर निराला का विशेष झुकाव रहा। उनकी अधिकांश रचनाएँ छंदबद्ध और गीतात्मक ही हैं। अपने काव्य-जीवन के प्रारम्भ में उनका काव्यादर्श चाहे कुछ रहा हो, किन्तु 'गीतिका' के रचनाकाल से उनका झुकाव गेय काव्य की ओर अधिक हो गया था। इसमें एक ओर तो उनका अपना संगीत-प्रेम काम कर रहा था और दूसरी ओर तुलसी, सूर, मीरा आदि के पदकाव्य की प्रेरणा के साथ-साथ रवीन्द्र संगीत की प्रतिस्पर्धा भी काम कर रही थी। हो सकता है, रवीन्द्र-संगीत के समान निराला-संगीत का सपना उन्होंने कभी देखा हो।[2] 'गीतिका' काव्य और संगीत के समन्वय पर बल देने के लिए ही रची गई।[3] 'बेला' में अनेक गीत हैं। 'अर्चना', अराधना और 'गीत गुंज' की रचनाओं में भी गेय तत्त्व की प्रधानता है। गीतिका की रचनाएँ धम्मार, झपताल, चौताल, तीन ताल, दादरा आदि अनेक राग-रागिनियों में रची गई हैं, जिनके उच्चारण में निराला ने कुछ स्वतन्त्रता से काम लिया है। गीतिका के गीतों के संगीत के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है—"हिन्दी संगीत की शब्दावली और

---

१. परिमल, निराला, पंचवटी प्रसंग, पृ० २२०-२२१।
२. काव्य का देवता, निराला, विश्वम्भर मानव, पृ० २१६।
३. देखिए गीतिका, निराला, भूमिका।

गाने का ढंग दोनों मुझे खटकते रहे। न तो प्राचीन 'ऐसो सिय रघुबीर भरोसो' शब्दावली अच्छी लगती थी, यद्यपि इसमें भक्तिभाव की कमी न थी, न उस समय की आधुनिक शब्दावली 'तोप तीरें सब धरी रह जायेंगी मगरूर सुन', यद्यपि इसमें वैराग्य की मात्रा यथेष्ट थी। हिन्दी गवैयों का सम पर आना मुझे ऐसा लगता था, जैसे मज़दूर लकड़ी का बोझ मुकाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चिन्त हुआ।··· प्राचीन गवैयों की शब्दावली संगीत की संगति की रक्षा के लिए किसी तरह जोड़ दी जाती थी; इसलिए उसमें काव्य का एकान्त अभाव रहता था। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है। ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लाञ्छन लगता है, उससे भी बचने का प्रयत्न किया है। दो-एक स्थलों को छोड़कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छन्दशास्त्र की अनुवर्तिता की है। भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढंग लिये हुए हैं। साथ-साथ उनके व्यक्तीकरण में एक-एक कला है···जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव, तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है। ताल प्रायः सभी प्रचलित हैं, प्राचीन ढंग रहने पर भी वे नवीन कण्ठ से नया रंग पैदा करेंगी।[1]

निराला ने ठुमरी, कजली, कव्वाली आदि लोकधुनों पर भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। कजली की धुन पर लिखी हुई एक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

काले काले बादल छाये ना आये वीर जवाहरलाल
पुरवई की हैं फुफकारें, घन-घन को विष की बौछारें
हम हैं जैसे गुफा में समाये, ना आये वीर जवाहरलाल
महँगाई की बाढ़ बढ़ आई, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई
भूखे नंगे खड़े शरमायें, ना आये वीर जवाहरलाल।[2]

हिन्दीतर काव्य-परम्परा के छन्द

निराला उर्दू, फारसी, बंगला और अंग्रेज़ी के छन्दों से भी प्रभावित रहे हैं और इन भाषाओं के छन्दों का भी अपने हिन्दी काव्य में उन्होंने सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। उन्होंने उर्दू-फारसी के गज़ल, ख्याल और रुबाई छन्दों को अपनाया है। उर्दू की मुतफ़ायलुन मफ़ाइलुन मफ़ाइलुन फ़इल बहर के वजन पर निर्मित निराला की एक ग़ज़ल देखिए :

ये टहनी से हवा की छेड़छाड़ थी मगर
खिलकर सुगन्ध से किसी का दिल बहल गया
खामोश फतह पाने को रोका नहीं रुका
मुश्किल मुकाम जिन्दगी का जब सहल गया।[3]

---

१. देखिए गीतिका, निराला, पृ० ६।
२. बेला, निराला, गीत ४६।
३. बेला, निराला, गीत ७५।

एक अन्य उदाहरण लिजिए :

बिगड़ कर बनते और बन कर बिगड़ते एक युग बीता।
परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे।[1]

उन्होंने बंगला के त्रिपदी और पयार छन्दों को भी हिन्दी में अपनाया है। 'अणिमा' में अंग्रेज़ी के सॉनेट (Sonnet) छन्द के अनुकरण पर भी अनेक चतुर्दश-पदियाँ लिखी गई हैं 'अणिमा' की 'श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित के प्रति', 'सन्त रविदास के प्रति', 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' तथा 'श्रद्धांजलि' कविताएँ सॉनेट के ढंग पर लिखी गई हैं। आचार्य शुक्ल के प्रति उनकी श्रद्धांजलि नामक रचना का एक उदाहरण लीजिए जो सानेट के ढंग पर रचित है :

अमा निशा थी समालोचना के अम्बर पर,
उदित हुए जब तुम हिन्दी के दिव्य कलाधर।
दीप्त द्वितीया हुई लीन, लिखने से पहले,
किन्तु निशाचर संध्या के अन्तर में दहले।
स्पष्ट तृतीया, खिंची दृष्टि लोगों की सहसा,
छिड़ी सिद्धि साहित्यिक से, तुमसे जब वचसा।
मुक्त चतुर्थी, समालोचना-वधू ब्याह कर,
लाए तुम, पंचमी काव्यवाणी अपने घर।
षष्ठी छः ऐश्वर्य प्रदर्शित कोश-प्राण में,
शिक्षण की सप्तमी, महारवि सत्य ज्ञान में।
दिये अष्टमी आठों वसु टीकाओं में भर,
नवमी शांति ग्रहों की दशमी विजित दिगम्बर।
एकादशी रुद्रता, रामा कला द्वादशी,
त्रयोदशी प्रदोश-गत चतुर्दशी रत्न शशी।[2]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में निराला का छन्द शिल्प की प्रौढ़ता, विविधता तथा परिष्कृति आदि से अन्त तक व्याप्त है। उन्होंने परम्परागत छन्दों का भी प्रयोग किया है और नये छन्दों का निर्माण भी किया है, जिसमें मुक्त छन्द से लेकर कजली, बहरें और गज़लें तक मिलती हैं। साथ ही विदेशी भाषाओं के छन्दों का भी उन्होंने हिन्दी में सफल प्रयोग किया है। मुक्तछन्द हिन्दी काव्य को उनकी एक महान् देन है। वास्तव में निराला का निरालापन सबसे अधिक उनके छन्द-प्रयोग में प्रतिफलित हुआ है।

---

१. बेला, निराला, गीत ७५।
२. अणिमा, निराला, 'श्रद्धांजलि', पृ० २६।

राम की शक्तिपूजा

रमेश कुन्तल मेघ

कविश्री निराला की 'राम की शक्तिपूजा' एक ऐसी रचना है जिसे आज की भाषा में 'संश्लिष्ट कविता' (टोटल पोएट्री) कह सकते हैं। कलावस्तु के रूप में यह एक विलक्षण रूप (यूनिक फार्म) वाली भी है। इसमें खुले वातास वाले रंगमंच की तरह एक विशाल रंगफलक है जिसमें 'आज' की समरभूमि के युद्ध का पर्दा गिरते ही 'आज की अमानिशा' में राम की मनोभूमि का द्वन्द्वयुद्ध शुरू हो जाता है। सारा काव्य मिथक के प्रभामंडल में लिपटा हुआ होकर भी यथार्थता के सूर्य से ज्योतिर्मय हो उठता है। काव्य में प्रधान मिथक में शक्तिपूजा के रूप में रहस्यवाद गुँथ जाता है, तथापि मिथक अन्तर्लीन नहीं हो पाती। अलबत्ता मिथकीय चेतना खंडित हो जाती है। मिथकीय चेतना के खंडित होने के साथ-साथ 'शक्ति' के धार्मिक अर्थों के अलावा सामाजिक, ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक अर्थकदंब खिल उठते हैं। इस तरह यह कविता मिथक और रहस्य, धर्म और अतिप्राकृतिक पर आरूढ़ होकर भी सम-सामयिक यथार्थता का आख्यान करती है।

इसमें कथा का आख्यान अभिनय तथा कार्यव्यापार के तत्त्वों द्वारा हुआ है। इसलिए इसमें कुदरतन नाटकीयता का प्रचुर समावेश हो गया है। कुशल नाटकीय-करण का सूत्र है—"बताओ नहीं; दिखाओ और अभिनीत करो!" इसलिए इसमें काव्य और नाटक, दोनों बखूबसूरत उभर आए हैं। फिर भी, 'शक्तिपूजा' न तो महाकाव्य है और न ही काव्यात्मक नाटक, बल्कि एक महाकाव्यात्मक कविता (एपीकल पोएट्री) के रूप में इसमें नाटकीयता की खूबियाँ पाई जाती हैं। इस कविता की इतिवृत्त-पद्धति में तो नाटकीय कार्य गुँथते हैं तथा विवरण-प्रवाहों में चित्रात्मक फलक। इस वजह से 'शक्तिपूजा' में नाटक और काव्य, चित्रकला और शब्दसंगीत, विद्वत्ता और भावुकता, रोमांटिकता और आधुनिकता के सौंदर्य-तत्त्वों की रंगारंग छटा छिटकी है। अतः 'राम की शक्तिपूजा' काव्यभूमि पर चित्रकला, काव्यकला, नाट्य-कला, संगीतकला आदि का निवेदन करने के कारण एक संश्लिष्ट कविता बन गई है।

संश्लिष्ट-कविताधर्मा 'शक्तिपूजा' के **विलक्षण** रूप होने के भी कुछ अन्य कारण हैं। नाटक की नाटकीयता में प्लाट (अर्थात् कथा का सुनियोजित कार्यव्यापार

में रूपायन) के अंतर्गत आकर्षण, रोमांच एवं प्रतिफलन का चक्र घूमता है जो 'संधियों' के विरामों में बहुविध संवेगों को गहराई से अनुभूत कराते हैं। इन्हीं आधारों पर संस्कृत आचार्यों ने संधियाँ रची हैं। 'शक्तिपूजा' की कथा कथानकधर्मा होकर भी क्लासिकल बंधन में नहीं जकड़ती, प्रत्युत यह रोमांटिक रूप में क्लासिकल भव्यता को धारण करने का ज़बर्दस्त प्रमाण होती है। रोमांटिक रूप के विन्यास के कारण इसमें एक ओर कवि की आत्मा की कथा प्रक्षेपित हुई है, दूसरी ओर मिथक में समसामयिक चेतना गुँथ गई है, और तीसरी ओर दिवास्वप्नों, फान्तासियों, विवरणों, संवादों के सिद्धहस्त तकनीकों का इस्तेमाल हुआ है। अतः कविता का रूप चेतना के खंडों में पिरोया गया है और 'पूर्वदीप्ति' (फ्लैश-बैक) प्रणाली के द्वारा चिंतन और संदर्शन का साक्षात्कार हुआ है। इसके विलक्षण रोमांटिक रूप की ही यह खूबी है कि इसके लगभग हरेक खंड में कला का नया प्रयोग है। पहला खंड दिन में घटी घटनाओं को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत करना है। यह प्रस्तुति बहुव्रीहि-समास शृंखलाओं से गुम्फित है और हिन्दी में संस्कृत शब्दावली के ध्वनि-सौंदर्य को धारण करने की कुशलता का अद्भुत प्रमाण भी है। यमक की झमक से गमकते हुए छन्द चरण श्रीहर्ष के प्रभाव की याद दिलाते हैं जहाँ कला का परिपाक बौद्धिक चिंतन से होता है। इसी खंड में लौटती हुई वानर सेना भारवि के, जैसे अर्थगौरव से गर्भित है। दूसरे खंड में लंका में बिताई गई रात के कालिदासीय भावोन्मद दिवास्वप्नचित्र हैं। तीसरा खंड हनुमान की अतिमानवीय (सुपरह्यूमेन) शक्ति तथा अतिप्राकृतिक (सुपरनेचुरल) कार्यों से जुड़ा है और तुलसीदासीय कौशल से व्यंजित है। चौथे खंड में विभीषण तथा जाम्बवान की आत्मीय सलाहें हैं जिनमें छायावादी वैयक्तिकता की भी झाँकी है। और अन्ततः पाँचवें खंड में राम द्वारा शक्ति की सांस्कृतिक कल्पना एवं तांत्रिक साधना का अंकन है। इस तरह इस सम्पूर्ण कविता की भाषा की अभिव्यंजनाओं में अकादमीय परंपरा का एक अभ्यासी इतिहास मिलता है जो कवि निराला के अनुशीलन का भी सबूत है। इस रचना के विलक्षण रूप के अन्तर्गत हम देखते हैं कि कई ढंग के मिथकीय पात्र कई ढंग से आए हैं। दो पात्र तटस्थ-क्षेत्र में आसीन हैं। वे विचार-पक्ष का भव्य एवं उदात्त उत्कर्ष करते हैं। वे हैं विभीषण तथा जाम्बवान। दो पात्र कार्य के अतिरंजित क्षेत्र में समासीन हैं। वे हैं हनुमान और दुर्गा। दो पात्र नेपथ्य क्षेत्र में रहते हैं : रावण और सीता। वे क्रमशः भावना-क्षेत्र का तीव्र एवं ललित उन्मीलन करते हैं। इनमें से खलनायक रावण आराधना से शक्ति को सिद्ध करके उसके माध्यम से सारे वातावरण में अन्धकार-धर्मी होकर हावी है। सीता विद्युत्-रेखा-सी कौंधकर राम में सौंदर्योदात्त लालित्य तथा धीर करुणा का अभ्युदय कराती है। इस तरह नायक श्रीराम के अलावा छै पात्र विचार-चरण, भावना-चरण तथा सौंदर्य-चरण की मैत्री कराते हैं। खलनायक रावण और महाशक्ति ने अतिप्राकृतिक (सुपरनेचुरल) तत्त्वों का संधान किया है जो मिथकीय जादू से बंधे हैं। किन्तु इसे समतोल करने के निमित्त अतिमानवीय (सुपरह्यूमेन) तत्त्व को उभारा गया है। इसका अद्भुत एवं अलौकिक पक्ष है हनुमान; तथा मानवीय एवं रहस्याराधक पक्ष है राम।

इस भाँति राम एवं हनुमान (नर-वानर) के मेल से एक पूरे धीर नायकत्व द्वित्व की प्रतिष्ठा होती है, तो रावरण एवं शक्ति के मेल से अन्याय और अन्धकार फैलता है। संपूर्ण कविता में सूर्य और उद्धार तथा अन्धकार और पतन के बीच भी एक निरंतर संघर्ष मचा हुआ है। इस संघर्ष में विचार-तत्त्व की प्रधानता होने के कारण नाटकीयता रंगमंचीय कार्य को अन्तर्मुखी संदर्शन में तब्दील कर देती है। इसीलिए 'शक्तिपूजा' राम के मनोद्वंद्व की आधुनिक पुनर्व्याख्या-सी हो जाती है। ऐसे मौकों पर कविता के संवाद या विवरण चित्र-एवं-प्रतीक-युगल हो जाते हैं। हनुमान के आरोहण के मौके पर शिव द्वारा पार्वती को सावधान करना, विभीषण द्वारा राम की उदासीनता के प्रति चिंता व्यक्त करना, माया-अंजना द्वारा हनुमान को प्रबोध देना, राम द्वारा अपने मंत्रपूत बाणों की असमर्थता का प्रत्याख्यान करना, राम द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना की उद्भावना आदि विचार-चरण के प्रसारकर्त्ता प्रसंग हैं जहाँ पात्र या घटनाएँ प्रतीक (सिम्बल) में भी रूपांतरित हो जाती हैं। प्रतीक होकर वे एक ओर तो संपूर्ण मिथक-चक्र की आधुनिक तथा कविमुखी व्याख्या करती हैं तो दूसरी ओर संपूर्ण पौराणिक कथा के परिपार्श्व में दर्शन की एक परोक्ष धारा प्रवाहित करती चलती हैं। यह इस कविता के रूप की द्विविधभ्रांति (एम्बिग्विटी) है। इसका मूल कारण तो राम का निरूपित शील है। अगर 'सरोज स्मृति' (१९३५) में नायक स्वयं कवि निराला हैं और वे **पिता** तथा **पति** रूप में आये हैं, तो उसी तनाव की सामाजिक यंत्रणा तथा आधुनिक फूहड़ता (एब्सर्डिटी) को भोगने वाले निराला ने अब 'राम की शक्तिपूजा' (१९३६) में राम को चुनकर उस सबको अभिव्यक्त किया है। इस कविता में राम **योद्धा** तथा **साधक** रूप में आए हैं। पहले के निरर्थक एवं हारते रहने वाले निराला के नवीन पुरुषोत्तम राम अब शक्ति के सिद्धसाधक तथा विजयी हो जाते हैं। इस तरह 'शक्तिपूजा' में मिथकों की स्वभावत: नई व्याख्याएँ हुई हैं तथा अन्यायपूर्ण शक्ति (श्यामा) को मंगलमयी शक्ति (दुर्गा) में बदलने का रास्ता भी पाया गया है : रावण के बजाय पुरुषसिंह राम के माध्यम से। इस तरह कृति की मिथकों के आधुनिक संदर्भ मिल जाते हैं।

सारांश में 'राम की शक्तिपूजा' एक **संश्लिष्ट कविता** है, जिसका एक **विलक्षण रूप** है, तथा जिसमें नायक **राम** और कवि **निराला** का अंतरावलंबन हुआ है और जिसमें मिथकों के व्याख्यात्मक प्रतीक आधुनिक संदर्भों में झिलमिला उठे हैं।

●●

निराला ने श्रीराम को वैष्णव तुलसी के माध्यम से, तथा लगभग उसी भाव से अभिनंदित किया है। किन्तु 'शक्तिपूजा' में एक शाक्तराम तथा तांत्रिक-यौगिक साधनाओं का भी समावेश है। यहाँ हनुमान वैष्णव भक्ति का तथा राम शाक्तसाधना का विधान करते हैं। महादुर्गा तथा महाकाली (श्यामा) की उपासना को (बंगाल में) वेदांत तथा वैष्णव साधना से जोड़ने वाले रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद

रहे हैं । अतः निराला ने यहाँ राम को इसी रूप में अवतरित किया है । इस कविता की मिथक के मूलाधार तुलसी या वाल्मीकि के महाकाव्य न होकर बँगला की 'कृतिवासीय रामायण' है । 'कृतिवास' में रावण काली के कृपापात्र के रूप में अंकित हुआ है जिससे राम चिंतित हो उठते हैं कि उनके द्वारा रावण-संहार नहीं हो सकेगा और जनकनंदिनी सीता का उद्धार नहीं हो पाएगा ।[1] अतः विभीषण रामचन्द्र को चंडी-आराधना करने का सुझाव देते हैं ।[2] विभीषण ही हनुमान को देवीदह जाकर वहाँ से नीलपद्म लाने का विमर्श देते हैं । जब राम दुर्गोत्सव करते हैं तब महेश्वरी छल से एक पद्म हर लेती है । तभी राम निश्चय करते हैं कि जब सर्वजन उन्हें नीलकमलाक्ष कहते हैं तो क्यों न वे अपना नीलोत्पल देवी को अर्पित करके संकल्प पूरा कर लें ।[3]

---

१. असित वरणी काली करेले दशानन
रूपेर छटाय घन तिमिर नाशन ।···
आमा होइते नाइ हेल रावण संहार
जनकनंदिनी सीता ना होइल उद्धार ।···

२. कांदेन करुणामय प्रभु परात्पर,
कातर हइया तबे, कण विभीषण,
एक कर्म करो प्रभु निस्तार कारण
तुषिते चंडीर मन करोह विधान,
अष्ठोत्तर शत नीलोत्पल करो दान
देबेर दुर्ल्लभ पुण्य यथा तथा नाई ।···
... ...
विभीषण कब बीर हनुमान काछे ।
अबनीते देबीदहे नीलपद्म आछे ।
एक बत्सरेर पथ हइबे निश्चय ।
हनु कहे आन दिबो नाहक संशय ।

३. पुलकित चित विधार रचित, मूलमंत्र उच्चारणे ।
क्रमे नीलोत्पल सहस्रेक दल, संपे शंकरी चरणे ।
करिलेन छल, बुझिते सकल, देबी हर मनोहरा ।
हरिलेन आर एक पद्मतार महेश्वरी तत्परा ।···
जन्मावधि दुःख मोर कि कहिब आर···
निश्चय बुझिनु सीता ना होइलो उद्धार···
भाविते भाविते राम करिलेन मने
नील कमलाक्ष मोरे बले सर्ब्बजने

'राम की शक्तिपूजा' में आराधना करने का सुझाव विभीषण के बजाय जाम्बवान की ओर से आता है तथा यहाँ शक्ति की कल्पना धार्मिक एवं शाक्त न होकर 'मौलिक' अर्थात् सांस्कृतिक एवं प्रतीकात्मक है। इसी लड़ी में 'देवी भागवत' में रावणवध के अंतिम दिन के पहले देवीपूजा का उल्लेख है। यहाँ 'शक्तिपूजा' के के जाम्बवान तथा 'कृत्तिवास' के विभीषण के बजाय नारद राम को देवी के नवरात्र-पूजन का व्रत-विधान बताते हैं क्योंकि इसमें ही रावणवध का उपाय है। तब अष्ठमी की आधीरात को सिंहारूढ़ देवी प्रसन्न होकर प्रकट होती हैं[1] इसके अलावा 'शिव महिम्नस्त्रोत' में पुण्डरीकाक्ष विष्णु द्वारा शिव की भक्तिपूजा करते समय जब एक हज़ार कमलों में-से एक की कमी हो गई तब उन्होंने अपना एक नेत्र अर्पित करने का प्रयत्न किया। इस आराधना पर शिव प्रसन्न हो गए। 'शक्तिपूजा' में एक हज़ार के बजाय एक सौ आठ कमल तथा शिव की आराधना के स्थान पर दुर्गोत्सव का विधान हुआ है, किन्तु 'शिव महिम्न स्त्रोत' के समाधियोगी शिव का एक संवाद अवश्य शामिल कर लिया गया है जहाँ वे हनुमान के पौराणिक देव प्रतीक का भाष्य करते हैं।

अतएव उपर्युक्त तीनों आधारों से निराला ने नायक के अंतर्द्वंद्व तथा चिंता के बोध को ग्रहण करके उसे नाटकीय बना दिया है। इसमें दो केन्द्रीय द्वंद्व हैं जिनके दुहरे स्तर हैं। पहले में अतुल-बल शेष-शयन (शेषशायी विष्णु के अवतार) राम को

जुगल नयन मोर फुल्ल नीलोत्पल,
संकल्प करिब पूर्ण बुझिबे सकल
एक चक्षु दिब आमि देबीर चरणे···
... ...
चक्षु उपाड़िते राम बसिला साक्षाते,
हेन काले कात्यायनी धरि लेन हाते।
रावणे छाड़िनु आमि, विनाश करहु तुमि,
एत बलि हैला अंतर्धान।

१. "विधिवत् पूजनं तस्याश्चकार व्रतवान हरिः
संप्राप्ते चाश्विने मासि तस्मिन् गिरिवरे तदा।
अष्टमयां मध्यरात्रे तु देवी भगवती हि सा,
सिंहारूढा ददौ तत्र दर्शनं प्रतिपूजिता
गिरिश्रृंगे स्थितोऽवाच राघवं सानुजं गिरा।
हत्वाऽथ रावणं पापं कुरु राज्यं यथासुखं।
एकादशसहस्राणि वर्षाधि पृथिवीतले।"
—'देवीभागवत', तृतीय स्कंध, अध्याय ३०।

रावण-जय-भय का संशय हिला रहा है । इस द्वंद्व को अधिक मुखर करने में जानकी की यादों का वैयक्तिक एवं रोमांटिक संसार झिलमिलाया है । एक ओर राम जानकी के बावत ललित-ललाम **दिवास्वप्न** देखते हैं, तो दूसरी ओर विभीषण खल रावण द्वारा जानकी ,को दिये जाने वाले आगामी दुःखों की अनुमितियाँ करके **संत्रास** का आभास देते हैं। दूसरा द्वंद्व है दिग्विजय अर्थ का । राम में दिग्विजय की भावना उभरती और डूबती है । वे अपनी खिन्न वानर-वाहिनी के साथ असमर्थ और शंकित होकर चल रहे हैं, उनके धनुष की डोर गिर चुकी है और वे विकल हो रहे हैं । अब उनमें विश्वास नही रहा कि वे रावण को हरा सकेंगे । ऐसे स्थिर राघवेंद्र को जानकी स्वयंवर में धनुर्भंग की याद आती है जब उन्होंने रावण को हराया था । अतः उनका हाथ पुनर्वार धनुर्भंग को उठता है और उनके हृदय में विश्वविजय की भावना फिर भर आती है और पुनः उन्हें समग्र नभ को आच्छादित करने वाली भीमामूर्ति दिखाई देती है जिसके सम्मुख उनके हाथ बँध गये थे । अतः एक ओर उन्हें रावण का खलखल अट्टहास सुनाई देता है तो दूसरी ओर वे रो पड़ते हैं (भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्ता-दल) । वे जानते हैं कि विजय समर से प्राप्त होगी । समर में निर्णायक 'शक्ति' है । उसके लोकमंगल विधायक तथा मिथकीय, दो रूप उभरे हैं । राम की शक्ति में गौरव के साथ गर्व भी समा गया है तो महाशक्ति रावण के आराधन में बँधकर अन्यायी साधक का पक्ष ले रही हैं । इस प्रसंग में 'शक्ति' का सामाजिक (अन्याय जिधर, है उधर शक्ति) तथा धार्मिक (देखा, है महाशक्ति रावण को लिए अंक) अर्थात् दुहरा प्रतीकीकरण द्वंद्व को दो परिवेश दे देता है । शक्ति द्वारा राम की परीक्षा नाटकीय नियताप्ति की ओर बढ़ती है तथा 'पुरुषसिंह' रूप में राम द्वारा आत्म-साधना उनकी आराधना को गर्व से विमुक्त करती है । यहाँ वैष्णव **महाभाव** का बोध अनुस्यूत है ('लख महाभाव-मंगल पद-तल धँस रहा गर्व, मानव के मन का असुर मन्द हो रहा खर्व') । इस तरह रावण को गौरवशाली **राम के गर्व** का प्रतीकत्व देकर निराला ने संपूर्ण मिथक को अन्यापदेश (एलीगरी) में ढाल दिया है । इस भाँति 'शक्ति' की कल्पना मिथकीय स्त्रोत से हासिल की जाने पर भी मनोवैज्ञानिक चिति (साइके) का रूप हो जाती है, सामाजिक दर्शन में अन्याय तथा मंगल के प्रकार्यों के बीच विरोध में झूलती है और अन्ततः एक महत् **सांस्कृतिक प्रतीक** होकर विश्व में व्याप्त हो जाती है । इस प्रतीक के स्वरूप में भूधर पार्वती है, सिंधु सिंह है, दशदिक् दशहस्त हैं, अंबर दिगंबर शशिशेखर शिव हैं तथा मानवमन का गर्व ही महिषासुर है । यही मिथक की पुनर्रचना है जिसे कवि ने 'शक्ति की मौलिक कल्पना' कहा है । इस क्रम में सूर्यकुल राम **पुरुषसिंह** (सिंह=सिंधु) रूप हो जाते हैं जो एक आर्केटाइपल बिंब है । यह बिंब दशभुजा दुर्गा के **जनरंजनसिंह** के धार्मिक प्रतीक में अर्थांतरित होता है और यही पर्वतपार्वती चरण पर गरजता **सिंधुसिंह** अर्थात् जीवन-तत्त्व हो जाता है । इस प्रतीक-रचना का विश्लेषण स्वयं कवि ने भी किया है ('जनरंजन-चरण-कमल-तल धन्य सिंह-गर्जित ! यह **मेरा प्रतीक** मातः समझा इंगित; **मैं सिंह,** इसी भाव से करूँगा अभिनंदित !') । अतएव दूजे छोर पर पौराणिक शक्ति की

साधना के द्वारा हृदयोत्पन्न गर्व का दमन हुआ है। फलत: राम एक त्रासद नायक होने से बचकर सुखान्तिकी के नायक की तरह आनंद, मंगल और विजय की फलागमत्रयी को प्राप्त कर लेते हैं। एक साधक संन्यासी त्रासदी का नायक नहीं हो सकता। यहाँ राम शान्त नहीं, अशांत और शंकालु हैं। वे संन्यासी जैसे होकर भी लोकमंगल के साधक नायक हैं। वे एक सांस्कृतिक नेता, निराला के व्यक्तित्व के आंशिक प्रवक्ता तथा वर्तमान समाज के सामाजिक विद्रोही भी हैं। इस तरह नायकमिथक (हीरो-मिथ) में मिथक एवं इतिहास, इतिहास एवं समाजशास्त्र—सभी के प्रबोधों का सामंजस्य हो गया है। अत: मिथकीय स्त्रोतवाली 'शक्तिपूजा' का रचना-संसार सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक गहराइयों में भी गोताखोरी करता है।

कविता में जिस तरह राम के सूर्यधर्मा गौरव और असुरधर्मा गर्व के बीच विरोध प्रकाशित किया गया है और मंगलमहाभाव के द्वारा गर्व का अवरोध किया गया है, उसी तरह मनोलोक में एक अन्य लीला को भी उद्बुद्ध किया गया है। जब आठ दिनों की समाराधना के उपरांत नवें दिन अंतिम जप तथा अंतिम नीलकमल अर्पण के समय दुर्गा हँसते हुए छिपकर पूजा का प्रिय इंदीवर उठा ले जाती हैं तो सहसा राम का 'स्थिर मन चंचल हो' उठता है और वे शोकार्त होकर अपने **जीवन** तथा **साधन** को धिक्कारने लगते हैं और आर्तनाद कर उठते हैं: 'जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका!' उनका यह मन मायावरण में उलझा हुआ है अर्थात् यह आत्मलिप्त मन है। किन्तु कवि ने इसी समय एक समानांतर राम के मानवीय मन की कल्पना की है जो चिरंतन है तथा अपराजेय मानवता की चेतना का प्रतीक है जो तात्कालिकता तथा संकीर्णता का अतिक्रमण करके **अनुभव** को **दर्शन** एवं चिंतन में रूपांतरित कर सकता है। यही ऐतिहासिक चेतना है, यह मनुष्य का बौद्धिक ज्ञान तथा अनुभवयात्रा है ('वह **एक और मन** रहा राम का जो न थका; जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय, कर गया भेद वह मायावरण प्राप्त कर जय, बुद्धि के दुर्ग पहुँचा विद्युत्-गति हतचेतन—')। इस तरह राम और बौद्धिक मानवीय साधनों के अभ्यासी हो जाते हैं। यही राम की आधुनिकता है। इसके पूर्व हनुमान अलौकिक साधनों का व्यवहार कर चुके थे तथा स्वयं राम मंत्रपूत दिव्य शरों का संधान करते हैं। अब राम अस्तित्व तथा भाविता में सिहर जाते हैं। उन्हें बार-बार **संशय** हिलाता है; अस्तित्व का **घाव** तथा पराजय का **भय** उन्हें विकल करता है और **क्षण** में जीते हुए वे लघु होते जाते हैं। उन्हें श्रम में **व्यर्थता** का, तथा लक्ष्य में **अप्रतिबद्धता** का भाव भर जाता है। इस तरह पहली बार हमें अस्तित्ववादी (एक्ज़िस्टेंशियलिस्ट) राम की स्थिति का दिग्दर्शन होता है। पहली बार लगता है कि यह संपूर्ण संसार और समाज व्यवस्था महाशून्य तथा महाअंधकार जैसी है। अंधकार आकाश में व्याप्त हो जाता है। तमोगुण का प्रतीक हो जाता है और अन्ततः राक्षस से संबद्ध हो जाता है। यहाँ एक विरोधाभासपूर्ण समीकरण बनता है: अंधकार एक तत्त्व है; और वह क्रियाशील है; उसका संबंध आकाश से है; आकाश का शिव से; और शिव का शक्ति तथा एकादश रुद्रावतार हनुमान से; शक्ति का संबंध रावण से है और रावण का अंधकार

से। इस भाँति एक ओर रावणमाया की श्यामा-रात दूसरी ओर रामपूजन-प्रताप का तेज प्रसार हनुमान। रावण-महिमा की श्यामा विभावरी इस राम-अर्चना के तेज के सम्मुख फटने लगती है तब शिव देवी को अंजनारूप में कपि के पास भेजकर उसे (कपि) शांत करते हैं अर्थात् हनुमान का मन मायावरण ('विद्या') को नहीं भेद पाता, किन्तु राम का ('एक ओर') मन जय प्राप्त कर मायावरण भेद कर डालता है। इस तरह शक्ति अंजनारूप होकर अथवा हँसते हुए एक कमल चुराकर छल करती है। इसीलिए इस युद्ध का स्वरूप बदला हुआ है : यह नर-वानर का राक्षस से पौराणिक रण न होकर मानव के मन में एक ओर सूर्यमुखी गौरव तथा असुरधर्मी गर्व का शाश्वत युद्ध है तो दूसरी ओर ऐसा युद्ध है जहाँ साधक तथा वीर, पुरुषोत्तम तथा मनुष्य की विजय नहीं होती; बल्कि शक्ति उसके पक्ष में होती है जहाँ अन्याय होता है। इसलिए यह युद्ध मिथक से विश्व-इतिहास-पटल पर अवतरित होकर मानों वर्ग-संघर्ष का व्याख्याता बन जाता है। इस युद्ध को जीतने का केवल एक ही रास्ता है : **राम भी पुरुषसिंह होकर यह शक्ति धारण करें, शक्ति की एक मौलिक रचना करें तथा जब तक सिद्धि न हो तब तक समर छोड़ दें।**[1] सामाजिक विकास का यही एक सार्वभौम नियम भी है। शाक्तों की 'शक्ति' ही विवेकानंद की आत्मशक्ति तथा अंततोगत्वा निराला की सामाजिक शक्ति में ढल गई है।

निष्कर्ष रूप में, इस संश्लिष्ट कविता के मिथकीय स्त्रोतों में कवि ने नवीन व्याख्याओं का अन्वयन किया है और आधुनिक समाज, कवि के मनोद्वन्द्व तथा इतिहास में शक्ति की भूमिका का भी प्रकीर्ण विवेचन किया है।

●●●

इस कविता में मिथकीय स्त्रोतों की मौलिक रचना के अलावा नाटकीय परिस्थितियों को तीव्र तथा गहन बनाने का अप्रतिम कला-कौशल भी परिलक्षित होना है। ये दोनों तत्त्व ही इस कविता के जादू हैं। वस्तुतः स्थितियों (सिचुएशन्स) तथा परिस्थितियों (सर्कमस्टान्सेज़) के विविध रूप नाटकीय इस्तेमालों में भी इस रचना का जादू छिपा है। कतिपय विशेष स्थितियाँ-परिस्थितियाँ ये हैं : अमानिशा में घना अन्धकार उगलते गगन के वातावरण में राघवेंद्र को पुनः-पुनः संशय अस्थिर कर ('हिला') रहा है तभी कुमारी जानकी की छवि विद्युत् जैसी जागती है; विदेह के

---

१. **विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
हे पुरुषसिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुमवरो विजय संयत प्राणो से प्राणों पर;...
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनन्दन!**

उपवन को याद करते-करते राम का मन क्षण-भर को भूलकर पुनः धनुर्भंग को हाथ उठा लेते हैं; फिर शंकाकुल राम को रावण का खलखल अट्टहास सुनाई पड़ता है और उनके नयनों से दो मोती जैसे आँसू गिर पड़ते हैं; रावण के अट्टहास का उत्तर देते एकादशरुद्ररूप हनुमान क्षुब्ध अट्टहास करते हुए महाकाश तक पहुँचते हैं; अंजनारूप की झिड़की सुनकर उद्धत हनुमान नम्र हो प्रभुपद गहकर दीन हो जाते हैं; गरजते हुए सिंधु को देखकर राम उसकी दुर्गा के सिंह के रूप में कल्पना करके स्वयं सिंहभाव से आराधन का संकल्प करते हैं; ज्योंही राम की साधना का अंतिम दिन आता है कि रात के दूसरे प्रहार में दुर्गा कमल चुराकर ले जाती हैं तथा त्योंहि राम अपना दक्षिण लोचन अर्पित करने को प्रस्तुत होते हैं कि दुर्गा समूहावतार रूप में प्रकट हो जाती हैं; राम ज्यों-ज्यों युद्ध को क्रुद्ध होते है त्यों-त्यों वामा (शक्ति) के दृग में झक-झक वह्नि झलकती है और राम के हाथ बँध जाते हैं तथा उनका धनुष नहीं खिंच पाता; अंतिम कमल के चुरा लिए जाने पर साधक राम का स्थिर मन चंचल हो उठता है, किन्तु एक और मन अथक, अदीन, अविनयी भी जा जो मायावरण भेदकर विजय-सिद्धि पा गया; जाम्बवान कहते हैं कि अगर महाशक्ति रावण को अंक में लिए हैं तो राम भी शक्ति की मौलिक कल्पना करके उसे धारण करें; इत्यादि-इत्यादि ।

उक्त स्थितियों-परिस्थितियों के ही कई नाटकीय इस्तेमाल हुए हों एक तो **वैषम्य** (कंट्रास्ट) के द्वारा परिस्थिति या पात्र के आपसी विरोध अथवा फर्क का उद्घाटन हुआ है जिससे दो विपरीत संवेग टकराते हुए भावित होते हैं । दूसरे **संयोग** (चान्स) द्वारा कथानक को अनुकूल अथवा प्रतिकूल दिशा में मोड़ा गया है । तीसरे लघु लघु **चरमोत्कर्षों** (क्लाइमेक्सेज़) का विधान करके किसी चरित्र अथवा अवस्था की परिणति की गई है, अथवा किसी तद्विषयक समस्या का समाधान कर दिया गया है । लघु चरमोत्कर्षों का नाटकीय प्रयोग इन्हीं हेतुओं के लिए किया जाता है । व्यापक तौर पर ऐसी इतिवृत्तपरक तथा नाटकीय कविता के मंडल में पाठक के मन में रुचि तथा प्रभाव उत्पन्न करके उसकी अधिष्ठापना का क्रम जारी रखने का काम ये कौशल ही करते हैं । ये कौशल मंडित परिस्थितियाँ पाठक या दर्शक को बार-बार 'धमकाती' हैं । कैसे ? चरित्र के फलागम को संकट में डालने पर, भट्टनायकीय भावना व्यापार में निबद्ध पाठक के मन में, भय (फिअर) तथा करुणा (पिटी) उत्पन्न होती है । इस कविता में राम विरोधी पात्रों एवं विपरीत परिस्थितियों में रखे गए हैं । अतः पाठक के मन में भय और करुणा के संवेग संचारित होते जाते हैं ।

जादुई प्रभाव का एक और कारण यह भी है कि 'स्थान' एवं 'काल' का यथासंभव ऐकता का निर्वाह करने के बावजूद यह कविता देश-काल के अक्ष का अतिक्रमण करती है क्योंकि पात्रों के दिवास्वप्नों तथा मिथक पुंज के द्वारा घटनाओं के स्मरण-संस्मरण का सिलसिला चलता है । इससे कथा राम के शैशव (कहती थीं माता मुझे सदा राजीव नयन), हनुमान के शैशव (तुमने जब रवि को लिया निगल तब नहीं बोध था तुम्हें; रहे बालक केवल) से शुरू होकर अनेक स्थलों में संचरण करते-करते पुनः घटित स्थल में केंद्रीभूत हो जाती है । यह केंद्रीयभवन इसकी

नाटकीय संरचना (ड्रॉमेटिक कांस्ट्रक्शन) की ही खूबी है जिसमें प्राचीन मिथकों तथा प्रतीकों का काफी इस्तेमाल हुआ है। कवि ने शुरू में ही एक लम्बे एकान्त कथन द्वारा युद्ध के वास्तविक घटना-समूह को बताकर विष्कंभक की-सी अदाकारी की है। सक्रिय रंगपटल लौटती हुई उभय सेनाओं से दृश्यभान होता है। इस युद्ध के नतीजे को राम अपने बाणों की हतलक्ष्यता तथा खंडन द्वारा बताते हैं। तथापि कार्य के केंद्रीयभवन को सम्पन्न करने के लिए हनुमान, विभीषण तथा जाम्बवान आदि एक ही लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं—विश्वविजय के लिए राम शक्ति को धारण करें! स्वयं राम भी इसी लक्ष्य के लिए सप्तचक्र तक अपने मन का ऊर्ध्वगमन करते हैं। इस तरह संपूर्ण कविता में 'शक्ति' एक आर्केटाइपल बिंब होकर फैलती है। इसके साथ ही कार्यव्यापार के निवेदन में कवि ने **नाटकीय अभिनेयता** का—विशेष रूप से आंगिक मुद्राओं तथा अहार्य स्वरूपों का—ऐसा तराशा हुआ चित्रोपम (ग्रैफिक) अंकन किया है कि कई स्थल भावचित्रों तथा रसचित्रों और शिल्प की मूर्तियों जैसे हो गये हैं। ये शब्द माध्यम के अद्वितीय कीर्तिमान हैं। ये बिंब हैं उदगीरित बह्नि के भीम पर्वत की तरह हनुमान; राक्षस पद तल पृथ्वी टलमल; चिंताकुल अस्तव्यस्त लौटते हुए रघुनायक (रघुनायक आगे अवनी पर···ताराएँ हों ज्यों कहीं पार); अमानिशा में गरजते हुए सागर का चित्र (है अमानिशा···केवल जलती मशाल); विदेह के उपवन के लतांतराल में जानकी से राम का प्रथम मिलन (याद आया उपवन विदेह का···प्रथम कम्पन तुरीय); हनुमान का ऊपर उड़ना (हो श्वसित पवन उनचास···हो स्फीत वक्ष); वामा के दृग में वह्नि के झकझक झलकने पर राम पर वशीकरण हो जाना (विचलित लखन कपिदल···में हुआ त्रस्त); लक्ष्मण के नेतृत्व में महावाहिनी की व्यूह रचना का चित्र (तब तक लक्ष्मण हैं···उनके प्रधान); शिविर में पर्वत के सानु पर बैठी राम सभा (बैठे रघुकुल मणि···मुख श्याम देश); शक्ति की मौलिक कल्पना देखो बन्धुवर, सामने स्थित···मन्द हो रहा खर्व); साधक राम की छवि (है नहीं शरासन आज हस्त···स्तब्ध सुधी हैं ध्यान धार); ब्रह्मशर से नीललोचन निकालने की मुद्रा (कहकर देखा तूणीर···उद्यत हो गये सुमन); सामने श्रीदुर्गा का प्रकट होना (देखा राम ने, सामने श्रीदुर्गा···मस्तक पर शंकर); इत्यादि। ये मुद्रा, बिंब कार्य के काव्यचित्र कवि निराला की उत्तमोत्तम उपलब्धि हैं।

'शक्तिपूजा' में कुतूहल, तन्मयीभव, आह्लाद, चमत्कार आदि के समुपरंजन के लिए भी स्थितियों-परिस्थितियों के साथ मिथकों का भी प्रचुर उपयोग हुआ है। ये कौशलकर्म सहृदय के प्राण को बाँध लेते हैं। इनका केंद्रीय रहस्य **नाटकीय भ्रांतियों** (ड्रेमेटिक इल्यूज़न्स) की अल्पना है। ये नाटकीय भ्रांतियाँ ही **काव्यात्मक फान्तासियों** (पोएटिक फैंटेसीज़) को भी आलोकित करती हैं। इस तरह इन दोनों की कान्त मैत्री के प्रभावोत्पादक प्रयोग हुए हैं।

ये भ्रांतियाँ एवं फान्तासियाँ अतिप्राकृतिक और अलौकिक आह्लाद और चमत्कार, अवचेतन और दिवास्वप्न आदि की सृष्टि करती हैं।

पहली भ्रांति है रोते हुए राम के अश्रुओं के गिरने पर हनुमान द्वारा उन्हें नभ

में चमकते तारादल अथवा श्यामा के चरण समझा जाना अथवा वे चरण समझना जिनके मध्य में दो कौस्तुभ मणियाँ शोभित हैं। किन्तु ध्यान का तार टूटते ही अर्थात् प्रबोध होते ही रुद्ररूप हनुमान महाकाश को ही ग्रसने ऊपर उड़ चलते हैं। इस तरह भ्रांति एवं फान्तासी के मेल से आश्चर्य तथा रोमांच, आह्लाद तथा क्रोध की समानुवर्ती उद्भावना हुई है। दूसरी भ्राँति है भयभीत शक्ति द्वारा अंजनारूप धारण करके हनुमान को शान्त करना। इसके द्वारा हनुमान के चेतन-अवचेतन के सबंध उद्घटित हुए हैं। तीसरी भ्रांति है युद्धक्रुद्ध राम को वामा के दृर्ग में झकझक झलकती वह्नि का दिखाई देना जिससे वे बँध जाते हैं (अवचेतन में स्थिर असर्थमता की प्रकाशक)। इससे राम जैसे पात्र के लिए भी मानवीय संवेदना, करुणा दया और क्षमा के सहज भाव उदित होते हैं। इस तरह तीनों भ्राँतियाँ एक साथ अलौकिक तथा अवचेतन को आलोकित कर देती हैं। मिथकीय होने के कारण ये अलौकिक का चमत्कार प्रदान करती हैं, तथा मानवीय यथार्थ होने के कारण मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्घाटन करती हैं।

इसी तरह तीनों फान्तासियों की भूमिका ली जा सकती है। पहली है राम के जानकी विषयक दिवास्वप्नों की माला (कथा को पूर्वदीप्ति पद्धति द्वारा पीछे ले जाना)। वीरता तथा साधना की दशाओं वाली [इस कविता में शृंगारोल्लास तथा उन्मादक राग का यह विचित्र तथा चमत्कारपूर्ण अनुकीर्तन है। दूसरी फान्तासी है हनुमान का महाकाश में आरोहण। इसमें अतिप्राकृतिक तत्त्व का मिथकीय प्रयोग राम की अर्चना तथा लीला के उद्घाटन के लिए भी हुआ है (जिसे शिव इंगित करते हैं)। अंतिम तीसरी फान्तासी है राम द्वारा अष्टचक्र समाराधना (रहस्यवादी साधना, भूमिका)। 'कामायनी' के रहस्यसर्ग की तरह यह सांप्रदायिक फान्तासी भी काव्य में दरार पैदा करके कलानुभूतियों से प्रयाण कराती है।

अतएव इन स्थितियों-परिस्थितियों के तकनीकी उपयोग तथा भ्रांतियों एवं फान्तासियों पर अधिक ध्यान देकर ही हम कविता के उदात्त (सब्लाइम) तथा अद्भुत (वंडरफुल) बोधक कलात्मक महाभाव को समझने की ओर अग्रसर हो सकते हैं। हम यह भी उद्घाटन कर सकते हैं कि कविता का विलक्षण रूप **नाटकीय** है।

●●●●

मिथक जादू तथा नाटकीय कौशलों से प्रचुर इस कविता में कथोपकथनों का अतुल और अनूठा विधान हुआ है। यूँ भी काव्यात्मक संवाद वाली कविताओं में ही निराला अपनी कला के अभ्यस्त प्रमाण देते रहे हैं—एक से एक बढ़कर !

संवादों में दो भावों की प्रमुखता है—आह्वाहन तथा उद्बोधन। फलतः पद-रचना रीति सहजता तथा रहस्यात्मकता के ध्रुवान्तों के बीच संघटित हुई है। कई पात्र तो केवल एकालाप (मोनोलाग) करते हैं और दूसरा पात्र मात्र सुनता है; जैसे शिव द्वारा देवी को चेतावनी देना; अंजना द्वारा हनुमान को रोकना। इस दशा में श्रोता मात्र कार्य का अनुकर्त्ता हो जाता है। अतः कविता में इतिवृत्त से अविलंब

विवरण में ऊँची उड़ान लगाने का माहौल मिल जाता है।

अन्य दशाओं में विभीषण तथा राम के बीच संवादों में परिस्थितियों का लेखाजोखा हुआ है तथा उपस्थित समस्या का गोपनीय रहस्य खोला गया है। इस लड़ी में राम तथा जाम्बवान के बीच के कथोपकथन बेहद प्राणवन्त हैं। वे परमप्रेयान तथा समाधानमूलक भी हैं। अतः विभीषण राम समस्याएँ उठाते हैं; जाम्बवान राम उनका समाधान करते हैं। इस संवादचतुष्टय द्वारा कवि ने शाश्वत् संघर्ष वाली अपनी कल्पना तथा जीवनदर्शन को भी स्पष्ट किया है।

अतएव कवि निराला का मंतव्य आधुनिक तथा व्यक्तिवादी भी रहा है, अर्थात् राम में **गर्व** के उदय से, तथा अन्यायपक्ष की ओर शक्ति के हो जाने से क्रमशः मानवीय प्रारब्ध और सामाजिक संघर्ष, दोनों का ही चरित्र बदल गया है। एक ओर तो अतुल-बल शेष शयन राम लघु हो जाते हैं तथा दूसरी ओर मूल मिथकीय युद्ध की प्रकृति, विजय के साधन एवं युद्ध का दर्शन ही बदल जाता है। इन परिवर्तनों से मिथक से यथार्थ की ओर, तथा परंपरा से आधुनिकता-बोध की और भी पेशकदमी होती है। 'आज' के **अपराजेय** समर में भी शक्ति अन्यायपक्ष के साथ है, युद्ध का **चरित्र** बदल गया है। अतः शक्ति की मौलिक कल्पना के द्वारा ही विजय के साधन मिलेंगे। इसके लिए साधनों (साधना) को दृढ़ करना है, और शक्ति को न्यायपक्ष तथा मंगल-महाभाव की ओर ले आना है। इसी तरह युद्ध का **दर्शन** वैयक्तिक दिग्विजय की अपेक्षा मानवमन के असुर (गर्व और वर्गस्वार्थ) का नाश हो गया है। यही इस कविता की समकालीन चरित्रार्थता तथा कवि का जीवनदर्शन भी है।

लेकिन अकेला निराला स्वयं इस दर्शन को सामूहिक अमल में नहीं बदल सका। अतः वह आगे असमर्थ होकर नीलकमल से कुकुरमुत्ता की तलाश में मुड़ गया— आधुनिक युग की अधिक क्रूर तथा सच्ची **फूहड़ता** (एब्सर्डिटी) को परखने के लिए।

●●●●●

अतः 'राम की शक्तिपूजा' निराला की गहरी मानसिक यंत्रणा तथा आधुनिक युग के आंतक के तनावों से भी ओतप्रोत है।

यह कृति पद्यनाटिका या संगीतनाटीका तो नहीं है, किन्तु नाटकीयता की प्रचुर संभावनाओं से गठित-गुंफित है।

वीरत्व के धैर्य के बजाय अधीर राम के संशय तथा असमर्थता से शुरू होने वाली यह कविता वीर रस का भंग करती हुई शक्ति की साधना की ओर मुड़ती है और शुरू के खंड के बाद ही योद्धा राम साधक राम में रूपांतरित हो जाते हैं।

इसीलिए 'राम की शक्तिपूजा' एक **संश्लिष्ट कविता** है जिसका **विलक्षण रूप** है जिसमें मिथक के माध्यम से यथार्थता का चिरंतन अनुसंधान हुआ है। यह मानवीय प्रारब्ध की शाश्वत यातना अर्थात् **आत्मनिर्वासन** और **आत्म-स्थापन** दोनों को निर्भीक संदर्भों में पेश करती है।

तुलसीदास

डॉ० कुमारी शान्ति
श्रीवास्तव

'राम की शक्तिपूजा' की अपेक्षा 'तुलसीदास' में ऐतिहासिक परिवेश का लम्बा चित्र खींचा गया है। जिस युग में व्यक्ति धर्म, अर्थ और मोक्ष को भुलाकर केवल, काम की उपासना करने लगा उस युग की लम्बी भूमिका काव्य में जोड़ी गई है। इसका कारण यह है कि भारतीय इतिहास का यह एक विशिष्ट युग है। विशिष्ट इस अर्थ में कि यह भारतीय संस्कृति से पूर्णतया वियुक्त काल है। भारत सदा से एक धर्म-प्रधान देश रहा है। यदि इसकी सस्कृति का ह्रास हुआ है तो धर्म को लेकर और जीत हुई है तो धर्म को लेकर। क्या राजनीति और क्या समाजनीति सब क्षेत्रों में यहाँ धर्म का ही प्राधान्य रहा है। भारत पूजा गया तो धर्म के नाम पर और पद-दलित किया गया तो धर्म के नाम पर। इसलिए स्थिति चाहे जो भी रही हो धर्म कभी इसके जीवन से अलग नहीं हुआ। आधुनिक युग का नव-जागरण भी धर्म को लेकर ही जागृत हुआ। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द तथा गांधी सब धर्म-पुरुष पहले थे और इसी माध्यम से सब-कुछ पाना चाहते थे। किन्तु तुलसी का युग एक ऐसा युग था जिसमें भारतीयता का पूर्ण ह्रास हुआ। भारतीय इतिहास में यह युग मुगल काल है। इस युग में भारतीय अपनी सांस्कृतिक-चेतना भूल चुके थे अथवा वह चेतना उनकी प्रेरणा को उद्बुद्ध करने वाली एक प्रचण्ड शक्ति नहीं रह गई थी। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति नाम की कोई वस्तु या भावना शेष नहीं रह गई थी जिसे सब लोग याद किये हों, क्योंकि एक तो भयभीत होकर जनता अपने धर्म,-कर्म की आवाज़ उठाना बन्द कर चुकी थी और साथ ही राजन्यवर्ग की विलासिता में स्वयं भी डूब जाने के कारण अपनी संस्कृति को भूल गई थी। दोनों परिस्थितियाँ भारतीयता को भुला जाने के लिए पर्याप्त थीं। इनमें दूसरी स्थिति (विलासिता की स्थिति) ही सबसे अधिक भयानक थी, क्योंकि मुसलमानों की प्रारम्भिक चढ़ाइयाँ तो भय उत्पन्न करने वाली अवश्य थीं और हिंसा के बल पर मुसलिम धर्म और सत्ता की स्थापना करना चाहते थे, किन्तु परवर्ती काल में जब मुगलों का शासन यहाँ स्थिर हो गया और कुछ कूटनीतिज्ञ मुगल शासकों की नीति से हिन्दू और मुगलों के बीच समझौते का सम्बन्ध

स्थापित हुआ, यहाँ तक कि यह समझौता ववाहिक सम्बन्धों में परिणत होने लगा तब स्थिति बदल गई। इस बदली हुई स्थिति का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू मुगलों की विलासिता में सम्मिलित हो गये। मुगल शासकों की विलासिता तो प्रसिद्ध ही है। इतिहास कहता है—"क्योंकि भोग-विलास से परिपूर्ण जीवन मुगल राज-दरबार और मुगल-युग के सम्मान के लिए आवश्यक वस्तु थी। राजवंश, सामन्त और उच्च-वर्ग के लोगों के जीवन का प्रमुख उद्देश्य अधिक-से-अधिक सुख, विलास व ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करना था। वे शोषक थे और श्रमिकों व निम्न-श्रेणी के लोगों द्वारा उत्पन्न धन का अपव्यय करते थे। मध्य एशिया और ईरानी अमीरों के रीति-रिवाजों का अनुकरण करके हिन्दू सामन्त भी बड़ी दावतें देने लगे थे। विशाल अन्तःपुर इस युग की साधारण बात थी और राजा से लेकर नीचे सामन्तों तक प्रत्येक बहुसंख्यक स्त्रियों, दासियों और नर्तकियों को रखता था। स्त्रियों का कोई महत्त्व न था, वे केवल भोग-विलास की वस्तु समझी जाती थीं।······श्रमजीवियों का कार्य स्वेच्छाकृत नहीं था, वेतन कम था, खाद्य-सामग्री और गृहों में दरिद्रता थी और केन्द्रीय सरकार की दमन-नीति के वे शिकार होते थे। वेतन कम होने से नौकरों की संख्या अधिक थी। उनमें इमानदारी दुर्लभ थी और अपने वेतन को पूरा करने के लिए वे 'दस्तूर' माँगते थे।"[1]

निराला ने 'तुलसीदास' में इसी युग का चित्रण किया है। सबसे पहले वे देश की संस्कृति का परिचय देते हैं—

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे - तमस्तूर्यदिङ् मंडल,
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।

भारतीय नभ का सांस्कृतिक सूर्य अस्त हो गया है जिससे चारों ओर अन्धकार छा गया। इस सूर्य के अस्त होने का कारण यह है कि मुसलमानों का शासन केवल देश पर न होकर देशवासियों के हृदय पर हो रहा है। यदि केवल देश पर होता, जैसा कि अंग्रेज़ों ने किया था तो इससे केवल आर्थिक हानि होती अर्थात् देश का आर्थिक-सूर्य अस्त होता, किन्तु हृदय पर शासन करने के कारण मुसलमानों ने हिन्दू की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा पर आघात पहुँचाया। हिन्दू परिवारों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके मुगलों ने इनके हृदय को अपने अधिकार में कर लिया। मुसलमान शासक और हिन्दू प्रजा के बीच रक्त का सम्बन्ध स्थापित हुआ, फलस्वरूप इनकी पारस्परिक कटुता

---

१. देखिए—भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास : बी० एन० लूनिया।
एन एडवान्स हिस्ट्री ऑव इण्डिया, आर० सी० मजुमदार।
मुस्लिम रूल इन इण्डिया : डॉ० ईश्वरी प्रसाद।

ग्रौर विद्रोह की भावना दब गई या समाप्त हो गई । शासक होने के नाते मुगल संस्कृति श्रेष्ठ समझी गई ग्रौर धीरे-धीरे भारतीय उसी संस्कृति को ग्रपनाने लगे ग्रौर भारतीय संस्कृति विस्मृति के गर्भ में विलीन होने लगी । ग्रतः भारतीय ग्रपनी इच्छा से मुसलिम संस्कृति के पोषक बन गये । मुसलिम दरबार की विलासप्रिय सस्कृति को ग्रपना लेने के कारण भारतीय वर्णाश्रम धर्म की स्मृति भी ग्रब शेष न रह गई । ग्रंग्रेजों ने भारतीयों से वैवाहिक सम्बन्ध नहीं बनाया था, इसलिए इस युग में शासक ग्रौर प्रजा के बीच हृदय का सम्बन्ध स्थापित न हो सका । यही कारण है कि ग्रंग्रेज़ भारतवासियों के हृदय पर शासन नहीं कर सके । उनके शासन की सीमा ग्रर्थ तक ही मुख्यतः केन्द्रित रही । दूसरी बात यह है कि ग्रंग्रेज़ी सभ्यता मुगलों की विलास-प्रिय सभ्यता नहीं थी जिसका देशवासियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता । ग्रंग्रेज़ी सभ्यता मूलतः विज्ञानवादी ग्रौर बुद्धिवादी सभ्यता थी जिसका ग्रनुकूल प्रभाव देश पर यह पड़ा कि भारतीय विलासिता का ग्रावरण फेंककर तर्क ग्रौर बुद्धि-जनित ज्ञान को ग्रहण करने में समर्थ हो गये । कहने का तात्पर्य यह है कि शासक की संस्कृति से जनता बहुत दूर तक प्रभावित होती है । एक तो मुगलों की विलासप्रिय सभ्यता दूसरे भारतीयों से सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करके मुगलों ने भारतीय ग्रात्मा को हर तरह से ग्रपनी मुट्ठी में बन्द कर लिया ग्रौर उन्हें ऐसी मदिरा पिलायी कि जिसके नशे में ये ग्रपना सब-कुछ भूल बैठे । कवि निराला ने सांस्कृतिक सूर्य के ग्रस्त होने की बात कहकर इसी तथ्य का स्पष्टीकरण किया है । इसी पराधीनता, विस्मृति ग्रौर विलासिता के कारण राजपूतों की वीर-भावना शाषकों की चाटुकारिता में बदल गई । निरालाजी कहते हैं—

रिपु के समक्ष जो था प्रचंड
आतप ज्यों तम पर करोदंड,
निश्चल अब वही बुन्देलखंड, आभागत,
वीरों का गढ़, वह कालिंजर
सिंहों के लिए आज पिंजर,
नर हैं भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते ;
भारत के उर के राजपूत,
उड़ गये आज वे देवदूत,
जो रहे शेष, नृप-वेश सूत-वंदी गण ।

बुन्देलखण्ड की प्रचंडता मंद हो गई, कालिंजर के सिंह पिंजर-बद्ध हो गये तथा भारतीय हृदय ग्रौर उसके मन, मस्तिष्क के रक्षक राजपूत या तो रणभूमि में सो गये या विलासी-शासकों की वंदना ग्रौर प्रशस्ति के गीत गाने लगे, क्योंकि शासकों के प्रसन्न रहने पर ही उन्हें योग्य सामग्री उपलब्ध हो सकती थी । शासक वर्ग भी हिन्दुग्रों की चाटुकारिता से प्रसन्न था । इस स्थिति में सर्वत्र सुख-शान्ति ही देखने को मिली—

अब, धौत धरा, खिल गया गगन,
उर उर को मधुर, ताप प्रशमन
बहती समीर, चिर-आलिंगन ज्यों उन्मन ;
झरते हैं शशधर से क्षण-क्षण
पृथ्वी के अधरों पर निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों के चुम्बन, संजीवन ।
भूला दुख, अब सुख स्वरित जाल
फैला यह केवल कल्प काल—
कामिनी-कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता ;
प्राणों की छवि मृदु-मंद-स्पंद,
लघु-गति, नियमित-पद, ललित छंद ;
होगा कोई, जो निरानन्द, कर मलता ।

पृथ्वी प्रकाशपूर्ण हो गई, आकाश प्रसन्नता से खिल उठा, प्रत्येक हृदय में मधुर भाव का संचार हुआ, पराधीनता की ज्वाला बुझ गई, प्रकृति भी मधुर समीर से चिर-आलिंगन का संदेश देने लगी तथा चन्द्रिका अपनी चाँदनी बिखेरकर प्राणों में चुम्बन की संवेदना जागृत करने लगी। इस वैभव में देश अपना सब दुख भूल गया और सुख-स्वप्नों में तिरोहित होने लगा। कामिनी कुमुद के सुन्दर हाथों से दिये गये तालों पर पुरुष समाज नाचने लगा। इस मृदु ताल और मृदु नृत्य में उसे प्राणों की छवि का स्पर्श सुख मिलता। इस विलासिता के सुख में सारा समाज निमग्न हो गया। शायद ही ऐसा कोई व्यक्ति हो जो इस आनन्द से पृथक् रहकर समाज की इस दुर्दशा पर क्षुब्ध बना बैठा हो (कर मल रहा हो)। कवि निराला ऐसे विरल व्यक्तियों में युवक तुलसीदास का नाम लेते हैं—

युवकों में प्रमुख रत्न-चेतन,
समधीत-शास्त्र-काव्यालोचन
जो, तुलसीदास, वही ब्राह्मण-कुल दीपक ;
आयत-दृग, पुष्ट-देह, गत-भय,
अपने प्रकाश में निःसंशय
प्रतिभा का मंद-स्मित परिचय, संस्मारक ;

युवकों में रत्न के समान प्रकाशमान तुलसीदास शास्त्र और काव्य का अध्ययन समाप्त कर चुके थे, युवावस्था में पदार्पण कर चुके थे, उनका शरीर स्वस्थ एवं मन भय से रहित था, आत्म-प्रकाश और प्रतिभा के तेज से वे सदा प्रसन्न-बदन दिखाई देते थे। एक दिन वे चित्रकूट पर्यटन के लिए गए जो समाज के कृत्रिम चाक-चक्र से दूर था तथा जहाँ उच्चवर्ग की विलासिता की गन्ध तथा निम्नवर्ग की कराह की ध्वनि तक नहीं पहुँच सकती थी। प्रकृति की रमणीयता से पूर्ण वह एक पवित्र स्थान था। उस स्थान में जाकर तथा वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर तुलसी का मन ऊर्ध्वमुखी होने लगा। प्रकृति का प्रत्येक उत्पादन उन्हें एक नया संदेश देता जान

पड़ा—

तरु-तरु, वीरुध्-वीरुध्, तृण-तृण
जाने क्या हँसते मसृण-मसृण,
जैसे प्राणों से हुए उऋण, कुछ लखकर ;
भर लेने को उर में, अथाह,
बाँहों में फैलाया उछाह ;
गिनते थे दिन, अब सफल-चाह पल रखकर ।

तुलसीदास को देखकर प्रत्येक तरु और प्रत्येक पौधा प्रसन्नता से भर उठा, प्रकृति के सब उपादान मानों अपने ऋण से मुक्त हो गये । जिस छवि को अपनी बाँहों में भर लेने को अब तक वे व्याकुल थे वह चाह उनकी आज पूरी हो गई । ऐसे अभीप्सित पात्र को पाकर प्रत्येक जड़ तुलसीदास से निवेदन करने लगा कि—

कहता प्रति जड़, "जंगम-जीवन ।
भूले थे अब तक बंधु, प्रमन ?
यह हताश्वास मन भार श्वास भर बहता ;
तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि,
देखो यह धूलि-धूसरित छवि,
छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता ।

प्रकृति का प्रत्येक कण जिसे तुम्हारा मानव-समाज जड़ समझता है । वस्तुतः वह जड़ नहीं चेतन है । यह मनुष्य की भूल है कि वह प्रकृति को जड़ समझता है । अतः हे कवि (तुलसीदास) ! तुम घर छोड़कर जो इस प्रकृति का साहचर्य प्राप्त करने आये तो हमारी इस धूल-धूसरित छवि को देखो जो सूर्य की प्रखर किरणों की मार सहकर जड़ बन गयी है । तात्पर्य यह कि मानवीय उपेक्षा के कारण प्रकृति सौंदर्य-विहीन हो गई है और इसी कारण वह जड़ता को प्राप्त कर रही है । क्योंकि चेतन मनुष्य का साहचर्य उसे प्राप्त नहीं है । समाज के सब मनुष्य असुर-वृत्ति के भोगी बन गये हैं इसलिए उनके पापों से यह पृथ्वी कराह रही है—

फिर असुरों से होती क्षण-क्षण
स्मृति की पृथ्वी यह, दलित-चरण ;
वे सुप्त भाव, गुप्ताभूषण अब हैं सब ;

इसलिए तुम्हें चाहिए कि तुम इस प्रकृति और इस पृथ्वी का उद्धार करो, जिस प्रकार राम ने जड़ अहल्या का उद्धार किया था—

लो चढ़ा तार—लो चढ़ा तार,
पाषाण-खंड ये, करो हार,
दे स्पर्श अहल्योद्धार—सार उस जग का
अन्यथा यहाँ क्या ? अन्धकार,
बंधुर पथ, पंकिल सरि, कगार,
झरने, झाड़ी, कंटक, विहार पशु-खग का ।

प्रकृति तुलसी से कहती है कि यदि तुम हमारा उद्धार नहीं करोगे तब पृथ्वी पर केवल अन्धकार, कंटक, पंकिल, झरने, झाड़ी ही होंगे जहाँ केवल पशु विहार करेंगे और मानवता से इसका स्पर्श सदा के लिए छूट जाएगा।

चित्त को झकझोर देने वाली इन बातों को सुनकर तुलसी का मन उन्मन हो उठा और वे चिन्तन के उन्मुक्त नभ में विचरण करने लगे—

बह कर समीर ज्यों पुष्पाकुल
वन को कर जाती है व्याकुल,
हो गया चित्त कवि का त्यों तुल कर उन्मन;
वह उस शाखा का वन-विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग-रंग पर जीवन ।

ऐसे चिन्तन का कभी अवसर आज तक तुलसी को नहीं मिला था, इसलिए उनका भौतिक मन अभ्यस्त चिन्तन के संस्कारों का पहले परित्याग करता है अर्थात् भौतिक रंग को छोड़ने का प्रयास करता है, तब कहीं वे ऐसे आध्यात्मिक और अलौकिक चिन्तन को पकड़ पाने के योग्य हो सकेंगे। इसीलिए तुलसी का मन एक रंग को छोड़ कर दूसरा रंग ग्रहण करता है। किन्तु इस प्रयास में उन्हें सफलता नहीं मिलती। अब तक के जड़बद्ध भौतिक संस्कार उन्हें ऊर्ध्वमुखी नहीं होने देते। पृथ्वी-उद्धार और प्रकृति साहचर्य की बातें सोचते-सोचते विघ्नस्वरूपा पत्नी की छवि उनकी आँखों के सामने साकार हो जाती है। पत्नी का मोह-पाश उन्हें ऊर्ध्वगामी बनने से रोक लेता है। तुलसी की प्रकाशमान चेतना पर राहु के समान उनकी पत्नी आकर उसे अन्धकाराच्छादित कर देती है—

उस मानस ऊर्ध्व देश में भी,
ज्यों राहु ग्रस्त आभा रवि की,
देखी कवि ने छवि छाया-सी, भरती-सी—

किन्तु कवि (तुलसीदास) अपनी इस मानसिक दुर्बलता और जड़बद्ध संस्कार से संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ता जाता है। पत्नी के मोह-पाश का फंदा तोड़कर भी वह यही सोचता है—

करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर द्वार—
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय—
लड़ना विरोध से द्वन्द्व-समर,
रह सत्य-मार्ग पर स्थिर निर्भर—
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार—
तोड़ने को विषम वज्र द्वार,
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को ।

किन्तु, अन्ततः उन्हें अपने इस अभियान में सफलता नहीं मिलती और वामा

उनका मार्ग अवरुद्ध करने में सफल हो जाती है—

उस क्षण, उस छाया के ऊपर,
नभ-तम की-सी तारिका सुघर ;
आ पड़ी, दृष्टि में, जीवन पर, सुन्दरतम
प्रेयसी, प्राणसंगिनी, नाम
शुभ रत्नावली-सरोज-दाम
वामा इस पथ पर हुई वाम सरितोपम ।

अब वही प्रकृति रोती-बिलखती तुलसी से अपना दुख निवेदन करती हुई नहीं जान पड़ती वरन् प्रिया के सौंदर्य से जगमगाती दीख पड़ती है—

यह वही प्रकृति, पर रूप अन्य;
जगमग-जगमग सब वेश वन्य;
सुरभित दिशि-दिशि, कवि हुआ धन्य, मायाशय ।
प्रेयसी, बदलती वसन सृष्टि नव लेती ।

अतः कवि का ऊर्ध्वगामी मन अपनी पुरानी स्थिति में लौट आया—

यों धीरे-धीरे, उतर-उतर;
आया मन निज पहली स्थिति पर;
खोले दृग, वैसी ही प्रांतर की रेखा;

किन्तु चित्रकूट से घर पहुँचते ही पत्नी को न पाकर तुलसीदासजी व्याकुल हो गये और उलटे पाँव अपने ससुराल चले, जहाँ उनकी पत्नी पहले से जा चुकी थी । अपनी व्याकुलता और उत्तेजना पर थोड़ा भी नियन्त्रण रख सकना उनके लिए असंभव हो गया, क्योंकि—

वह आज हो गई दूर तान,
इसलिए मधु वह और गान,
सुनने को व्याकुल हुए प्राण प्रियतम के;
छूटा जग का व्यवहार-ज्ञान,
पग उठे उसी मग को अजान,
कुल मान-ध्यान श्लथ स्नेह-दान—सक्षम से ।

दूर चली जाने के कारण प्रिया और भी काम्य हो गई थी । चित्रकूट से ही उसकी छवि को हृदय में संजोये हुए और सम्पूर्ण प्रकृति में उसका सौंदर्य देखते हुए तुलसीदास घर आ रहे थे, किन्तु अनायास घर में पत्नी को न पाकर अत्यधिक विह्वल हो जाना उनके लिए बहुत सम्भव था । उनकी पत्नी रत्नावली को अपने पति की यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगी और वह इस व्यवहार पर उन्हें धिक्कारने लगी—

धिक ! आये तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए ।

हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़, चाम।
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।

ससुराल में बिना बुलाये आना कुल-धर्म के विरुद्ध है, इसलिए रत्नावली अपने पति के आचरण को धर्म-विरुद्ध मानती है। पति का असंयमित व्यवहार पत्नी के आत्मसम्मान पर चोट पहुँचाने वाला हुआ, इसलिए रत्नावली अपने धिक्कारों द्वारा तुलसीदास को उचित मार्ग पर ले आने का प्रयास करती है जिससे भविष्य में अपने पति के हल्के कारनामों के कारण मायके में उसका माथा नीचा न हो। क्योंकि मायके से अपना संबंध विच्छेद कर लेना भी रत्नावली के लिए सम्भव न था और अपने पति का इस तरह काम के वशीभूत बने रहना भी क्षम्य नहीं था, इसलिए रत्नावली तुलसीदास की प्रवृत्तियों में परिष्कार लाने के उद्देश्य से उन्हें धिक्कारने लगती है। किन्तु इसकी अप्रत्याशित प्रतिक्रिया तुलसीदास पर होती है और उनकी काम-भावना सदा के लिए भस्म हो जाती है—

जागा, जागा संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल,
देखा, बामा, वह, वह न थी, अनल-प्रतिमा वह;
इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान,
हो गया भस्म वह प्रथम भान,
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह।

इस बार नव-ज्ञान का संस्कार इतना प्रबल था कि उसके पुनः छूट जाने की सम्भावना नहीं थी, क्योंकि इस ज्ञान ने काम-भावना को सदा के लिए भस्म कर दिया था। काम-भाव से रहित आँखों से देखने पर तुलसीदास के लिए उनकी पत्नी सौंदर्य की प्रतिमा की जगह अनल की प्रतिमा प्रतीत होने लगी, उन्हें चारों ओर ज्ञान का समुद्र उमड़ता दिखाई पड़ा, जगत् जड़स्वरूप नहीं वरन् ज्ञानस्वरूप प्रतिभासित हुआ। यहाँ तक कि तुलसीदास के लिए उनकी पत्नी साक्षात् सरस्वती स्वरूपा दृष्टिगोचर हुई—

देखा, शारदा नील-वसना
है सम्मुख स्वयं सृष्टि-रशना,
जीवन-समीर-शुचि-निःश्वसना, वरदात्री
वीणा वह स्वयं सुवासित स्वर
फूटीं तर अमृताक्षर-निर्झर,
यह विश्व हंस, हैं चरण सुघर जिस पर श्री।

उस सरस्वती रूप के दर्शन से कवि आनन्दमग्न हो गया और उसके सब द्वन्द्व समाप्त हो गए। प्रकृति का करुण निवेदन सुनकर तथा स्वच्छ, निर्मल प्राकृतिक उपादानों के साहचर्य में आकर जिन मानसिक विकारों को कवि जीत नहीं सका था उन विकारों की समाप्ति पत्नी-रूपा सरस्वती को देखकर हो जाती है—

आनन्द रहा, मिट गए द्वन्द्व, बन्धन सब ।
जिस कलिका में कवि रहा बन्द
वह आज उसी में खुली मंद
भारती रूप में सुरभि-छन्द निष्प्रश्रय ।

इस आत्म-ज्ञान का प्रकाश पा जाने पर व्यक्ति अब घर के भीतर बन्द नहीं रह सकता था । घर के सीमित क्षेत्र से बाहर निकलकर बाह्य क्षेत्र के उद्धार में लग जाने को कवि व्याकुल हो गया, सारी प्रकृति उसे उद्बोधन गीत सुनाने लगी—

जागो, जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती अन्ध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल;

यह गीत सुनकर तुलसीदास प्रकृति के विशाल प्रांगण में तथा प्रत्येक जड़ में अपनी काव्य-प्रतिभा की शक्ति से चेतना का संचार करने हेतु चल पड़े । पति की यह विरक्ति देख रत्नावली की आँखें भर आईं, किन्तु तुलसीदास ने यही उत्तर दिया कि तुम्हारे ज्ञान-प्रकाश को पाकर अब मैं घर के घेरे में बन्द नहीं रह सकता—

जो दिया मुझे तुम प्रकाश,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का
मेरा उससे गृह के भीतर;
देखूँगा नहीं कभी फिर कर,
लेता मैं जो वर जीवन-भर बहने का ।

तुलसीदास अपनी पत्नी की ज्ञान-दात्री मूर्ति को अपने अन्तःकरण में छिपाये बाहर निकल आये । वह मूर्ति उनकी अक्षय प्रेरणा की स्रोत बनी और उसी प्रेरणा की दिव्य शक्ति पाकर तुलसीदास देश के अस्तमित सांस्कृतिक सूर्य को प्राची-दिगंत के भाल पर उदित करने में समर्थ हो सके—

चल मंद चरण आए बाहर
उभर में परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विश्वाश्रय महिमाधर, फिर देखा—
प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल-रवि-रेखा ।

गृह-त्याग के पश्चात् तुलसीदास ने जिस 'रामचरितमानस' का प्रणयन किया वह सच्चे अर्थों में मध्यकालीन मृत भारतीय-संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने का सबसे बड़ा अस्त्र था । इसी सांस्कृतिक चेतना को कवि ने 'पुष्कल रवि-रेखा' कहा है ।

कृति-सूची

श्री कृष्णाचार्य

स्रष्टा की दृष्टि से निराला और उनकी कृतियों का क्रम सदैव के लिए विराम ले चुका है। हमें यह सब यों ही देखते नहीं रह जाना चाहिये। आज के साहित्यकारों के लिए निराला अभी जीवित हैं। भविष्य में भ्रमों की विश्वामित्रीय निरर्थक और हानिप्रद सृष्टि से बचने के लिए आज मानव और साहित्यकार निराला संबंधी साहित्य का वैज्ञानिक, अर्थात् तथ्यपरक अनुबन्धन नितांत आवश्यक हैं। विश्वास है कि सुधी पाठक और निराला को निकट से जाननेवाले साहित्यकार इस सूची को ध्यान से देखेंगे और संपादक को शुद्धाशुद्धि से सूचित करेंगे।

काव्य-साहित्य

अधिवास—(रचनाकाल १९१६)।

जूही की कली—

कलकत्ता, 'मतवाला' के १८वें अंक में प्रकाशित, १९२३, प्रथम बार यहाँ पूरा नाम सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रकाश में आया।

अनामिका—

कलकत्ता, नवजादिकलाल श्रीवास्तव, १९२३, प्रथम काव्य संग्रह, ये सब कविताएँ 'नारायण', 'समन्वय' और 'मतवाला' में छपी थीं। प्रथम संशोधित संस्करण, इलाहाबाद, भारती भंडार, १९३८। १९४ पृ० २१ सं० भूमिका में लेखक ने लिखा है : 'इस अनामिका में उसका (सन् १९२३ की अनामिका का) कोई चिह्न अवशिष्ट नहीं······मेरा उपनाम 'निराला' 'मतवाला' के अनुप्रास पर आया था···अस्तु, उस अनामिका की अच्छी कृतियाँ बाद के परिमल नाम के संग्रह में आ गई थीं।' आरम्भ में लेखक का रंगीन तरुण चित्र है। बाद में महादेव सेठ का भी।

परिमल—

लखनऊ, गंगा फाइन आर्ट, १९३०। छठा सं० १९५४ में। इसकी अधिकांश रचनाएँ मतवाला में छपीं। ७८ कविताएँ। २३ पृ० की भूमिका।

गीतिका—

इलाहाबाद, भारती भंडार, १९३६ । २१, १०६ पृ० १८ सें० । १।।/ १०१ गीत।

तुलसीदास—

इलाहाबाद, भारती भंडार, १९३८ । ५६, ३८ पृ०, भूमिका में २२-१२-३८ तिथि अंकित, ४था सं० १९५१, 'आदरणीय अग्रज पंडित श्री नारायणजी चतुर्वेदी महोदय के कर कमलों में समर्पित' मुखचित्र (चतुर्वेदी), दूसरा चित्र (लेखक) और रायकृष्णदास कृत ४ पृ० की भूमिका ।

अणिमा—

उन्नाव, युग मंदिर १९४३, १०४ पृ० १६ सें० रामविलास शर्मा को समर्पित है।

कुकुरमुत्ता—

उन्नाव, युग मंदिर, १९४२, ६४ पृ० १६ सें० ।

—२रा परि० संस्करण । काशी, राष्ट्र भाषा विद्यालय, १८, ४८, ३२ पृ० १८ सें०, भूमिका में ८-७-४८ दिनांक, 'कुँवर सुरेश सिंह को' समर्पित ।

अपरा—

इलाहाबाद, साहित्यकार संसद् १९४६ (२००३ वि०) ५, २१६ पृ० २२ सें० ।

—२रा सं० १९५२ । २, १७६ पृ० २४ सें० यह लेखक कृत-काव्य-पुस्तकों से संकलित । चुनाव में महादेवी वर्मा का प्रमुख हाथ ।

नये पत्ते—

इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशंस, १९४६ । १०३ पृ० १८ सें० । इसमें कुकुरमुत्ता की सात और अनामिका की कविताएँ भी हैं । २८ कविताएँ, चित्र सहित 'गंगा प्रसाद पाण्डेय को सस्नेह' समर्पित ।

बेला—

इलाहाबाद, हिन्दुस्तानी पब्लिकेशंस, १९४६ । ९५ पृ० १८ सें० २) । भूमिका में १९४३ ई० अंकित है । जानकीवल्लभ शास्त्री का मुख-चित्र, उन्हीं को समर्पित ।

अर्चना—

इलाहाबाद, कला मंदिर, १९५० । ३ : ११२ पृ० १८ सें० १९५० में लिखे ११२ गीत, प्रचलित कुल तालों से समन्वित······आधुनिक गीतों का संग्रह, ३ पृ० की भूमिका, मुखचित्र लेखक का ।

आराधना—

इलाहाबाद, साहित्यकार संसद् १९५३ । ४ : ९६ पृ० १८ सें०, २।।) रचना-काल—जनवरी १९५१ से दिसम्बर १९५२ । ९६ कविताएँ, मुखचित्र लेखक का ।

गीत-गुञ्ज—

बनारस, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, १९५४, ६४ पृ० १८ सें०, १।।) पृ० १६-३६ तक सुधाकर पाण्डेय कृत भूमिका । पृ० ३९-६४ तक १३ गीत । रचना-

काल—१९५३-५८। पुस्तक के आरंभ में प्रकाशन क्रम के अन्तर्गत लेखक की कृतियों की सूची।

कविश्री—

झांसी, साहित्य सदन (चिरगांव), १९५५। ३९ पृ० २१ सें० लेखक द्वारा संकलित २२ कविताएँ।

निबन्ध और प्रबन्ध

हिन्दी बंगला का तुलनात्मक व्याकरण (सरस्वती—१९१९)
कविवर श्री चंडीदास (१९२०)
चरखा—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ और महात्मा गांधी (१९२५)

रवीन्द्र कविता कानन—

कलकत्ता, निहालचन्द एण्ड कं०, १९२८।
विभिन्न समयों में लिखे गये निबन्धों का संग्रह।
—२रा सं० वाराणसी, हिन्दी प्रचारक, १९५४, १७५ पृ० १८ सें०, १)

प्रबन्ध पद्म—

सम्पादक दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ गंगा पुस्तक माला, १९३४।

२रा सं० दिल्ली, भारती भवन, १९५४, १०, १९२ पृ० १८ सें० प्रथम निबन्ध संग्रह। स्वामी सारदानन्दजी को भेंट। विषय : शून्य और शक्ति, साहित्य और भाषा, मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य, एक बात, पंतजी और पल्लव, राष्ट्र और नारी, रूप और नारी, हमारे साहित्य का ध्येय, काव्य में रूप और अरूप, साहित्य का फल अपने ही वृन्त पर।

प्रबन्ध प्रतिमा—

इलाहाबाद, भारती भण्डार, १९४०, ५; ३३५ पृ० १८ सें०, २) दूसरा निबन्ध संग्रह। विषय—चरखा, गांधीजी से बातचीत (१९३९), नेहरूजी से दो बातें (१९३९), महात्मा दयानन्द सरस्वती और युगान्तर, नाटक समस्या (१९२४), 'साहित्यिक सन्निपात' या वर्तमान धर्म, रचना सौष्ठव (१९३३) भाषा विज्ञान, बाहरी स्वाधीनता और स्त्रियाँ, सामाजिक पराधीनता, विद्यापति और चण्डीदास (१९१९), कविवर श्री चण्डीदास (१९२०), कवि गोविंददास की कुछ कविताएँ (१९२९), कला के विरह में जोशी बन्धु (१९२८), हिन्दी साहित्य में उपन्यास (१९३३), वर्तमान हिन्दू समाज, प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद, मेरे गीत और कला (१९३७) बंगाल के वैष्णव कवियों की श्रृंङ्गार वर्णना, हमारा समाज।

पंत और पल्लव—

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९४९, ९८ पृ १८ सें० सन्त कवियों के समर्थ में और पंतजी पर रोष।

चाबुक—

इलाहाबाद, कला मन्दिर (दारागज), १९; १२२ पृ० १८ सें० तीसरा निबंध संग्रह। २२-२३ की आयु में पत्नी के स्वर्गवास का उल्लेख। नवजादिक लाल श्रीवास्तव की पुण्य स्मृति में, विषय मौनकवि, कविवर बिहारी और कवीन्द्र, नन्द-दुलारे वाजपेयी, काव्य-साहित्य, कला और देवियाँ, वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति बहता हुआ फूल, चरित्रहीन, चाबुक।

चयन—

संपादक शिवगोपाल मिश्र। वाराणसी, कल्याणदास ब्रदर्स, १९५७। २०४ पृ० १८, ५ सें० ४)। निबन्ध संग्रह। विषय : भाषा की गति और हिन्दी की शैली १९२३, खड़ीबोली के कवि और कविता (१९२९), काव्य-साहित्य (१९३०), हिन्दी कविता साहित्य की प्रगति (१९२८), हिन्दी के आदि युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, कवि अंचल, साहित्य की समतल भूमि (१९२३), महाकवि रवीन्द्रनाथ की कविता, ज्ञान और भक्ति पर गोस्वामी तुलसीदास, तुलसी के प्रति श्रद्धाञ्जलि, अर्थ अर्थान्तर, महादेवी के जन्म दिवस पर, शक्ति परिचय, पं० बनारसीदास का अंग्रेज़ी ज्ञान, बंग भाषा का उच्चारण, छत्रपुर में तीन सप्ताह, मनसुखा को उत्तर, कामायनी महाकाव्य परीक्षा, बोलचाल, श्रीरामकृष्ण, धंतोली की पुस्तकें, प्राच्य और पाश्चात्य श्री भुनेश्वर की तारीफ।

कथा साहित्य

अप्सरा—

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३२।

—अन्य सं० १९५४। २७० पृ० १८ सें०।

अलका—

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३३।

—७ वाँ सं०। १९५४, २१९ पृ० १८ सें०।

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३३।

—७ वाँ सं०। १९५४, २१९ पृ० १८ सें०।

लिली—

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३४।

३ रा सं० १९४९; १४३ पृ० १८ सें०। ८ कहानियाँ : पद्मा और लिली ज्योतिमयी, कमला, श्यामा, अर्थ, प्रेमिका परिचय, परिवर्तन, हिरनी। १९२९-३० रचनाकाल)।

निरुपमा—

इलाहाबाद, भारती भण्डार, १९३६।

—७ वाँ सं० १९५४। १४८ पृ० १८ सें० दो अध्याय सुधा में छपे किन्तु

कई वर्ष बाद इलाहाबाद में पूर्ण किया ।

प्रभावती—

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३६, ४, २६४ पृ० १८ सें० ।

—४था सं० इलाहाबाद, किताब महल, १९५३ । ४, १८० पृ० १८ सें० ऐति० उपन्यास । १-३-१९३६ को लिखी भूमिका में लेखक ने अपनी दिवंगता पत्नी को सश्रद्धा समर्पित किया । २ पृ० का प्राक्कथन रूपनारायण पांडेय द्वारा ।

समर्पण—

प्रिय बीबी,

बहुत दिन हुए—अठ्ठारह वर्ष—पन्द्रह वर्ष की तुम नव-वधू होकर घर आई हुई थीं, जहाँ बिना माँ के दो शिशुओं की सेवा में तुम्हें शृंङ्गार की साधना का समय नहीं मिला; तुम्हारे ऐसे हस्त संसार के किसी भी चमत्कार से पुरस्कृत नहीं किये जा सकते; मैं केवल अपनी प्रीति के लिये यहाँ यह पुस्तक नयस्त करता हूँ; जानता हूँ, कालिदास भी तुम्हें 'वीणा-पुस्तक-रञ्जित-हस्ते' नहीं कर सकते, क्योंकि तुम तबसे आज तक 'शिशु-कर-कृत-कपोल कज्जला' हो ।

सस्नेह—निराला

लखनऊ—१-३-१९३६

कुल्ली-भाट—

लखनऊ, गंगा ग्रंथागार, १९३९ ।

—२ रा सं० १९४७ । १४६ पृ० १८ सें० रेखा-चित्र ।

चमेली—

१९४२, केवल एक परिच्छेद 'रूपाभ' में । (अधरा) ।

बिल्लेसुर बकरिहा—

उन्नाव, युग मन्दिर, १९४२ । ६१ पृ० २८ सें० रेखाचित्र, यथार्थवादी ।

चतुरी चमार—

इलाहाबाद, किताब महल. १९४५ ।

७५ पृ० १८ सें० ८ कहानियाँ, चतुरी चमार, सखी (लखनऊ से १९३५ में प्रकाशित), न्याय, राजा साहब को ठेंगा दिखाया, देवी, स्वामी सारदानन्दजी महाराज और मैं, सफलता, भक्त और भगवान् ।

सुकुल की बीबी—

इलाहाबाद, भारती भंडार, १९४२ । अन्य सं० १९४७ । ९६ पृ० १८ सें० ४ कहानियाँ ।

चोटी की पकड़—

इलाहाबाद, किताब महल, १९४७ । १६७ पृ० १८ सें० २.२५ । अधूरा (प्रथम भाग मात्र) ।

देवी—

बनारस, राष्ट्र भाषा विद्यालय, १९४८ । १५९ पृ० १८ सें० भूमिका लेखन

काल : १२-८-४८ । महादेवी वर्मा को समर्पित । १० कहानियाँ : देवी, भक्त और भगवान्, चतुरी चमार, हिरनी, सुकुल की बीवी, अर्थ, श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी, क्या देखा, प्रेमिका परिचय, जान की ।

काले कारनामे—

इलाहाबाद, केसरवानी प्रेस, १९५०, ८० पृ० ।

—२ रा सं० वाराणसी, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, १९६०, १०२ पृ० (पाकेट बुक्स में) ।

जीवनी

भक्त ध्रुव—

कलकत्ता, पोपुलर ट्रेडिंग कं०, १९२६ (रत्नाकर ग्रंथमाला) ।

—२ रा सं० १९३० । ९६ पृ० १८ सें०

महाराणा प्रताप—

कलकत्ता, पोपुलर ट्रेडिंग कं०, १९२५ । (रत्नाकर, ग्रंथमाला)

—२ रा सं० १९२९ १८६ पृ० १८ सें०

भक्त प्रह्लाद—

कलकत्ता, पोपुलर ट्रेडिंग कं०, १९२५ । (रत्नाकर, ग्रंथमाला)

—२ रा सं० १९३० । ११६ पृ० १८ सें०

भीष्म—

कलकत्ता, पोपुलर ट्रेडिंग कं०, १९२६ (रत्नाकर ग्रंथमाला १५) १११ पृ० १८ सें० ।

'बालकों के लिये इस महापुरुष के चरित्र की भीष्म पर लिखी गई अंग्रेज़ी, बंगला पुस्तकों के आधार पर······चरित्र चित्रण की चेष्टा की है ।'

—लेखक

अनूदित साहित्य

महाभारत (संक्षिप्त)—

लखनऊ, गंगा पुस्तक माला, १९९६ वि० (२६-७-३९), १९६ पृ० द्विस्तंभीय छपाई ।

'यह संक्षिप्त महाभारत साधारण जनों, गृह देवियों और बालकों के लिए लिखी गई है ' निराला । पं० रामशंकर शुक्ल को समर्पित ।

श्री रामकृष्ण वचनामृत ३ भाग

नागपुर, रामकृष्ण आश्रम, १९४२—२रा सं० १९४७—१९५२ ।

रामायण—विनय खण्ड—

श्रीमद् गोस्वामी तुलसीदास कृत का अवधी से हिन्दी अनुवाद । काशी राष्ट्र भाषा विद्यालय १९४८ । (ज्येष्ठ बदी ६, २००५ वि०) पृ० ५-८ तक रामविलास शर्मा कृत भूमिका । 'सुभद्रा कुमारी चौहान की स्मृति में' परिशिष्ट में कठिन शब्दों के अर्थ । ओजपूर्ण भाषा में पद्यबद्ध अनुवाद । सिर पर कपड़ा बाँधे पार्श्व चित्र ।

भारत में विवेकानन्द—

नागपुर, रामकृष्ण आश्रम, १९४८ । २रा सं० १९५२, ६, ४६८ पृ० १८ सें०, विवेकानन्द की अंग्रेज़ी पुस्तक Indian Lectures का अनुवाद ।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत—

१. आदन्दमठ ।
२. कपालकुंडला ।
३. कृष्णकान्त का बिल ।
४. चन्द्रशेखर ।
५. दुर्गेश नन्दिनी ।
६. देवी चौधरानी
७. युगलांगुलीय
७. रजनी
६. राजा रानी
१०. राजसिंह ।
११. विषवृक्ष ।

'गीत गुंज' के आरम्भ में 'निराला साहित्य और उसके प्रकाशन' शीर्षक के अन्तर्गत इस अनुवाद साहित्य का उल्लेख है और इन पुस्तकों का प्रकाशक इंडियन प्रेस, इलाहाबाद बतलाया गया है । ये प्रकाशन मुझे कलकत्ते के बड़े छोटे किसी पुस्तकालय में नहीं मिले । बड़ा बाजार लइब्रेरी के कैटलाग में केवल 'दुर्गेशनन्दिनी' चढ़ी है, किन्तु पुस्तक कहीं नहीं है । कुमार सभा पुस्तकालय में केवल १९५१ में इंडियन प्रेस से मुद्रित 'आनन्दमठ' के दर्शन हुए और उक्त प्रकाशक के सूचीपत्र में 'विषवृक्ष' व 'कृष्णकान्त का बिल' का विज्ञापन भी है । अतः निराला ने इनका अनुवाद अवश्य किया था । किन्तु, खेद है कि इस अवसर पर प्रथम संस्करणों पर प्रकाश न पड़ सका ! 'गीत गुंज' के अनुसार निराला कृत, पुस्तक भंडार, पटना से 'रस अलंकार', निहालचन्द एण्ड कं०, कलकत्ता से 'वात्सायन कामसूत्र' का अनुवाद और 'वैदिक साहित्य' का उल्लेख किया है । प्रकाशन तिथि नहीं दी है ।

'गीत गुंज' में अप्रकाशित पुस्तकों की सूची इस प्रकार दी है :—

नाटक—समाज, शकुन्तला, ऊषा अनिरुद्ध, राजयोग ।

उपन्यास—फुलवारी, लीला, चमेली, सरकार की आँखें ।

और गीत—गोविन्द दास की बंगला कृति (अनुवाद),
उच्छृँखल (ब्रजभाषा में) ।

हिन्दी बङ्गला शिक्षक—

कलकत्ता, पापूलर ट्रेनिंग कं०, १९२८ ।
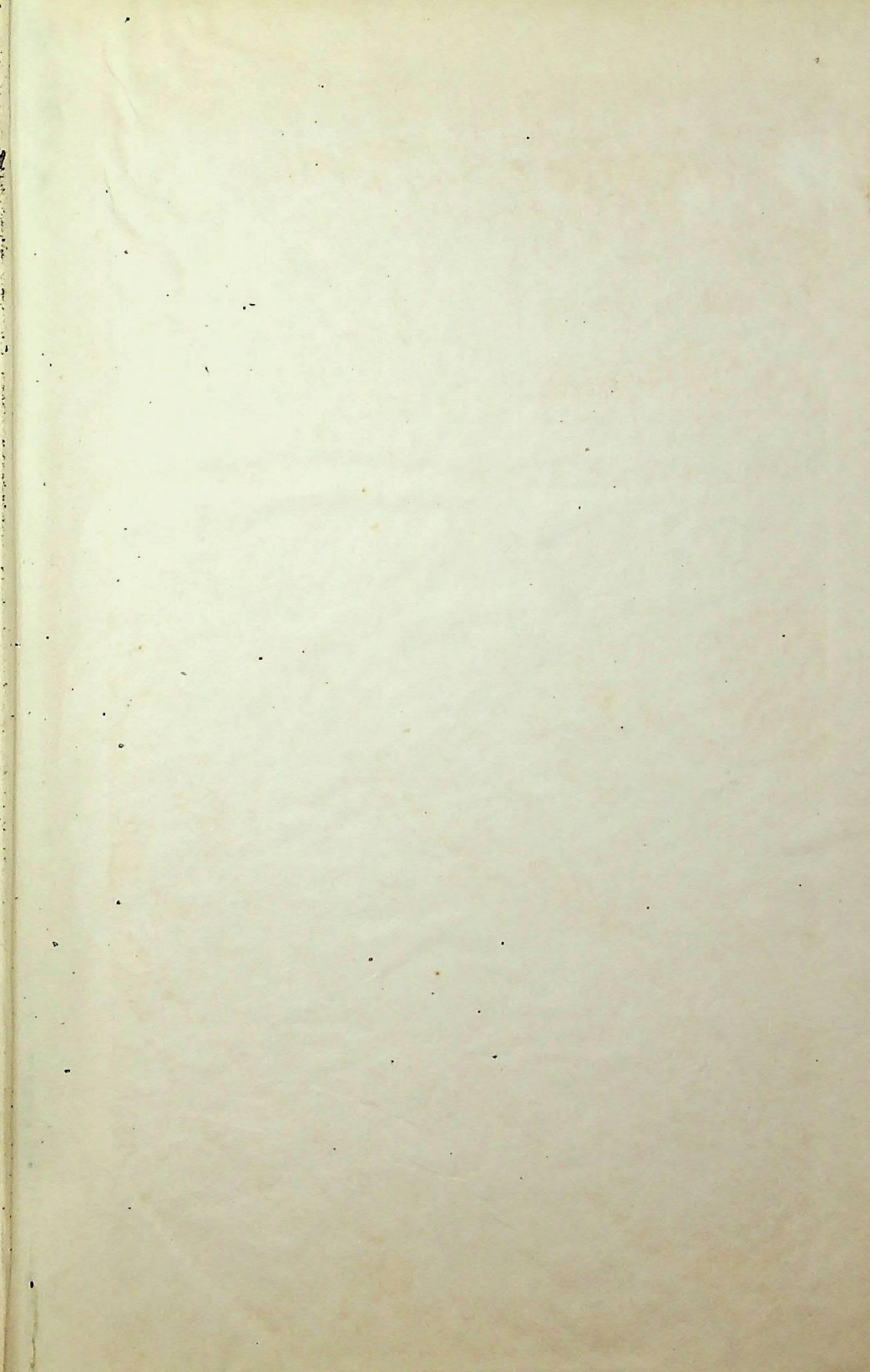
इस माला की पुस्तकों के अधिकारी सम्पादकों एवं लेखकों ने हिन्दी के प्राचीन तथा नवीन कवियों, साहित्यकारों तथा विशिष्ट कृतियों से सम्बन्धित ऐसी अमूल्य सामग्री का यहाँ संयोजन किया है जो अलग-अलग आलोचना-पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा शोध-ग्रन्थों में बिखरी हुई थी और जिसे एकत्र पाना दुर्लभ था। इन पुस्तकों में उच्च-कोटि की गम्भीर और गवेषणापूर्ण सामग्री हिन्दी के सुधी पाठकों को पढ़ने को मिलेगी।

डॉ० पद्मसिंह शर्मा : जन्म आगरा में, १९१८। आगरा में अध्यापनके बाद अब कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रीडर।

प्रमुख प्रकाशित रचनाएँ : 'मैं उनसे मिला' (२ खंड), 'हिन्दी गद्य काव्य' (शोध प्रबन्ध), 'गुजराती और उसका साहित्य', 'वृन्दावनलाल वर्मा, 'व्यक्तित्व और कृतित्व', 'जीवी' (अनूदित), 'धरती पर उतरा'। (कविता)।